॥ अर्हम् ॥

श्रीमद् अनुयोगद्वार सूत्र

(उत्तरार्ध)



हिन्दी-अनुवाद-कर्त्ता—

जैनमुनि उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज

(पंजाबी)

वीर निर्वाण सं० २४५८
विक्रम संवत् १९८८
ईस्वी सन् १९३१

प्रथम संस्करण

५००

मूल्य—सदुपयोग

प्रकाशक—
श्रीमान् (भक्त) लाला मुरारीलालजी-चरणदासजी जैन;
पटियाला स्टेट।



मुद्रक
पद्मसिंह जैन;
अध्यक्ष श्रीमज्जैन शास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस,
जौहरी बाजार आगरा

प्राक् पाक्कथा।

प्रिय सुज्ञ पुरुषो !

मनुष्य पर्याय पाकर जीव ने यदि आत्मकल्याण—आत्म संशोधन—आत्मोन्नति— परमात्मपदप्रतिष्ठान नहीं किया, जिसे कि उसने आजतक नहीं किया है और भोगोपभोगों में ही सर्वथा-सर्वदा व्यस्त रहा, जैसा कि अनादिकाल से वह प्रायः रहता चला आया है, तो कहना चाहिये कि एक तरह से उस ने कुछ भी नहीं किया और इस मनुष्य पर्याय को, जो कि सर्व पर्यायों में श्रेष्ठ है तथा जिस के लिये इन्द्रादि देव भी तरसते रहते हैं, व्यर्थ ही गँवाया। मनुष्य पर्याय को व्यर्थ गँवा देना ठीक वैसा ही है जैसा कि एक मणि के टुकड़े को समुद्र में डाल देना। एक बार हाथ में आए हुए मणिकण का समुद्र में पटक देने से जैसे उस का पुनः मिलना दुर्लभ है, वैसे ही मनुष्य पर्याय को भी एक बार पाकर उसका सदुपयोग न करना व समुद्र में डाल देने के बराबर है, वहां से उस का पुनः प्राप्त करना दुर्लभ है।

आत्मविकास आत्मा तभी कर सकता है, जब उसे आत्मा का स्वरूप, आत्म विकास के साधन आदि ज्ञात हों। आत्मा का स्वरूप और आत्मविकास के साधनों का ज्ञान आत्मा को अध्यात्म साहित्य के अवलोकन, पठन-पाठन, मनन आदि से ही हो सकता है। देश-विदेश के समाचारों का ज्ञान मनुष्य को जैसे समाचार पत्रों से होता है, कृषि का ज्ञान मनुष्य को जैसे कृषि शास्त्र से होता है; काम की बातों का ज्ञान मनुष्य को जैसे कामशास्त्र से होता है; उसी तरह आत्मा का ज्ञान और आत्मोन्नति के साधनों का ज्ञान मनुष्य को अध्यात्मशास्त्र से होता है।

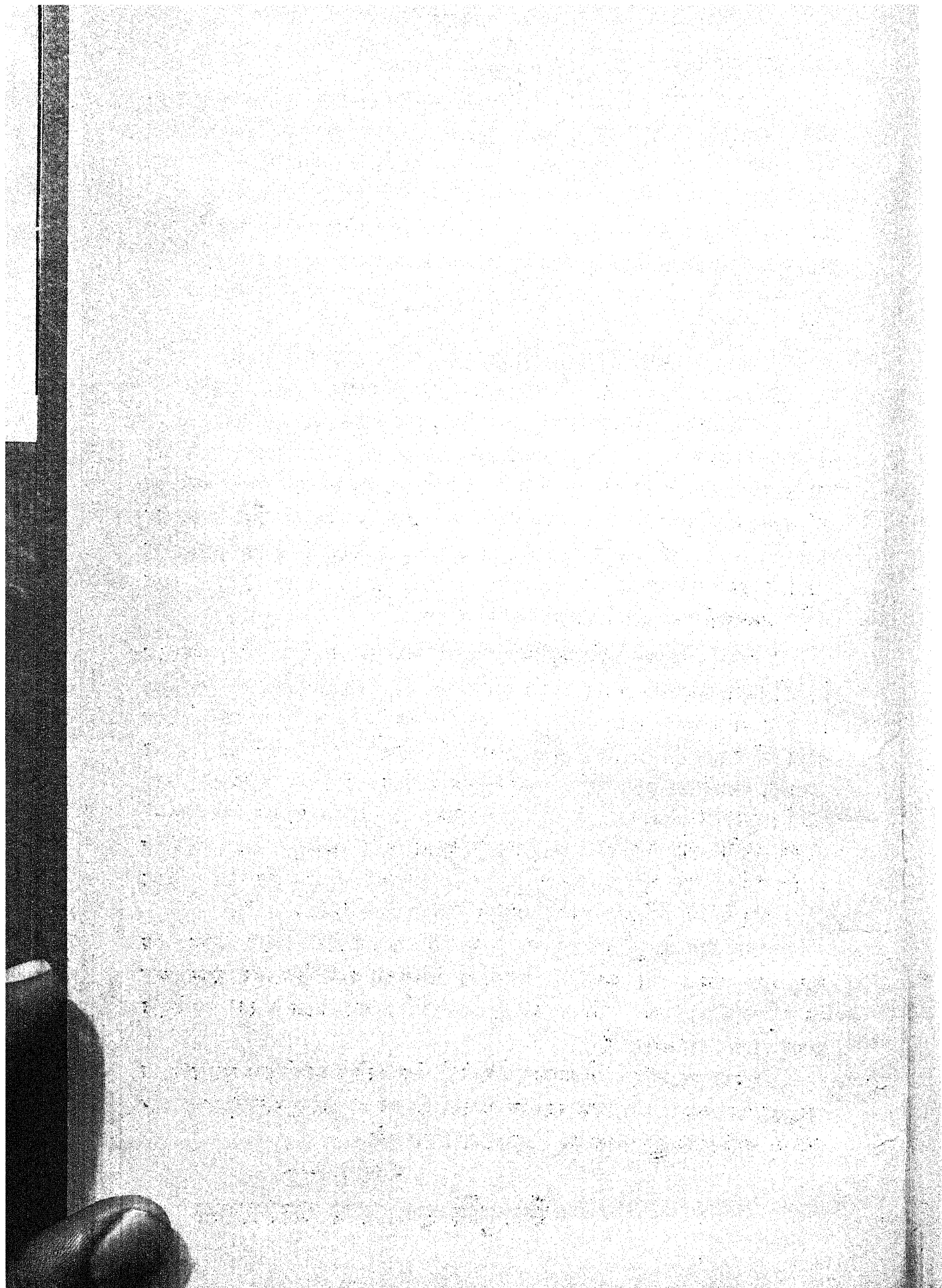
उपस्थित ग्रन्थ—'श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र' अध्यात्म ग्रन्थ ही है। अध्यात्म प्रेमियों द्वारा यह रचा गया है। ग्रन्थ कठिन नहीं है। हालां कि लोगों को वह कठिन प्रतीत होगा। कठिन प्रतीत होने का तो कारण यह है कि जिस विषय की ओर लोगों की रुचि नहीं होती, वह उन्हें कठिन ही प्रतीत होता है। और जिधर प्रीति होती है, वह विषय सरल प्रतीत होता है—उसकी कठिनाइयाँ फिर कठिनाइयाँ नहीं रहतीं। अन्त में इतना लिख कर हम इन पंक्तियों को यहाँ समाप्त करते हैं कि—प्रत्येक व्यक्ति को स्वकीय जीवन सम्यग् दर्शन और सम्यग् चरित्र से अलंकृत करना चाहिये। इस सूत्र में सम्यग ज्ञान और दर्शन का भली भांति स्वरूप वर्णित किया गया है तथा संक्षेप में सम्यग् चारित्र का भी वर्णन किया गया है।

अतः सब से पूर्व इस सूत्र का अध्ययन करना चाहिये। चार प्रमाण, नय वाद, तथा अन्य नाना प्रकार के विषयों के अध्ययन करने से सम्यग् ज्ञान और सम्यग् दर्शन की भली भांति प्राप्ति हो सकती है। और निज आत्मा का विशद प्रकार से बोध हो सकता है।

हिन्दी अनुवाद करने का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक प्राणी इस सूत्रज्ञान का अनुभव कर सके और फिर स्वकीय आत्मा को सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र से सुशोभित कर मोक्षाधिकारी बन सके।

भवदीयः——

जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम



धन्यवाद ।

——:*:——

'श्री श्वेताम्बर-स्थानकवासी-आल इण्डिया जैन कान्फ्रेन्स' के सिकन्दराबाद वाले अधिवेशन में स्वर्गीय राजाबहादुर लालाजी श्रीमान् सुखदेवसहायजी ने जैन सिद्धान्तों को प्रकाशित करने के लिए 'कान्फ्रेन्स' को जिस समय एक प्रेस दिलाया था उस समय 'कान्फ्रेन्स' की सूचनानुसार जैनमुनि -उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज ने श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र का हिन्दी अनुवाद करके 'कान्फ्रेन्स' को समर्पण किया था। 'कान्फ्रेन्स' ने उस का कुछ हिस्सा 'पूर्वार्ध' के नाम से प्रकाशित करके 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' के ग्राहकों को उपहार में वितरण किया और उस का शेष भाग यों ही रख छोड़ा। इस बात को १३-१४ वर्ष होने आये।

सूत्र के अप्रकाशित भाग को 'कान्फ्रेन्स' से हम ने मँगा लिया। लेकिन वह हमारे पास भी बहुत समय तक यों ही रक्खा रहा। एक अवसर पर इस के प्रकाशक महोदय ने इस को प्रकाशित करने के लिए ५००) रुपयों की उदारता दिखलाई थी। लेकिन इतना बड़ा काम इतने से रुपयों में होना अशक्य था। अतएव उस समय भी हमें ठहरना पड़ा।

एक समय आगरानिवासी श्रीयुत बाबू पद्मसिंहजी जैन, अध्यक्ष—'श्रीमज्जैनशास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस' और प्रकाशक-'श्रीजैनपथ-प्रदर्शक' आगरा महाराज श्री के दर्शनों के लिए यहाँ आए। महाराजजी ने यह बात उन के सामने रक्खी। घर का प्रेस होने के कारण आप ने इस कार्य को शीघ्र पूरा प्रकाशित कर सकने का वचन दिया। तदनुसार उक्त ग्रन्थ आप को दिया गया और आप ने तत्काल कार्य आरम्भ कर दिया। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद आप पर भी कई कठिनाइयाँ ऐसी आन पड़ीं कि जिन के कारण ग्रन्थ के प्रकाशित होने में फिर भी विलम्ब हो गया।

श्रीयुत बाबू पद्मसिंहजी को जिस समय यह ग्रन्थ छापने के लिए दिया गया था उस समय इसे लगभग ३०-३२ फार्म का समझा गया था परन्तु छपने पर यह ४० फार्म का बैठा। लेकिन फिर भी उक्त महानुभाव ने अपने वचनानुसार इसे पूर्ण ही छाप कर प्रकाशित किया। एतदर्थ आप को धन्यवाद है।

दूसरा धन्यवाद श्रीमान् (भक्त) लाला मुरारीलालजी व श्रीमान् लाला चरणदासजी को है। ये दोनों भाई पटियाला निवासी श्रीमान् लाला जगतरामजी के भतीजे हैं।

श्रीमान् लाला जगतरामजी के एक छोटे भाई लाला कुन्दनलालजी थे। श्रीमान् भक्त लाला मुरारीलालजी और श्रीमान् लाला चरणदासजी उन्हीं के सुपुत्र हैं। श्रीमान् भक्त लाला मुरारीलाजी के सुपुत्र श्रीमान् श्यामलालजी हैं।

श्रीमान् लाला जगतरामजी एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। आप की आजकल विभिन्न स्थानों में पाँच दुकानें चल रही हैं। आप एक माननीय जैन गृहस्थ थे।

पाठकों को जान कर आनन्द होगा कि श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र का यह शेषांश 'उत्तरार्ध' के नाम से उन्हीं श्रीमान् लाला जगतरामजी की स्मृति में उन के भतीजे श्रीमान् (भक्त) लाला मुरारीलालजी और श्रीमान् लाला चरणदासजी ने प्रकाशित करवा कर परम पुण्य उपार्जन किया है।

एतदर्थ हम श्रीमान् लाला (भक्त) मुरारीलालजी और श्रीमान् लाला चरणदासजी को हार्दिक भावों से धन्यवाद देते हैं और साथ ही प्रत्येक जैन बन्धु से सानुरोध निवेदन करते हैं कि वे उक्त महानुभावों का अनुकरण करके श्रीभगवद्भाषित शास्त्रों का जनता में प्रचार करके मोक्षादि के अधिकारी बनें।

इस सूत्र का पूर्वार्द्ध आज से १०-१२ वर्ष पहिले जिस रँग ढँग से प्रकाशित हुआ था उसी रँग ढँग से उसके उत्तरार्द्ध को भी प्रकाशित किया गया है। और आगे जो सूत्र उपाध्यायजी लिख रहे हैं वे सब मूल पाठ, संस्कृत छाया, शब्दार्थ, भावार्थ, सरल हिन्दी विशेषार्थ और टिप्पणी आदि सहित लिख रहे हैं। इस समय श्रीदशवैकालिकसूत्र तो हैदराबादनिवासी लालाजी ज्वालाप्रसादजी की उदारता से छप रहा है और 'श्रीउत्तराध्ययन सूत्र' भी लिखा रखा है। आशा है कोई धर्म-साहित्य प्रेमी उस के प्रकाशित कराने का भार लाला ज्वालाप्रसादजी के समान लेकर अपने धर्मप्रेम और साहित्यप्रेम का परिचय देंगे। अन्त में निवेदन है कि इस सूत्र में दृष्टिदोष से प्रूफसंशोधकों की भूल से या असवज्ञता के कारण कोई दोष रह गया हो तो विद्वान् सूचित करने की कृपा करें, जिस से भविष्य में उस के सुधार का ध्यान रखा जाय।

भवदीय—

दीपावली
सं० १९८८ वि०

गूजरमल प्यारेलाल जैन,
चौड़ा बाजार-लुधियाना।

* श्रीवर्धमान नमः *

श्रीमदनुयोगद्वारसूत्रम् ।

(उत्तरार्धम्)

अथ प्रमाण विषय ।

—— :❀: ——

से किं तं प्पमाणे ? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१ दव्वप्पमाणे, २ खेत्तप्पमाणे, ३ कालप्पमाणे, ४ भावप्पमाणे । से किं तं दव्वप्पमाणे ? दव्वप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा पदेसनिप्फन्ने, विभागनिप्फन्ने य । से किं तं पदेसनिप्फन्ने ? परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव दसपएसिए संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए से तं पदेसनिप्फन्ने । से किं तं विभागनिप्फन्ने ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—माणे १, उम्माणे २, अवमाणे ३, गणिमे ४, पडिमाणे ५ । से किं तं माणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ धन्नप्पमाणे, २ रसप्पमाणे य से किं तं धन्नप्पमाणे । दो असईओ पसइ, दो पसईओ सेतिया, चत्तारि सेइआओ कुलओ, चत्तारि कुलया पत्थो चत्तारि पत्थया आढगं, चत्तारि आढगा दोणी, सट्ठिआढगाइं जहन्नकुंभे, असीति आढयाइं मज्झिमकुंभे, आढयसयं उक्कोसए कुंभे, अट्ठयअठयसत्तिए बाहे । एएणं धन्नमाणप्पमाणेणं किं पउयणं ? एएणं धन्नप्पमाणेणं मुत्तोलिमुखइदुरअलिंदअवयाणं संसियाणं धण्णाणं धन्नप्पमाणप्पमाणनिव्वत्ति लक्खणं भवइ, से तं धन्नमाणप्पमाणे ।

पदार्थ—(से किं तं प्पमाणे ? चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा) प्रमाण किसे कहते हैं ? 'परिमीयते परिच्छिद्यते धान्यद्रव्याद्यनेनेति प्रमाणमसतिप्रसृत्यादि' ॥ जिसके द्वारा धान्यादि वस्तुओं का प्रमाण किया जाय उसे 'प्रमाण' कहते हैं। अथवा प्रत्येक पदार्थों का जिसके द्वारा प्रमाण किया जाता है उसे 'प्रमाण कहते हैं। यह करणसाधन है और चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि—(दव्वप्पमाणे) द्रव्य के विषयमें जो प्रमाण किया जाय उसे 'द्रव्य प्रमाण' कहते हैं। इसी प्रकार (खेत्तप्पमाणे) क्षेत्र प्रमाण (कालप्पमाणे) काल प्रमाण (भावप्पमाणे) भाव प्रमाण (से किं तं दव्वप्पमाणे ? दुविहे पन्नत्ते, तं जहा) द्रव्य प्रमाण किसे कहते हैं ? द्रव्यों का जो प्रमाण किया जाय उसे 'द्रव्य प्रमाण' कहते हैं। वह दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है॥ जैसे कि—(पएसनिप्फन्ने विभागनिप्फन्ने य) प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न (से किं तं पएसनिप्फन्ने य) प्रदेशनिष्पन्न किसे कहते हैं ? जो प्रदेशों के द्वारा निष्पन्न हो। जैसे कि-(परमाणु पोग्गले) परमाणु पुद्गल और (दुपएसिए) द्विप्रदेशिक निष्पन्न स्कन्ध (दसपएसिए जाव) दशप्रदेशिक स्कन्ध(संखेज्जपएसिए) संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध (असंखेज्जपएसिए) असंख्यात प्रदेशिक स्कंध (अणंतपएसिए)अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध (से तं पएसनिप्फन्ने) सो इसेही 'प्रदेशनिष्फन्न' कहते हैं। (से किं तं विभागनिप्फन्ने ? पंचविहे पएणत्ते, तं जहा) विभागनिष्पन्न किसे कहते हैं ? जो विशिष्ट प्रकारों तथा नाना प्रकार के असति प्रसृत्यादि द्वारा विभाग किया जाय वह 'विभागनिष्पन्न' होता है। वह पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि-(माणे १, उम्माणे २, अवमाणे ३, गणिमे ४, पडिमाणे ५) मान प्रमाण १, उन्मान प्रमाण २, अवमान प्रमाण ३, गणित प्रमाण ४ और प्रतिमान प्रमाण ५, (से किं तं माणे ? दुविहे पएणत्ते, तं जहा) मान प्रमाण कितने प्रकारका है ? मान प्रमाण दो प्रकार का है। जैसे कि—(धन्नमाणे) धान्यमान प्रमाण और (रसमाणे य) रसमान प्रमाण अर्थात् जिसके द्वारा धान्योंका प्रमाण किया जाय वह 'धान्यमान प्रमाण' और जिसके द्वारा रसों का प्रमाण किया जाय वह 'रसमान प्रमाण' है (से किं तं धएणमाणे य ?) धान्य प्रमाण किस प्रकार से किया जाता है ? (दो असइओ पसइ) दो असृति की एक प्रसृति होती है। असृति उसे कहते हैं जो एक हथेली भर में धान्य आजावे अथवा एक मुष्टि प्रमाण। यह असृति सर्व मानोंकी आदिभूत होती है। दो असृतियों की एक प्रसृति होती है अर्थात् एक प्राञ्जलि अथवा दोनों हाथों का नावाकार जो संपुट होता है उसे 'प्रसृति' कहते हैं। सो इसी प्रकार (दो पसइओ सेईय) दो प्रसृतियों की एक 'सेतिका' होती है (चत्तारि सेइयाओ कुलओ) चार सेतियों का एक 'कुडव' होता है (चत्तारि कुलयो पत्थो) और चार कुड़वों

का एक 'प्रस्थ'-'पाथा' होता है (चतारि पत्था आढगा) चार पाथोंका एक 'आढक' होता है और (चत्तारि आढगाइं दोणी) चार आढक की एक 'द्रोणी' होती है (सट्ठि-आढगाइं जहन्नए कुंभे) साठ आढक का एक 'जघन्य कुंभ' होता है और (असीए आढगाइं मज्झिमए कुंभे) अस्सी आढकों का एक 'मध्यम कुंभ' होता है (आढगसयं उक्कोसए कुंभे) और सौ आढकों का एक 'उत्कृष्ट कुंभ' होता है (अट्ठयआढयसइए वाह) आठ सौ आढकों का एक 'वांह' होता है (एए णं धन्नमाणप्पमाणेणं किं पउयणं ?) इस धान्यमान प्रमाण के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएणं धनप्पमाणेणं) इस धान्यमान प्रमाण के द्वारा (मुत्तोलि मुख) मुक्तोली मुख (इंदुर) इंदुर (अलिन्द) आलिंद (अवयार) अपचार (संसियाणं) इनके आश्रित (धन्नाणं) धान्यों का (धण्णमाणप्पमाण) धान्य मान प्रमाण की (निव्वत्तिलक्खणं भवइ) निर्वृत्ति लक्षण होती है अर्थात् उक्त प्रकार से धान्यों के परिज्ञान की सिद्धि उत्पन्न होती है। (से तं धन्नमाणप्पमाणे) वही 'धान्य मान प्रमाण' है।

भावार्थ—जिसके द्वारा वस्तुओंका प्रमाण किया जाय उसको 'प्रमाण' कहते हैं। वह चार प्रकार का है। जैसे-द्रव्य प्रमाण १, क्षेत्र प्रमाण २, काल प्रमाण ३, भाव प्रमाण ४। द्रव्य प्रमाण दो प्रकार का है--एक प्रदेशनिष्पन्न, द्वितीय विभागनिष्पन्न। एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कंध पर्यन्त सर्व प्रदेशनिष्पन्न होता है। विभागनिष्पन्न पांच प्रकार का है। जैसे कि--मान प्रमाण १, उन्मान प्रमाण २, अवमान प्रमाण ३, गणित प्रमाण ४, प्रतिमान प्रमाण ५। मान प्रमाण दो प्रकार का है। जैसे कि-धान्यमान प्रमाण और रसमान प्रमाण। धान्यमान प्रमाण के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—दो असृतियों की (दो हथेलियों की) एक 'प्रसृति' होती है। संपुटाञ्जलि नावाकार दो प्रसृतियों की एक 'सेतिका' होती है। चार सेतियों का एक 'कुड़व', चार कुड़वों का एक 'पाथा' (प्रस्थ) होता है। और चार पाथों का एक 'आढक' और चार आढकों की एक 'द्रोणी' होती है। साठ आढकोंका एक 'जघन्य कुंभ' होता है। अस्सी आढकों का एक 'मध्यम कुंभ' और सौ आढकों का एक 'उत्कृष्ट कुंभ' होता है और आठसौ आढकों की एक 'वाह' होती है। ये सब प्रमाण मगध देश की अपेक्षा से कहा गया है। इस का प्रयोजन केवल इतना ही है कि जो धान्यों की कोठी, जिसका मुख ऊपर विस्तीर्ण नहीं होता, मध्य विस्तीर्ण होता है अथवा वंशमय पात्र अथवा दीर्घ कोठी इत्यादि स्थानों में उक्त प्रमाणों से धान्यों का प्रमाण किया जाता है। फिर उस के ज्ञान की निष्पत्ति होती है। इसे ही धान्यमान प्रमाण कहते हैं।

अथ रस प्रमाण विषय ।

से किं तं रसमाणप्पमाणे ? धन्नमाणप्पमाणाओ चउभागविवड्ढिए अब्भिंतरसिहाजुत्ते रसमाणप्पमाणे विहिज्जइ तं जहा—चउसट्ठिया ४, बत्तीसिया ८, सोलसिया १६, अट्ठभाइया ३२, चउभाइया ६४, अद्धमाणी १२८, माणी २५६, दो चउसट्ठियाउ बत्तीसिया, दो बत्तीसियाओ सोलसिया, दो सोलसियाओ अट्ठभाइया, दो अट्ठभाइयाओ चउभाइया, दो चउभाइयाओ अद्धमाणी, दो अद्धमाणीओ माणी । एएणं रसमाणप्पमाणेणं किं पओयणं ? एएणं रसमाणप्पमाणेणं वारक १, घडक २, करक ३, कलस ४, कक्करिय ५, दइय ६, कुंडिए ७, करोडि ८, संसियाणं रसाणं रसमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ । से तं रसमाणप्पमाणे, से तं माणे ।

पदार्थ—(से किं तं रसमाणप्पमाणे ?) रसमान प्रमाण किसे कहते हैं ? जैसे (धन्नमाणप्पमाणाओ) धान्यमान प्रमाण से (चउभाग विवड्ढिए) चतुर भाग अधिक और (अब्भिंतरसिहाजुत्ते भवइ) अभ्यन्तर शिखा युक्त होता है क्योंकि रसमान प्रमाण द्रवीभूत होने से अभ्यन्तर शिखा युक्त ही होता है । इसकी बाहर शिखा नहीं होती वह (रसमाणप्पमाणे) रस मान प्रमाण से चतुर्भागाधिक अभ्यन्तर शिखायुक्त होता है जैसे कि—(चउसट्ठिया ४) चार पल प्रमाण 'चतुष्वष्ठिका होती है (बत्तीसिया ८) आठ पल प्रमाण 'द्वात्रिंशिका' होती है (सोलसिया १६) सोलह पल प्रमाण 'षोडशिका' और (अट्ठभाइया) द्वात्रिंशत् पल प्रमाण 'अष्टभागिका' होती है (चउभाइया) चौंसठ पल प्रमाण 'चतुर्भागिका' (अद्धमाणी) एक सौ अट्ठाईस पल प्रमाण 'अर्द्धमानी' होती है और दो सौ छप्पन पल प्रमाण 'माणी' होती है । (दो चउसट्ठियाओ बत्तीसिया) दो चतुःषष्ठिका से एक 'बत्तीसी' होती है अर्थात् माणी का बत्तीसवां भाग होता है (दो बत्तीसियाओ) दो बत्तीसियों से (सोलसिया) माणी का सोलहवां भाग होता है और (दो सोलसियाओ अट्ठभाइया) दो षोडशिकाओं से माणी

का आठवां भाग होता है (दो अट्ठभाइयाओ चउभाइया) दो आठ भागिकाओं से एक चतुर्भागिका होती है (दो चउभाइयाओ) दो चतुर्भागिकाओं से (अद्धमाणी) अर्द्धमाणी होती है और (दो अद्धमाणीओ) दो अर्द्धमाणी से (माणी) दो सौ छप्पन पल प्रमाण की एक माणी होती है (एएणं रसमाणप्पमाणेणं किं पओयणं ?) इस रस मान प्रमाण के कथन करने का प्रयोजन क्या है ? (एएणं रसमाणप्पमाणेणं वारक १, घडग २, करक ३, कलस ४, कक्करिय ५, दइए ६, कुंडिय ७, करोडिसंसियाणं रसाणं रसमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ, से तं रसमाणप्पमाणे । से तं माणे) इस रसमान प्रमाणसे वारक घट, कलश, करक, गर्गरी-गागर, दृतिक-चर्ममयभाजन-मशक, कुंडिका और कुंडा इत्यादि के आश्रय भूत जो रस हैं उन रसों के रसमान प्रमाण की उक्त प्रमाण से ही सिद्धि होती है । इसी लिये इसे 'रस मान प्रमाण' कहते हैं ।

भावार्थ-रसमान प्रमाण धान्यमान प्रमाण से चतुर्भागाधिक होता है और उसकी आभ्यन्तर ही शिखा होती है । उसके लिये निम्नलिखित प्रमाण कथन किया गया है । जैसे कि चार पल प्रमाण चतुःषष्ठिका होती है, आठ पल प्रमाण द्वात्रिंशिका, षोडश पल प्रमाण षोडशिका, द्वात्रिंशत् पल प्रमाण अष्टभागिका, १२८ पल प्रमाण अर्द्धमाणी और २५६ पल प्रमाण माणी होती है । अतः दो चतुःषष्ठिका की एक द्वात्रिंशिका और दो द्वात्रिंशिका की एक षोडशिका होती है । फिर दो षोडशिकाओं की एक अष्टभागिका, दो अष्टभागिकाओं की एक चतुर्भागिका, दो चतुर्भागिकाओं की एक अर्द्धमाणी और दो अर्द्धमाणियों की एक माणी होती है । यह सब मान मगध देश की अपेक्षा से है । इसका मुख्य प्रयोजन वारक, घट, करक, कलश, गर्गरी, दृति, कुंडिका और कुंडादि में जो रस भरा रहता है उसकी नाप जानना है । इसीलिये इसे 'रसमान प्रमाण' कहते हैं ।

अथ उन्मान प्रमाण विषय ।

से किं तं उम्माणे ? जण्णं उम्मिणिज्जइ, तं जहा-अद्ध करिसो १, करिसो २, अद्धपलं ३, पलं ४, अद्धतुला ५, तुला ६, अद्धभारो ७, भारो ८, दो अद्धकरिसो करिसो, दो करिसो अद्धपलं, पंचुत्तर पलसइया तुला, दस तुलाईओ अद्ध भारो, वीसं तुलाओ भारो, एएणं उम्माणप्पमाणेणं किं पओयणं?

एएणं उम्माणप्पमाणेणं पत्ता १, अगर २, तगर ३, चोयए ४, कुंकुम ५, खंड ६, गुल ७, मच्छंडियाइणं ८, दव्वाणं निव्वत्तिलक्खणं भवइ, से तं उम्माणे।

पदार्थ--(से किं तं उम्माणे ? जण्णं उम्मिणिज्जइ, तं जहा) उन्मान किसे कहते हैं ? जिस करके उन्मान किया जाता है उसे ही उन्मान कहते हैं। उसका प्रमाण निम्न प्रकार है:--(अद्धकरिसो १, करिसो २) पल के आठवें भाग को अर्द्ध कर्ष कहते हैं, पल के चौथे भाग का नाम कर्ष है और (अद्धपलं पलं) पल के अर्द्ध भाग का अर्द्ध पल कहते हैं और (अद्धतुला तुला) अर्द्ध तुला, तुला (अद्धभारो भारो) अर्द्ध भार और भार, ये सर्व अनुक्रम पूर्वक इस प्रकार हैं। जैसे कि--(दो अद्ध करिसो करिसो) दो अर्द्ध कर्षों का एक कर्ष (दो करिसो अद्धपलं) दो कर्षों का अर्द्ध पल और (दो अद्धपलं पलं) दो अर्द्ध पलों का एक पल होता है अतः (पंचुत्तरपलसइया तुला) १०५ पल की एक तुला होती है (दसतुलाइओ अद्धभारो) दश तुला का अर्थ भार और (वीसंतुलाओ भारो) बीस तुला का एक भार होता है। (एएणं उम्माणप्पमाणेण किं पउयणं) ? इस उन्मान प्रमाण के कथन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएणं उम्माणप्पमाणेणं पत्ता अगर तगर चोयए कुंकुम खंड गुड मच्छंडियाइणं दव्वाणं) इस उन्मान प्रमाण से पत्र, अगर, तगर, चोक-औषधविशेष-कुंकुम, केशर, खांड़, गुड़, मिसरी, आदि द्रव्यों की (उम्माणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ) उन्मान प्रमाण से सिद्धि होती है (से तं उम्माणे) उसे ही उन्मान प्रमाण कहते हैं।

भावार्थ—उन्मान प्रमाण उसका नाम है जिसके द्वारा पदार्थों का उन्मान किया जाता है और पदार्थ उन्मान प्रमाण में स्थापन किये जाते हैं। जैसे कि—अर्द्ध कर्ष १, कर्ष २, अर्द्ध पल ३, पल ४, अर्द्ध तुला ५, तुला ६, अर्द्धभार ७, भार ८। दो अर्द्धकर्षों का एक कर्ष होता है, दो कर्षों का अर्द्ध पल होता है, दो अर्द्धपलों का एक पल होता है, १०५ पलों का एक तुला होता है और दश तुलाओंका अर्द्ध भार होता है। सो इस प्रमाण का मुख्य प्रयोजन यह है कि-जो पत्र, अगर, तगर, चोक, कुंकुम, खांड, गुड़, मिसरी आदि द्रव्य हैं उनके प्रमाण की सिद्धि की जाती है। इसी लिये इसे उन्मान प्रमाण कहते हैं।

अथ अवमान और गणित प्रमाण विषय।

से किं तं अवमाणे ? जएणं अवमिणिज्जइ, तं जहा हत्थेण वा १, दंडेण वा २, धणुएण वा ३, जुगेण वा ४, नालियाए वा ५, अक्खेण वा ६, मूसलेण वा ७, दंडं धणु जुगनालियं अक्खमुसलं च चउहत्थं दस नालियं च रज्जु वियाणओ उम्माणसंन्नाए १ वत्थुमिहत्थमिज्जं छेत्तं दंडं धणु च पत्थमिखायं च नालिए वियाण उम्माणसंन्नाए। एएणं अवमाणप्पमाणेणं किं पउयणं ? एएणं अवमाणप्पमाणेणं खायचियकरकवियकडपडभित्तिपरिक्खेव संसियाणं दव्वाणं अवमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ, से तं अवमाणे। से किं तं गणिमे ? जेणं गणिज्जइ, तं जहा–एगो दस सय सहस्सं दससहस्सं सहसहस्सं दससयसहस्साइं कोडी। एएणं कम्मेणं गणिमप्पमाणेणं किं पउयणं ? एएणं गणिमप्पमाणेणं भयगभइभत्तवेयणआयव्वयनिस्सियाणं दव्वाणं गणिमप्पमाणेणं निव्वत्तिलक्खणं भवइ, से तं गणिमे ॥ ४ ॥

पदार्थ–(से किं तं अवमाणे ? जन्न अवमिणिज्जइ, तं जहा) अवमान किसे कहते हैं ? जिसके द्वारा अवमान किया जाय उसे अवमान कहते हैं। यह सर्व कथन कर्मसाधन की अपेक्षा से किया जाता है। जैसे कि––(हत्थेण वा) चतुर्विंशति अंगुल प्रमाण हस्त होता है उस हस्त करके पदार्थों का अवमान किया जाता है (दंडेण वा) चार हस्त प्रमाण दंड होता है, उस दंड करके अथवा (धणुएण वा) धनुष करके (जुगेण वा) युग करके (नालियाए वा) नालिका करके (अक्खेण वा) अक्ष करके (मूसलेण वा) मुशल करके, सो यह सर्व (दंडं धणुं जुग नालिं अक्ख मुसलं च चउहत्थं) दंड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष, मुशल, इन छहों की एक ही संज्ञा है, और ये सर्व चार हस्त प्रमाण होते हैं, अथवा धनुष के छह नाम हैं। ये सर्व ९६ अंगुलप्रमाण

होते हैं और (दसनालिये च रज्जु) दश नालिका से एक रज्जु उत्पन्न होती है। अर्थात् रज्जु दश नालिका प्रमाण होती है सो (वियाण अवमाणसंन्नाए ?) इस प्रकार से जानना चाहिये। यही अवमान की संज्ञा है। (वत्थुमिहत्थमिज्जं) हाट, वास्तु, घर, यावन्मात्र भूमि गृह हैं। वे सर्व भूमि गृह हस्तादि से गिने जाते हैं। इसलिये सूत्र में हस्त शब्द आया है और (खेत्तं दंडं) क्षेत्र कृषि कर्मादि विषयक भूमि का मान दंड से किया जाता है। (धणुं च पंथमि) धनुष से पंथादि का मान किया जाता है, जैसे कि जब मार्ग का प्रमाण किया जाता है तब धनुष आदि के द्वारा ही मान करते हैं और (खायं च नालियाए) खाई कूप आदि का प्रमाण नालिका से किया जाता है तथा नालिका प्रमाण दंड से किया जाता है (वियाण अवमाणसंन्नाए) इस प्रकार अवमान प्रमाण में दंडादि का प्रमाण जानना चाहिये। अवमान संज्ञा इन्हींकी जाननी चाहिये। (एएणं अवमाणप्पमाणेणं किं पयोयणं)? इस अवमान प्रमाण के कहने का क्या प्रयोजन है, (एएणं अवमाणप्पमाणेणं) इस अवमान प्रमाण से (खाय) खाई कूपादि (चय) ईंटादि रचित प्रासाद (करकचिय) करवत से विदारित काष्ठादि (कड) कट मंचादि (पड) वस्त्र (भित्त) भीत (परिक्खेव) नगरादि की परिधि (संसियाणं दव्वाणं अवमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ) इत्यादि के आश्रित द्रव्यों के अवमान की जो सिद्धि निष्पन्न होती हैं (से तं अवमाणे) वही अवमान प्रमाण है अर्थात् उक्त स्थानों में जो भूमि वा द्रव्य हैं उनका नाप उक्त प्रमाण से किया जाता है, इसीलिये इसे अवमाण प्रमाण कहते हैं और उक्त पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होना, यही इसका लक्षण है। (से किं तं गणिमे ? जेणं गणिज्जइ, तं जहा) गणिम प्रमाण किसे कहते हैं ? गणिम प्रमाणके द्वारा गणना की जाती है। यह कथन भी कर्मसाधन की अपेक्षा से ही है। जैसे कि (एगो दस सय) एक-१, दश-१०, सौ-१००, (दससहस्सं) दश सहस्र १०००० (सयसहस्सं) एक लाख १००००० (दससयसहस्साइं) दश लक्ष १०००००० (कोडी) क्रोड १००००००० , ये सब गणनाएँ दशगुणा करने से होती हैं (एएणं कम्मेणं गणिमप्पमाणेणं किं पओयणं ?) इस अनुक्रम गणिम प्रमाण से क्या प्रयोजन है ? (एएणं गणिमप्पमाणेणं) इस गणिम प्रमाण से (भयगभइभत्तवेयण) भृतक वृत्ति, भोजन देना और वेतन देना अथवा (आयव्वय) आमदनी और खर्च (निस्सियाणं दव्वाणं गणिमप्पमाणेणं निव्वत्तिलक्खणं भवइ, से तं गणिमे) इनके आश्रित जो भृतकों को वेतनादि जो दिये जाते हैं वे सर्व गणिम प्रमाण के द्वारा ही कार्य सिद्ध होते हैं तथा आय व्यय का जो मूल साधन है वह भी गणिम प्रमाण के द्वारा ही सिद्ध है और सांसारिक व्यवहार सर्व गणिम प्रमाण के ही आश्रित हैं। सूत्र में करोड पर्यन्त गणना की गई है किन्तु सर्व संख्या १५४ अक्षर पर्यन्त है।

भावार्थ--अवमान प्रमाण के द्वारा वस्तुओं का प्रमाण किया जाता है। जैसे कि—हस्त से १, दंड से २, धनुष से ३, युग से ४, नालिका से ५, अक्ष से ६, और मुशल से ७। हस्त का प्रमाण २४ अंगुल का होता है और दंडादि छहों, चार हस्त प्रमाण होते हैं। भूमि, गृह आदि का हस्तादि से अवमान किया जाता है। क्षेत्र कृषि कार्यादि के वास्ते दंडादि से प्रमाण किया जाता है। राजमार्ग को धनुषके द्वारा मान करते हैं। खाई और कूपादि स्थान का नापना नालिका से कियो जाता है। अतः इनके कथन का मुख्य प्रयोजन यही है कि खाई, इष्टकादि से प्रासाद का बनाना, काष्ठादि का विदारण, कट, पट, भींति, परिधि इत्यादि की सिद्धि अवमान प्रमाण के द्वारा की जाती है तथा उक्त स्थानों में जो द्रव्य आश्रित हैं उनका प्रमाण भी उक्त प्रमाण के ही द्वारा होता है। इसी को अवमान प्रमाण कहते हैं। और गणिम प्रमाण निम्न प्रकार से है। जैसे कि एक १, दश १०, सौ १००, सहस्र १०००, दश सहस्र १००००, लक्ष १०००००, दश लक्ष १००००००, कोटि १००००००००, इनको उत्तरोत्तर दशगुणा करनेसे निश्चितार्थ की सिद्धि होती है और इसका मुख्य प्रयोजन भृतक आदिकों को वेतन देना और अपनी आय व्यय की सँभाल करना है। इसी को गणिम प्रमाण कहते हैं। तथा यावत् मात्र द्रव्य हैं उनकी भी संख्या उक्त प्रमाण द्वारा ही की जाती है।

अथ प्रतिमान प्रमाण विषय।

से किं तं पडिमाणे? जण्णं पडिमिणिज्जइ, तं जहा गुंजा १, कांगणी २, णिफावो ३, कम्ममासओ ४, मंडलओ ५, सुवन्नो ६, पंच गुंजाओ कम्ममासओ, चत्तारि कांगणीओ कम्ममासओ, तिण्णि निफ्फावो कम्ममासओ, एवं चउक्को कम्ममासओ, वारस कम्ममासओ मंडलओ, एवं अडयालीसाय कांगलीओ मंडलो, सोलस्स कम्ममासगा सुवन्नो, एवं चउसट्टिए कांगणीओ सुवन्नो, एएणं पडिमाणप्पमाणेणं किं पउयणं? एएणं पडिमाणप्पमाणेणं सुवण्ण १,

रजत २, तंब ३, मणि ४, मोत्तिअ ५, संक्ख ६, सिलप्पवाला-इयाणं ७ दव्वाणं पडिमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ। से तं पडिमाणे से तं विभाग निप्फन्ने। से तं दव्वप्पमाणे॥

पदार्थ—(से किं तं पडिमाणे ? जएणं पडिमिणिज्जइ, तं जहा–) प्रतिमान किसे कहते हैं ? जिस करके सुवर्ण आदि पदार्थों का मान किया जाता है उसे 'प्रतिमान' कहते हैं जैसे कि—(गुंजा) रक्तिका १ (कागणी) सपाद गुंजा को 'काकणी' कहते हैं २, (निप्फावो) त्रिभागोन दो गुंजाओं के प्रमाण को 'निष्पाव' कहते हैं ३, (कम्ममासओ) तीन निष्पावों का एक 'कर्ममाषक' होता है ४, (मंडलओ) द्वादश कर्ममाषकों का एक 'मंडल' होता है ५, (सुवन्नो) षोडश कर्म माषकों का एक 'सुवर्ण' होता है अर्थात् षोडश कर्ममाषकों का एक सोनईया होता है ६। उक्त अर्थों को सूत्र ही विस्तारपूर्वक कहता है जैसे कि—(पंचगुंजाओ कम्ममासओ) पांच रक्तिकाओं का एक कर्म माषक होता है अथवा (चत्तारि कांग-णीओ कम्ममासओ) चार कांकणियों का एक कर्ममाषक होता है, (तिण्णि निप्फावो कम्ममासओ) तीनों निष्पावों का एक कर्ममाषक होता है (एवं चउको कम्म-मासओ) इसी प्रकार चार कांकणिओंका एककर्ममाषकहोता है। ऊपर जो तीनोंप्रकार से कर्ममाषक का विवरण किया गया है उसमें जिस कर्ममाषक को कहने को वक्ता की इच्छा हो उसे ही ग्रहण करके एक इष्ट कार्य की सिद्धि कर लेता है। इसीलिये अर्थ के भेद न होने से उसे चतुष्क कर्ममाषक' कहते हैं। (वारसकम्ममासओ मंडलओ) द्वादश कर्ममाषकों का एक 'मंडलक' होता है (एवं अडयालीसाय कांगणिओ मंडलओ) इसी प्रकार अड़तालीस कांकणियों का भी एक मंडलक होता है (सोलस कम्ममासगो सुवन्नो) षोडश कर्ममाषक का एक सुवर्ण होता है (एवं चउसट्ठिए कांगणीओ सुवन्नो) इसी प्रकार चौंसठ काकणियों का भी एक सुवर्ण होता है (एएणं पडिमाणप्पमाणेणं किं पयोयणं ?) इस प्रतिमान प्रमाण के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएणं पडिमाणप्पमाणेणं) इस प्रतिमान के द्वारा (सुवराण) सुवर्ण (रयय) रजत (तंव) ताम्र (मणि) मणि चन्द्रकान्तादि (मोत्तिय) मोती (संकख) संख (सिलप्पवालाइयाणं) शिला—राजपट्टक गंध, प्रवाल आदि (दव्वाणं पडिमाणप्पमाणनिव्वत्तिलक्खणं भवइ) द्रव्यों के प्रतिमान प्रमाण की सिद्धि की लक्षणता होती है और यही इसकी सिद्धि का लक्षण होता है (से तं पडिमाणे) इसे ही प्रतिमान प्रमाण कहते हैं (से तं विभागनिप्फन्ने

यही विभाग निष्पन्न प्रमाण है और (से तं दव्वप्पमाणे) यही द्रव्य प्रमाण का विवरण है अर्थात् पांच विध से विभागनिष्पन्न द्रव्य प्रमाण का समर्थन किया गया।

भावार्थ—प्रतिमान प्रमाण उसे कहते हैं जिसके द्वारा सुवर्णादि पदार्थों का मान किया जाता है। जैसे कि-गुंजा १, कांगणी २, निष्पाव ३,कर्ममाषक ४, मंडलक ५,सुवर्ण ६ । इनका प्रमाण निम्न प्रकार से है-पांच गुंजा का कर्ममाषक होता है तथा चार कांगणी का भी कर्ममाषक होता है तथा तीनों प्रमाणों से गृहीत वक्ता की इच्छानुसार चतुर्थ संज्ञक कर्म माषक है तथा चार कांकणी प्रमाण जो कर्ममाषक वर्णन किया गया है उन द्वादश कर्ममाषकों का एक मण्डलक होता है अड़तालीस कांकणियों का एक मंडल होता है और षोडश कर्म माषकों का एक सुवर्ण (सोनइया) होता है अथवा चौसठ कांकणियों का एक सुवर्ण होता है। इस प्रमाण के कथन करने का मुख्य प्रयोजन सुवर्ण १, रजत २, ताम्र ३ मणि ४, मोती ५, संख ६ आदि पदार्थों के मान करने का ही है इसे प्रतिमान प्रमाण कहते हैं। इसे ही विभागनिष्पन्न प्रमाण कहते हैं * ।

नोट*—किन्तु यह प्रमाण मगध देश के अनुसार कहा गया है। इस लिये चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश आदि के अनुसार मगधदेश का मान जो शार्ङ्गधर ने ग्रहण किया है उसको भी हम यहां पर उद्धृत करते हैं । यथाः—

औषधों के मान की परिभाषा।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

अर्थ—मान परिमाण के बिना औषधों की युक्ति-कर्तव्य विधि कहीं नहीं होती। अतएव औषध बनाने के लिये मान-तोलने आदि की विधि इस संहिता में कही जाती हैः—

त्रसरेणु का परिमाण।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ।
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—तीस परमाणुओं का 'त्रसरेणु' होता है और उसी को 'वंशी' भी कहते हैं। अन्यत्र भी कहा गया है कि-'जालान्तर्गतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते' अर्थात् जाली झरोखों में जो सूर्य की किरणों में रज उड़ती हुई दीखती हैं उसको वंशी कहते हैं। वे नेत्रों करके नहीं जाने जाते।

परमाणु के लक्षण ।

जालान्तर्गते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः सः उच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जाली झरोखे में सूर्य की किरण उड़ते हुए दीखते हैं उस रज के तीसवें भाग को 'परमाणु' कहते हैं ।

मरीचि आदि का परिमाण ।

षड्वंशीभिर्मरीची स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ।
तिसृभी राजकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ।
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्याच्च चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

अर्थ—छह वंशी की एक 'मरीची', जो रेतीली जमीन में धूल के बारीक कण सूर्य की किरणों से चमकते हैं, होती है । छह मरीचियों की एक 'राई', तीन राई की एक सफेद सरसों होती है, आठ सफेद सरसों का एक 'यव' होता है और चार यव की एक 'गुञ्जा'-'रत्ती'-'घोंघची' होती है ।

मासे का परिमाण ।

षड्भिस्तु रत्तिकाभिस्स्यान्माषको हेमधान्यकौ ।

अर्थ—छह रत्ती का एक 'मासा' होता है* । उसको 'हेम' और 'धान्यक' भी कहते हैं ।

शाण और कोल का परिमाण ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्यात् हरणः स निगद्यते ॥ १८ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ।
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—चार मासे का 'शाण' होता है उसको 'हरण', 'टंक' भी कहते हैं । जहां जहां मासा आवे वहां वहां छह रत्तीका मासा जानना । दो शाण का एक 'कोल' होता है । उसको 'क्षुद्रभ', 'वटक', और 'द्रँक्षण' भी कहते हैं । कोल नाम बेर का है, उसके बराबर होने से इस मान की कोल संज्ञा रक्खी है ।

नोटः*—कोई पांच रत्ती का, कोई सात रत्ती का और कोई दस रत्ती का भी 'मासा' कहते हैं ।

कर्ष का परिमाण ।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका ।
अक्षपिचुः पाणितलं किंचित् पाणिश्च तिन्दुकम् ॥२०॥
बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ।
करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् ।
उदुंवरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ—दो कोल का का एक 'कर्ष' होता है, उसको 'पाणिमानिका', 'अक्ष-पिचु', 'पाणितल', 'किंचित्पाणि', 'तिंदुक', 'विडालपदक', 'षोडशिका', 'कर-मध्य', 'हंसपदक', 'सुवर्ण', 'कवल' और 'उदुंवर' भी कहते हैं अर्थात् यह १३ नाम उसी कर्ष के हैं। अक्ष नाम बहेड़े का है, उसके बराबर होने से इसे कर्ष को अक्ष कहते हैं। तेंदु के फल समान होने से उसकी तेंदुक संज्ञा है। हथेली भरकी पाणितल संज्ञा है। तीन अंगुली करके ग्राह्य है, अतएव इसकी विडालपद संज्ञा है। सोलह मासे का होता है, इस कारण इसकी षोडशिका संज्ञा होती है और गूलर के समान होने से इस कर्ष की उदुंवर संज्ञा आचार्यों ने की है। इसी प्रकार जितनी संज्ञा इस परिभाषा में है, वे सब सार्थक हैं। आजकल व्यवहार में उस कर्ष को 'तोला' कहते हैं। सोने, चांदी, हीरा, मोती आदि बहुमूल्य चीजें इससे तोली जाती हैं, इसलिये; अथवा मन, सेर, छटांक आदि तोलने के बांट इसी के आधार से बनाये जाते हैं, इसलिये भी इसको 'तोला' कहते हैं।

अर्द्ध पल और पल का परिमाण ।

स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।
प्रकुंचः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥२२॥

अर्थ—दो कर्ष का एक 'अर्द्धपल' होता है, उसी को शुक्ति–सीप और 'अष्टमिका' कहते हैं। दो शुक्ति का पल होता है। उसको 'मुष्टि', 'आम्र', 'आम्रफल', 'चतुर्थिका', 'प्रकुञ्च', 'षोडशी' और 'बिल्व' भी कहते हैं।

प्रसृति से मानिका पर्यन्त का परिमाण ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवो अर्द्धशरावकः ॥२३॥

अथ

से किं तं

णिप्फगणेय विभ

एगपएसोगाढे,

से तं पएसनिप्फ

विहत्थी रयणी

लोगम लोगे वि

पदार्थ—(से किं

क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार

विभागणिप्फन्ने य) प्रदेश

गाढे दुपएसोगाढे संखिज्ज

किस प्रकार से होता है

संख्यात प्रदेशावगाहो,

कि प्रदेश निर्विभाग है।

प्रदेश निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण

कुत्थी) विभाग निष्पन्न

विभाग रूप क्षेत्र कहते हैं

इसी प्रकार वितस्ती हस्त

अर्थ—चार अं

बांस अथवा लोह आ

सोना, चांदी, तांबा, ज

जाते हैं। इसके द्वारा

यदौषधं

तन्नाम्नैव

अर्थ—जिस प्रयो

प्रयोग कहलाता है। जैसे

और गिलोय है। इसी क

काढ़ा कहलाता है। इस

आदि में भी जानना चा

ज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका।
तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २४ ॥

सृति' होती है। उसी को प्रसृत भी कहते हैं। दो
है। उसी को 'कुडव', 'पाव सेर' 'अर्द्धशरावक' और
व की एक 'मानिका' होती है। उसको 'शराव' +

र आढक का परिमाण।

भवेत्प्रस्थः चतुःप्रस्थैस्तथाढकम्।
त्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २५ ॥

'प्रस्थ'–सेर होता है। चार सेर का एक 'आढक'
और 'कंसपात्र' भी कहते हैं। यह चौंसठ पल का

द्रोणी पर्यन्त का परिमाण।

ः कलशोनल्वणोन्मनौ।
राशिर्द्रोणपयायसंज्ञकाः ॥ २६ ॥
कुम्भी च चतुःषष्टिशरावकाः।
द्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ २७ ॥

एक 'द्रोण' होता है। उसको 'कलश', 'घट' और
'सूर्प'–सूप होता है। उसको 'कुंभ' भी कहते हैं।
। एवं दो सूर्प की एक 'द्रोणी' होती है। उसको
।

ी का परिमाण।

खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
षण्णवत्यधिका च सा ॥ २८ ॥

क 'खारी' होती है। उसके चार हजार छयानवे

तुला का परिमाण।

च भार एकः प्रकीर्तितः।
ज्ञेया सर्वत्र वैष निश्चयः ॥ २९ ॥

होता है।

र उच्यते। खारी भारद्वये नैव स्मृता षड् भाजनाधिका ॥

अर्थ--दो हजार पल का एक 'भार' होता है और सौ पल की एक 'तुला' होती है। यह तोल केवल मगध देश में ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण देश में मानी जाती है।

सब मानों का परिमाण।

मापटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा ॥ ३० ॥

अर्थ--मासे से लेकर खारी पर्यन्त एक से दूसरी तोल चौगुनी जाननी चाहिये। जैसे ४ मासे का एक शाण, ४ शाण का एक कर्ष, ४ कर्ष का एक विल्व, ४ विल्व की एक अञ्जलि, ४ अञ्जलि का एक प्रस्थ, ४ प्रस्थ का एक आढक, ४ आढक की एक राशि, ४ राशि की एक गोणी, ४ गोणी की एक खारी और इसी प्रकार आगे भी एक मान से दूसरी तोल चौगुनी जाननी चाहिये।

गीली, सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओं का परिमाण

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ३१ ॥
प्रस्थादि मानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥ ३२ ॥ ‡

अर्थ—जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषधि लेनी हो तो प्रस्थ से लेकर तुला पर्यन्त इनकी तोल सूखी औषधि की अपेक्षा दुगुनी लेवे तथा तुला से लेकर द्रोण पर्यन्त इनको दुगुना लेवे, अतएव इनका मान सूखी औषधि के समान लेवे। इस अभिप्राय को स्नेहपाक में प्रायः मानते हैं। तत्काल की लाई हुई औषधि को गीली कहते हैं। जो धूप में सुखा ली हो अथवा बहुत दिन की रक्खी हुई हो उस औषधि को शुष्क कहते हैं।

कुडव पात्र बनाने की रीति।

मृदस्तुवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम्।
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥

नोट:‡—रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्। शुष्कद्रव्यार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥१॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्रवादिद्विगुणस्त्विदम्। कुडवोऽपि क्वचिद् दृष्टं यथा दन्ती घृते मतः ॥२॥
शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा। शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ॥३॥

अथ क्षेत्र प्रमाण विषय।

से किं तं खेत्तप्पमाणे ? दुविहे पण्णत्ते तं जहा-पएस णिप्फण्णेय विभागणिप्फण्णेय। से किं तं पएसनिप्फन्ने ? एगपएसोगाढे, दुपएसोगाढे, संखिज्जप०, असंखिज्जप० से तं पएसनिप्फन्ने। से किं तं विभागनिप्पन्ने ? अंगुल विहत्थी रयणी कुत्थी गाउयं च बोधव्वं जोयण सेढीपरं लोगम लोगे वियतहेव ॥२॥

पदार्थ—(से किं तं खेत्तप्पमाणे? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा) क्षेत्र प्रमाण किसे कहते हैं? क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है. जैसे कि—(पएसनिप्फन्ने य विभागणिप्फन्ने य) प्रदेश निष्पन्न और विभाग निष्पन्न (से किं तं पएसनिप्फन्ने य? एगपएसोगाढे दुपएसोगाढे संखिज्जपएसोगाढे असंखेज्जपएसोगाढे, से तं पएसनिप्फन्ने) प्रदेश निष्पन्न किस प्रकार से होता है ? जैसे कि-एक प्रदेशावगाही पुद्गल, द्विप्रदेशावगाही, संख्यात प्रदेशावगाही, असंख्यात प्रदेशावगाही द्रव्य। ये सर्व प्रदेशनिष्पन्न हैं। क्यों कि प्रदेश निर्विभाग है। उस में द्रव्य यावन्मात्र प्रदेशों पर ठहरता है। इस अपेक्षा से प्रदेश निष्पन्न क्षेत्र प्रमाण होता है। (से किं तं विभागनिप्फन्ने ? अंगुल विहत्थी रयणी कुत्थी) विभाग निष्पन्न किसे कहते हैं ? जो क्षेत्र के विभाग से उत्पन्न हो, उसे विभाग रूप क्षेत्र कहते हैं। जैसे कि-अंगुली प्रमाण जो क्षेत्र है, उसे अंगुल कहते हैं इसी प्रकार वितस्ती हस्त कुक्ष (गाउयं च बोधव्वं) और कोश भी जानना चाहिये

अर्थ—चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा तथा चार अंगुल गहरा, बांस अथवा लोह आदि के पात्र को 'कुडव' कहते हैं। आदि शब्द से यहां पर सोना, चांदी, तांबा, जस्त, रांग, कांसा, शीशा, चाम, सींग, दांत भी लिये जाते हैं। इसके द्वारा दूध, जल, तेल, घृत नापा जाता है।

औषधों का नामकरण।

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते।
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः॥ ३२॥

अर्थ—जिस प्रयोग में जो प्रथम औषधि है उसी औषधि के नाम से वह प्रयोग कहलाता है। जैसे क्षुद्रादि, गुडूच्यादि क्वाथ। इनमें प्रथम कटेरी, रास्ना और गिलोय है। इसी कारण क्षुद्रादि काढ़ा, रास्नादि काढ़ा और गुडूच्यादि काढ़ा कहलाता है। इसी प्रकार चंदनादि तैल, कूष्मांड पाक, हिंग्वष्टक चूर्ण आदि में भी जानना चाहिये।

तथा (जोजण) योजन (सेढी) श्रेणि (पयरं) प्रतर (लोगं) लोक (अलोगे त्रि य तहेव) अलौक। अपिशब्द समुच्चय अर्थ में हैं। इसलिये लोकालोक भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

भावार्थ—क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न। एक प्रदेश-अवगाही परमाणु से लेकर असंख्यात-प्रदेश अवगाही द्रव्यपर्यन्त प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण होता है। यद्यपि द्रव्य स्वगुण में प्रमेय है तथापि क्षेत्र सम्बन्ध की अपेक्षा से उसे क्षेत्र प्रमाण ही कहा जाता है। विभागनिष्पन्न—अंगुल १, वितस्ती २, हस्त ३, कुक्ष ४, धनुष् ५, कोश ६, योजन ७, श्रेणि ८, प्रतर ९, लोक १०, और अलोक ११, ये सब विभागनिष्पन्न क्षेत्र प्रमाण के उदाहरण हैं।

अथ अंगुल विषय।

से किं तं अंगुले? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—आयंगुले उस्सेहंगुले पमाणंगुले। से किं तं आयंगुले? जेणं जया मणुस्सा भवंति, तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं. दुवालसअंगुलाइं मुहं, नवमुहाइं पुरिसे पमाणजुत्ते भवइ, दोणिए पुरिसे माणजुत्ते भवइ, अद्धभारं तुल्लमाणो पुरिसे उम्माणजुत्ते भवइ, माणुम्माणप्पमाणजुत्तालक्खणवंजणगुणेहिं उववेया। उत्तमकुलप्पसूया उत्तमपुरिसा मुणेयव्वा॥ हुंति पुण अहियपुरिसा अट्ठसयं अंगुलाण उव्विद्धा। छण्णउइ अहम्म पुरिसा, चउत्तरं मज्झिमिल्लाओ॥ हीणा वा अहिया वा जे खलु सरसत्तसारपरिहीणा। ते उत्तमपुरिसाणं अवसा पेसत्तणमुवेंति॥ एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पायो, दो पायाउ विहत्थी, दो विहत्थीओ रयणी, दो रयणीओ कुच्छी,

दो कुच्छीओ दंडं, धणुजुगेनालियाअक्खमूसले, दो धणु-सहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउमाइं जोअणं। एएणं अंगुलप्पमाणेणं किं पयोयणं? एए णं अंगुलेणं जे णं जया मणुस्सा हवंति तेसि णं तया णं आयंगुलेणं अगडत-लागदहनदीवाविपुक्खरिणीदीहियगुंजालियाओ सरसरपंति-आयो विलपंतिआयो आरामुज्जाणकाणणवणवणसंडवण-राईओ देउलसभापवाथूभखाइअपरिहाओ पागारअट्टालय-चरियदारगोपुरपासायघरसरणलयणआवणसिंघाडगतिगच-उक्कचउमुहमहापहपहासडगरहजाणजुग्गागिल्लिथिल्लिसि-वेयसंदमाणिआयो लोहीलोहकडाहकडिल्लयभंडमत्तोवगर-णमाईणि, अज्जकालियाइं च जोयणाइं मविज्जंति, से समासओ तिविहे पएणत्ते, तं जहा—सूईअंगुले, पयरंगुले, घणंगुले, अंगुलाययया एगपएसिया सेढी सूईअंगुले, सूई सूई गुणिया पयरंगुले, पयरं सूइए गुणियं घणअंगुले, एएसि णं सूईअंगुलं पयरंगुलं, घणअंगुलाणं कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहु वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? सवत्थोवे सूईअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणअंगुले असंखेज्जगुणे, से तं आयंगुले ॥

पदार्थ—(से कि तं अंगुले? तिविहे पएणत्ते, तं जहा—) अंगुल कितने प्रकार से वर्णित है? तीन प्रकार से वर्णन किया गया है। जैसे कि—(आयंगुले १, उस्सेहंगुले २, पमाणंगुले ३) आत्मांगुल १, उत्सेधांगुल २, और प्रमाणांगुल ३ (से किं तं आयंगुले?) आत्मांगुल किसे कहते हैं? (जे णं जया मणुस्सा हवंति) जिस काल में जो

भरत सगर आदि प्रमाणयुक्त मनुष्य होते हैं, उस काल की अपेक्षा से उनका आत्मांगुल ग्रहण होता है। क्योंकि—'आत्मनामंगुलमात्मांगुलम्' जो आत्मा का अंगुल है वही आत्मांगुल होता है। तात्पर्य—जिस काल में जो जीव उत्पन्न होते हैं उस काल में उनका आत्मांगुल कहा जाता है। (तेसिं णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालस्स अंगुलाइं मुहं) उन भरत सगरादि मनुष्यों का अपने अपने अंगुल से द्वादश अंगुल प्रमाण मुख होता है (नवमुहाइं पमाणजुत्ते पुरिसे भवइ) नव-मुख-प्रमाण-युक्त पुरुष होता है अर्थात् एकसौ आठ अंगुल प्रमाण पुरुष होता है। (दोणिए पुरिसे माणजुत्ते भवइ) मान युक्त उसे कहते हैं, जैसे—किसी व्यक्ति को एक विस्तार पूर्वक मानोपेत जलकुण्ड में बैठा दिया, फिर उसके अनन्तर द्रोणिक प्रमाण जल उस कुण्ड से निकाल लिया, उसे 'द्रोणिक पुरुष' कहते हैं। तथा द्रोण परिमाण न्यून जल कुण्डिका में पुरुष के प्रवेश होने पर कुण्डिका पूर्ण हो जाती है। इससे भी उसे 'द्रोणिक पुरुष' कहते हैं।

अथ उन्मान प्रमाण विषय।

(अद्धभारं तुलमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवइ) जिसका शरीर शुभ पुद्गलों से रचित है, उसको तुला में रोपित किया हुआ यदि अर्द्ध भार के प्रमाण वह पुरुष हो तो वह पुरुष उन्मान प्रमाण युक्त होता है। (माणुम्माणप्पमाणजुत्ता) मान उन्मान प्रमाणयुक्त चक्रवर्त्यादि पुरुष जो (लक्खण) लक्षण—शंख, स्वस्तिकादि (वंजण) व्यंजन—तिल माषादि (गुणेहिं) गुण—क्षमादि करके (उववेया) उपेत—संयुक्त (उत्तमकुलप्पसूया) और उग्रादि उत्तम कुलों में जो उत्पन्न हुआ है उसे (उत्तमपुरिसा मुणेयव्वा) उत्तम पुरुष जानना चाहिये। (हुंति पुण अहियपुरिसा) अधिक अंगुल प्रमाण उत्तम पुरुष होते हैं, जैसे (अट्ठसयं अंगुलाणं उव्विद्धा) एकसौ आठ अंगुल के आत्मांगुल से ऊंचे। (छन्नउइ अहम्मपुरिसा) आत्मांगुल के प्रमाण से जो छ्यानवे अंगुल ऊंचा हो वह अधम पुरुष होता है (चउरुत्तरा मज्झिमिल्लाउ) जो एकसौ चार अंगुल प्रमाण ऊंचा हो वह मध्यम पुरुष होता है। (हीणा वा अहिया वा) उक्त प्रमाण से अर्थात् १०८ अंगुल से जो हीन वा अधिक और (जे खलु सरसत्तसारपरिहीणा) जो निश्चय ही आदेय स्वर और सत्त्व अथवा शारीरिक शक्ति, इन गुणों से रहित होता है, (ते उत्तम पुरिसाणं) वह, उत्तम पुरुषों के (अवसा पेसत्तणमुवेंति) अपने कर्मों के वश होते हुए दास भाव को प्राप्त होते हैं। अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ) इन अंगुलों के प्रमाण

से छह अंगुल प्रमाण 'पाद' होता है। (दोपायाओ विहत्थी) दो पादों की एक 'वितस्ती' होती है (दो विहत्थीओ रयणी) दो वितस्तियों को एक 'रत्नी'–'हाथ' होता है। (दो रयणीओ कुच्छी) दो रत्नियों की एक 'कुक्षि' होती है (दो कुच्छिओ दंडं) दो कुक्षियों का एक दंड होता है। (धणुजुगेनालियाअक्खमूसले) धनुष्, युग, नालिका, अक्ष, मुशल, ये सब छ्यानवे अंगुल प्रमाण होते हैं (दो धणुसहस्साइं गाउयं) दो सहस्र धनुष् का एक 'गव्य'—कोस होता है (चत्तारि गाउयाइं जोअणं) चार कोसों का एक 'योजन' होता है (एएणं अंगुलप्पमाणेणं किं पयोयणं?) इस अंगुल प्रमाण का क्या प्रयोजन है? (एएणं अंगुलप्पमाणेणं) इस अंगुल प्रमाण से (जे णं जया मणुस्सा हवन्ति) जो जिस काल में मनुष्य होते हैं (तेसिं णं तया आरामुज्जाणं) उनके बाग, आराम, उद्यान सब आत्मांगुल से मान किये जाते हैं (काणणवण) सामान्य वृक्ष युक्त अथवा अटवी पर्वत युक्त जो वन है उसको 'कानन' कहते हैं। और जिस स्थान में एक जाति के वृक्ष हों उसको 'वन' कहते हैं (वणसंडवणराइओ) एक जाति के वृक्षों से आकीर्ण वनको 'वनखण्ड' और वन पंक्ति को 'वनराजि' कहते हैं (अगडतलागदह) कूप, तड़ाग, ह्रद, (नदीवावि) नदी, वापी (पोक्खरिणी) वृत्त जलाशय को 'पुष्करिणी' कहते हैं तथा कमलों से युक्त (दीहिय) दीर्घ जलाशय (गुंजालियाओ) वक्र गुञ्जालिका–जलाशय विशेष (सर) स्वयं संभूत जलाशय (सरपंत्तीआओ) सर पंक्ति रूप किए हुए, जैसे कि एक सर से पानी द्वितीय तृतीयादि सरों में चला जावे (सरसरपंतियाउ) सरसर पंक्तियाँ एक सर से द्वितीय तृतीय आदि में पानी वा पुरुषों का संचार हो सके, कपाटादि के द्वारा वा अन्य प्रकार से (बिलपंतियाओ) कूपों की पंक्तियां (देवकुल) मन्दिर विशेष (सभा) सभा—पुस्तकशाला अथवा जिस स्थानमें अनेक पुरुषों का समूह एकत्र होवे (पवा) पर्व स्थान तथा जलपान स्थान (थूभ) स्तूप (चेईय *) मृत्तिका आदि की वेदिका बनाना (खाइय) खाई उसे कहते हैं जो नीचे से संकीर्ण हो और ऊपर से विस्तीर्ण हो (परिहाओ) परिखा (पागार) नगरकोट (अट्टालय) प्राकार—ऊपर आश्रयस्थान (चरिय) गृहों और प्राकार के अन्तर में जो अष्ट हस्त प्रमाण विस्तीर्ण राजमार्ग हो उसे 'चरिका' कहते हैं (दार) द्वार (गोपुर) द्वारों के जो परस्पर अन्तर स्थान हैं उन्हें 'गोपुर' कहते हैं अथवा राज्य भवन (पासाय) प्रासाद (महल) महल (सिंघाडगतिगचउक्कचच्चमुह) शृङ्गार

---

* यह पाठ टीकाकार ने ग्रहण नहीं किया है। इसलिये यह प्रक्षेप प्रतीत होता है। तथा चैत्य शब्द का यथा स्थान अर्थ करना चाहिये।

के आकार पर मार्ग अथवा जहाँ पर तीन मार्ग एकत्र हों, चार राजमार्ग एकत्र हों तथा चतुर्मुख देवकुलादि (महापह) महा राज्यमार्ग (पहेह) सामान्य मार्ग (सगट शकट गाड़ी (रह) रथ (जाण) यान (गिल्लि थिल्लि जुग्ग) हस्ती का हौदा, लाट देश प्रसिद्ध पलान और युग भी यान विशेष है (सीयसंधमाणीयाओ) स्पंदमान शिविका (घरसरणलेणआवण) सामान्य लोकों के घर, तृण मय घर पर्वत में घर, हट्ट(आसणसयणखंभ) आसन, शय्या, गुफादि अथवा (भंडमत्तोवगरण) मृतिकादि के भाजन, कांश्यादि के भाजन, और नाना प्रकार के उपकरण (लोहीलोह कडाह) लोही उसे कहते हैं जिसमें मंडनकादि पकाये जाते हैं तथा लोहे की कढ़ाई (कडच्छुगमाईणी) करच्छी आदि (अज्जकालियाइं जोयणाइंमविज्जंति) जिस काल में जो मनुष्य पैदा होते हैं उन्हीं की आत्मांगुल से मान की जाती हैं तथा उसी काल के योजन ग्रहण किये जाते हैं। (से समासओ तिविहे पएणत्ते, तं जहा–) वह आत्मांगुल संक्षेप से तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (सूईअंगुले) सूच्यंअंगुल (पयरंगुले) प्रतरांगुल (घणंगुले) और घनांगुल (अंगुलायया) और जो एक अंगुल प्रमाण दीर्घ और (एगपसियासेढी) एक प्रदेश की श्रेणिरूप जिसका विष्कंभ है (सूईअंगुले) उसे सूच्यंगुल कहते हैं। (सूई सूईगुणिया पयरंगुले) सूच्यंगुल को सूच्यंगुल से गुणा किया जाय तब प्रतरांगुल उत्पन्न होता है (पयरं सूईएगुणियं घणंगुले) प्रतरांगुल को सूच्यंगुल से गुणा करें तब घनांगुल उत्पन्न होता है। (एएसि णं सूईअंगुले पयरंगुले घणंगुलाणं) इन सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुलों में (कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा) परस्पर किन २ से अल्प, बहुत्व, तुल्य और विशेषाधिक है (सव्वत्थोवे सूईअंगुले) सब से स्तोक सुच्यंगुल होता है (पयरंगुले असंखेज्जगुणे) प्रतरांगुल असंख्यात गुणा अधिक है। (घणंगुले असंखेज्जगुणे) घनांगुल उससे भी असंख्यात गुणा अधिक है (से तं आयंगुले) सो उसी को आत्मांगुल कहते हैं।

भावार्थ—अंगुल तीन प्रकार से वर्णन किया गया है। जैसे—आत्मांगुल १, उत्सेधांगुल २। और प्रमाणांगुल ३। जिस कालमें जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं उनका अपने अंगुलों से १२ अंगुलों का मुख होता है, और उन्हींके अंगुलों से १०८ अंगुल प्रमाण उनका पूरा शरीर होता है। ये पुरुष उत्तम, मध्यम और जघन्य भेद से तीन प्रकार के हैं। जो पूर्ण लक्षणों से युक्त हैं और १०८ अंगुल प्रमाण जिनका शरीर होता है, वे उत्तम पुरुष हैं। १०४ अंगुल प्रमाण शरीर वाले मध्यम पुरुष हैं। ९६ अंगुल प्रमाण वाले जघन्य पुरुष हैं। अतः इन्हीं अंगुलों के प्रमाण से छह अंगुलों का एक पाद, दो पादों की एक वितस्ती, दो वितस्तियों

की एक रत्नि-हाथ, दो हस्तों की एक कुक्षि, दो कुक्षियों का एक धनुष्, दो सहस्र धनुषों का एक कोश और चार कोशों का एक योजन होता है। इसी प्रमाण से आराम, उद्यान, वन, वनखंड, कूप, तड़ाग, नदी, बावली, सर, देवकुल, सभा, स्तूप खाई, प्राकार, अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर,, प्रासाद, शृङ्गारक, त्रिक्मार्ग, चतुर्मुख मार्ग, महापथ, राजमार्ग, शकट, रथ, यान, युग, गिल्ली, थिल्ली, शिविका, घर, आपण, आसन, शयन, स्तम्भ, कडाह, दर्वी इत्यादि पदार्थ जिस समय के मनुष्य होते हैं, उक्त पदार्थ उन्हीं के अंगुलों से मान किये जाते हैं। इसे ही आत्मांगुल कहते हैं।

अंगल तीन प्रकार से वर्णन किया गया है । जैसे—सूच्यंगुल १, प्रतरांगुल २ और घनांगुल ३। असत्‌हेतु से आकाश में एक अंगुल प्रमाण दीर्घ, तीन प्रदेशरूप विस्तीर्ण और एक प्रदेश विष्कम्भरूप को 'सूच्यंगुल' कहते हैं। सूच्यंगुल को तिगुना करने से 'प्रतरांगुल' उत्पन्न होता है। यह अंगुल प्रदेश रूप होता है। प्रतरांगुल को तिगुना करने से 'घनांगुल' होता है। वह २७ प्रदेश रूप है। इनमें सबसे छोटा सूच्यंगुल है। प्रतरांगल उससे असंख्यात गुणा बड़ा है और घनांगुल उससे भी असंख्यात गुणा बड़ा है। इसी को आत्मांगुल कहते हैं।

विष्कम्भ एक प्रदेशरूप है, उसे गुणा नहीं करना, अपितु दीर्घाकार में समरूप है और घन शब्द रूढ़ि रूप है। जब प्रतर अंगुल ६ प्रदेश रूप है उसको सूचि अंगुल से गुणा किया जाय तब घनांगुल २७ प्रदेशों का सिद्ध हुआ। जैसे कि—

०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०

इस असत्य हेतु से २७ प्रदेश निष्पन्न माना जाता है। वास्तव में असंख्यात प्रदेश रूप जानना चाहिये।

से किं तं उस्सेहंगुले ? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा-परमाणु १, तसरेणू २, रहरेणु ३, अग्गं च वालस्स ४। लिक्खा ५, जूआ य ६, जवो ७, अट्ठगुणविवड्ढिया कमसो। से किं तं परमाणू ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुहुमे य

ववहारिए य, तत्थ णं जेसे सुहुमे सेट्ठप्पे, तत्थ णं जे से ववहारिए से अणंताणं सुहुमपरमाणु समुदयसमिइंसमागमेणं ववहारिए परमाणु पोग्गले निप्फज्जइ, से णं भंत्ते ! असिधारं वा खुरधारं वा उग्गाहेज्जा ? हंता उग्गाहेज्जा, से णं भन्ते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ? नो इणट्ठेसमट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कम्मइ, से णं भंत्ते ! अगणिकायस्स मज्झं मज्झेणं वीईवएज्जा ? हंता वीईवएज्जा, से णं तत्थ उज्झेज्जा ? नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कम्मइ, से णं भंत्ते ! पोक्खल संवट्टयस्स महामेहस्स मज्झं मज्झेणं वीइवएज्जा ? हंता वीइवएज्जा, से णं तत्थ उदउल्ले सिया ? नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कम्मइ, से णं भंते ! गंगाए महानदीए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा ? हंता हव्वमागच्छेज्जा, से णं तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा ? नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कम्मइ, से णं भंते ! उदयावत्तं वा उदगबिंदुं वा उग्गाहेज्जा ? हंता उग्गाहेज्जा, से णं तत्थ परियावज्जेज्जा ? (कुच्छेज्ज वा ?), नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कम्मइ, सत्थेण सुतिक्खेण वि च्छेत्तुं भेत्तुं च जं किर न सक्का। तं परमाणुं सिद्धा वयंति आइं प्पमाणाणं ॥ अणंताणं ववहारिय परमाणुपोग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उस्सण्ह-सण्हिया इ वा सण्हसण्हिया इ वा उट्ठरेणु इ वा तसरेणु इ वा रहरेणु इ वा, अट्ठ उसण्हसण्हियाओ सा एगा सण्ह-सण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उट्ठरेणू, अट्ठ उट्ठरे-

णुओ सा एगा तसरेणु, अट्ठ तसरेणुओ सा एगा रहरेणु, अट्ठ रहरेणूओ देवकुरुउत्तरकुरुगाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे, अट्ठ देवकुरुउत्तरकुरुगाणं मणुयाणं बालग्गा हरिवासरम्मगवा-साणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे, अट्ठहरिवासरम्मगवासाणं मणुस्साणं बालग्गा हेमवयएरण्णवयाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे, अट्ठ हेमवयएरण्णवयाणं मणुस्साणं बालग्गा पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे, अट्ठ पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं बालग्गा भरहेरवयाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे, अट्ठ भरहेरवयाणं मणुस्साणं वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगे जूया, अट्ठ जूयाओ से एगे जव मज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अंगुले, एएणं अंगुलप्पमाणेणं छअंगुलाइं पाउ, वारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी, छन्नउइं अंगुलाइं दंडेति वा, धणु ति वा, जुएति वा, नालि-याइ वा, अक्खेइ वा, मुसले इ वा, एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणु सहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं, एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पयोयणं ? एएणं उस्सेहंगुलेणं नेरइय-तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं सरीरोगाहणाउ मविज्जंति।

पदार्थ—(से किं तं उस्सेहंगुले ? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—) उत्सेधांगुल किसे कहते हैं ? उत्सेधांगुल उसका नाम है, जिसके द्वारा नारकादि की अवगाहना का प्रमाण किया जाय, जैसे कि (परमाणु) परमाणु १, (तसरेणु) त्रसरेणु २, (रहरेणु) रथरेणु ३, (अग्गं च बालस्स) और बालाग्र ४, फिर (लिक्खा) लीख ५, (जुयाय) जूं ६,

(जवो) यव ७, (अट्ठगुणविवड्ढिया कमसो) यह अनुक्रम से उत्तरोत्तर आठ गुणे बड़े हैं। (से किं तं परमाणु? दुविहे पएणत्ते, तं जहा–) परमाणु कितने प्रकार का है? दो प्रकारका जैसे कि–(सुहुमे य ववहारिए य) सूक्ष्म और व्यावहारिक (तत्थं णं जे से सुहुमे से ट्ठप्पे) उन दोनों भेदों में से जो सूक्ष्म परमाणु हैं वे तो स्थापनीय हैं (तत्थ णं जे से ववहारिए से अणंताणं सुहुमपरमाणु समुदयसमिइसमागमेणं ववहारिए परमाणुपोग्गले निप्फज्जइ) उनमें से जो व्यावहारिक परमाणु है, वह अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं का समुदाय रूप है और उसी के द्वारा व्यावहारिक परमाणु की उत्पत्ति होती है*। (से णं भंते! असिधारं वा खुरधारं वा उग्गाहेज्जा?) हे भगवन्! क्या यह व्यावहारिक परमाणु, खड्ग की धार अथवा क्षुरा की धार में प्रवेश कर सकता है? (हंता† उग्गाहेज्जा) हां, प्रवेश कर सकता है। (से णं‡ भंते! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा?) हे भगवन्! क्या उस व्यावहारिक परमाणु का छेदनभेदन हो सकता है? (नो इणट्ठे समट्ठे नो खलु तत्थ सत्थं कमइ) यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् इस प्रकार नहीं है तथा उस को निश्चय ही शस्त्र अतिक्रम नहीं करता (से णं भंते! अगणिकायस्स मज्झं मज्झेणं वीइवएज्जा?) हे भगवन्! क्या वह परमाणु अग्निकाय के मध्य और मध्यान्तर में प्रवेश कर सकता है? (हंता वीइवइज्जा) हां, प्रवेश कर सकता है (से णं भंते! डज्झेज्जा?) हे भगवन्! क्या वह परमाणु जल सकता है? (नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ) यह अर्थ समर्थ नहीं है। उस परमाणु को अग्नि रूप शस्त्र अतिक्रम करने में समर्थ नहीं है× (से णं भंते! पोक्खलसंवट्टयस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?) हे भगवन्! क्या वह परमाणु 'पुष्कलसंवर्त' नामक महामेघ के मध्यान्तर में प्रवेश कर सकता है? (हंता वीइवएज्जा) हां, प्रवेश कर सकता है। (से णं तत्थ उदंउल्लेसिया?) हे भगवन्! क्या वह व्यावहारिक परमाणु पानी से गीला हो सकता है? (नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ) यह तुम्हारा कथन यथार्थ नहीं है। उसको निश्चय ही पानी रूप शस्त्र अतिक्रम नहीं कर सकता (से णं भंते! गंगाए महानदीए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा?) हे भग-

---

* यह सर्व कथन व्यवहार नय के मत से कहा गया है। निश्चय के मत से इसे स्कंध ही माना जाता है।

† 'हंता' अव्यय कोमलामंत्रण में अथवा स्वीकार अर्थ में होता है। यहां पर स्वीकार अर्थ ही जानना चाहिये।

‡ 'णं' वाक्यालंकार अर्थ में होता है।

× क्योंकि अग्नि के परमाणु उसकी अपेक्षा स्थूल हैं और वह उनकी अपेक्षा से अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिये अग्निकाय पूर्वोक्त काम करने में असमर्थ है।

वन् ! क्या वह परमाणु गंगा महानदी के प्रतिश्रोत की ओर होता हुआ शीघ्र ही आ सकता है ? (हंता हव्वमागच्छेज्जा) हां, शीघ्र आ सकता है अर्थात् यदि पूर्व की ओर गंगा बहती हो तो वह परमाणु पश्चिम की ओर आ सकता है। (से णं तत्थ विणिघायमावज्जेज्जा ?) हे भगवन् ! क्या वह परमाणु वहां जल रूप हो सकता है ? (नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ) यह अर्थ समर्थ नहीं है। उसको निश्चय ही पानी रूप शस्त्र अतिक्रम नहीं कर सकता (से णं भंते ! उदयावत्तं वा उदगबिंदुं वा उग्गाहेज्जा ?) हे भगवन् ! क्या वह परमाणु उदकावर्तन में अथवा उदकविन्दु में अवगाहन कर सकता है ? (हंता उग्गाहेज्जा) हां, अवगाहन कर सकता है। (से णं तत्थ कुच्छेज्ज वा परियावज्जेज्जा वा ?) हे भगवन् ! क्या वह परमाणु उस स्थान पर पर्याय परिवर्तन कर सकता है अर्थात् क्या वह परमाणु जलरूप हो सकता है ? (णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ) यह तुम्हारा कथन यथार्थ नहीं है। उस परमाणु को जलरूपी शस्त्र अतिक्रम नहीं कर सकता (सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं भेत्तुं च जं किर* न सक्का) सुतीक्ष्ण शस्त्र से कोई भी उस परमाणु को छेदन भेदन करने में समर्थ नहीं है (तं परमाणुं सिद्धा वयंति आइं पमाणाणं) उस परमाणु को सिद्ध† भगवान् आदि प्रमाण कहते हैं अर्थात् व्यावहारिक गणना में वह परमाणु आदिभूत है और (अणंताणं ववहारिअपरमाणु पोग्गलाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया इ वा‡) अनन्त व्यावहारिक पुद्गलों के समुदाय के एकत्र होने से एक 'उत्श्लक्ष्ण' नामक कण उत्पन्न होता है (सण्हसण्हिया इ वा) उससे फिर 'श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका' नामक कण होता है (उड्ढरेणू ति वा) उर्ध्वरेणु (तसरेणू ति वा) त्रसरेणु (रहरेणू ति वा) रथरेणु होता है (अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया) आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं की एक श्लक्ष्णिका होती है (अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू) आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं का एक ऊर्ध्वरेणु और (अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू) आठ ऊर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु (अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू) आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु (अट्ठ रहरेणूओ देवकुरुउत्तरकुरुगाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे) आठ रथरेणुओं का देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है (अट्ठ देवकुरु उत्तरकुरुगाणं मणुयाणं वालग्गा हरिवासरम्मगवासाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे) फिर

---

* 'किर' शब्द किलार्थ में है अर्थात् निश्चय ही कोई छेदन भेदन करने में समर्थ नहीं है।

† 'सिद्ध' शब्द का अर्थ यहां पर ज्ञानसिद्ध है। यथा केवली; क्योंकि भवस्थ भगवान् सिद्ध होते हैं। मुक्ति में विराजमान जो सिद्ध भगवान् हैं, वे वचनयोग से रहित हैं। इसलिये सिद्ध शब्द का सम्बन्ध यहां पर भवस्थ केवली भगवान् से जानना चाहिये।

‡ 'वा' शब्द उत्तरापेक्ष है और 'उत्' शब्द प्राबल्य अर्थ में होता है।

आठ देवकुरु-उत्तरकुरु मनुष्यों के बालाग्रों का एक हरिवर्ष रम्यकूवर्ष के मनुष्यों का बालाग्र होता है (अट्ठ हरिवासरम्मगवासाणं मणुस्साणं बालग्गा हेमवयहेरण्णवयाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे) आठ हरिवर्ष रम्यकूवर्ष मनुष्यों के बालाग्रों का हैमवय और एरण्यवय के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है (अट्ठ हेमवयहेरण्णवयाणं मणु-स्साणं बालग्गा पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे) हैमवय और एरण्य वय के मनुष्यों के बालाग्रों का पूर्वमहाविदेह और दूसरा अपरमहाविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है (अट्ठ पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं बालग्गा भरहेर-वयाणं मणुस्साणं से एगे बालग्गे) आठ पूर्वमहाविदेह-अपरविदेहों के मनुष्यों के बालाग्रों का भरत ऐरावत के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है (अट्ठ भरहेरवयाणं मणु-स्साणं बालग्गा सा एगा लिक्खा) आठ भरत ऐरावत के मनुष्यों के बाला ों की एक लिक्षा-लीख होती है (अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूआ) आठ लिक्षाओं की एक जूं होती है (अट्ठ जूआओ से एगे जवमज्झे) आठ जूओं की एक यव का मध्य होता है (अट्ठ जवमज्झाओ से एगे अंगुले) आठ यव मध्यों का एक उत्सेधांगुल होता है। (एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ) इस अंगुल के छह अंगुलों का एक पाद होता है (बारस अंगुलाइं विहत्थी) बारह अंगुलों की एक वितस्ती होती है (चउवीसं अंगुलाइं रयणी) चौबीस अंगुलों का एक हाथ होता है (अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी) अड़तालीस अंगुलों की एक कुक्षि और (छन्नउइं अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा) छयानवे अंगुलों का एक दंड होता है (धणू इ वा, जुगे इ वा, नालिया इ वा, अक्खे इ वा, मुसले इ वा) धनुष्, युग, नालिका, अक्ष और मुसल ये सर्व धनुष् के ही नाम हैं। एएणं धणुप्पमाणेणं) इस धनुष् के प्रमाण से (दो धणुसहस्साइं गाउयं) २००० धनुषों का एक कोस होता है और (चत्तारि गाउयाइं जोयणं) चार कोसों का एक योजन होता है। (एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पयोयणं ?) इस उत्सेधांगुल के कथन करने का क्या प्रयोजन है? (एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं सरीरोगाहणाउ मविज्जंति) इस उत्सेधां-गुल से नारक, तिर्यक् योनि के जीव, मनुष्य और देवों के शरीरों की अवगाहना नापी जाती है।

भावार्थ—उत्सेधांगुल का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। जैसे—परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, इत्यादि। प्रकाश में जो धूलि कण प्रतीत होते हैं, उन्हें 'त्रसरेणु' कहते हैं। रथ के चलने से जो रज उड़ती है, उसे 'रथरेणु' कहते हैं। बालाग्र, लिक्षा, जूं, यव, ये सब उत्तरोत्तर आठ गुणा अधिक करने से निष्पन्न होते हैं। परमाणु दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। एक सूक्ष्म-परमाणु, द्वितीय व्यावहारिक परमाणु। सूक्ष्म परमाणु स्थापनीय है; क्योंकि उसका

यहां पर अधिकार नहीं है। अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के मिलने से एक व्यावहारिक परमाणु उत्पन्न होता है। उसको खड्गादि भी अतिक्रम नहीं कर सकते। अग्नि जला नहीं सकती। पुष्कलसंवर्त नामक महामेह जो उत्सर्पिणी काल में होता है, उसको जलरूप नहीं कर सकता। गंगा महानदी के स्रोतोगत होता हुआ भी वह पानी में लीन नहीं होता। किन्तु सुतीक्ष्ण शस्त्र भी उसको छेदन करने में असमर्थ है। वह परमाणु केवली भगवानों ने व्यावहारिक गणना की आदि में प्रतिपादन किया है। अनन्त व्यावहारिक परमाणु पुद्गलों के मिलने से उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका परमाणु उत्पन्न होता है। फिर श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, देवकुरुउत्तरकुरु मनुष्यों का बालाग्र, हरिवर्ष-रम्यक्‌वर्ष मनुष्यों का बालाग्र, हैमवय-हैरण्यवय मनुष्यों का बालाग्र, पूर्वमहाविदेह-पश्चिममहाविदेह मनुष्यों का बालाग्र, भरत-ऐरवत मनुष्यों का बालाग्र, लिक्षा, जूं, यव, अंगुल, ये प्रत्येक उत्तरोत्तर आठ गुणा अधिक जानने चाहिये। उक्त ६ अंगुलों का अर्द्ध पाद, १२ अंगुलों का एक पाद, २४ अंगुलों का एक हस्त, ४८ अंगुलों की एक कुक्षि, और ९६ अंगुलों का एक धनुष् होता है। इसी धनुष् के प्रमाण से २००० धनुषों का एक कोस और ४ कोसों का एक योजन होता है। इस अंगुल के कथन करने का प्रयोजन, चार गतियों के जीवों की अवगाहना का मान करना है। इसलिये अवगाहना के विषय में अब सूत्रकार कहते हैं—

अथ अवगाहना विषय।

णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा, सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्सं ॥

पदार्थ—(णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य) [श्री गौतम प्रभु जी, भगवान् से प्रश्न

करते हैं कि] हे भगवन् ! नारकियों के शरीरों की अवगाहना कितनी बड़ी है ? [भगवान्, श्री गौतम प्रभु को संबोधन करके प्रथम अवगाहना के भेद प्रकट करते हुए निम्न प्रकार से उत्तर देते हैं] भो गौतम ! अवगाहना दो प्रकार की वर्णन की गई है। एक भवधारणीया और दूसरी उत्तरवैक्रिया। भवधारणीया अवगाहना उसे कहते हैं कि जो जब तक आयु रहे तब तक रहे। उत्तरवैक्रिया उसका नाम है कि जो कुछ समय के लिये कारणवशात् वा स्वेच्छानुसार शरीर छोटा बड़ा किया जाय (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा, सा जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं) उन दोनों में जो भवधारणीया अवगाहना है, वह न्यून से न्यून अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है [यह कथन उत्पत्ति समय की अपेक्षा से है] और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट ५०० धनुष् प्रमाण होती है। [यह कथन सातवीं पृथ्वी की अपेक्षा से है] (तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया, सा जहराणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणु-सहस्सं) उन दोनों में जो उत्तरवैक्रिया है, वह न्यून से न्यून अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण होती है [असंख्यात भाग प्रमाण में वैक्रिया की पूर्ति नहीं होती है।] और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट १००० धनुष् प्रमाण होती है। [यह कथन भी सातवें नरक की अपेक्षा से है।]

भावार्थ—नारकियों के शरीर की अवगाहना दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है। एक भवधारणीया और द्वितीय उत्तरवैक्रिया। भवधारणीया जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ५०० धनुष् प्रमाण होती है। उत्तरवैक्रिया जघन्य अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० धनुष् प्रमाण होती है। भवधारणीया उसे कहते हैं जो आयु पर्यन्त रहे और उत्तरवैक्रिया वह है जो कारण वश की जावे। यहां पर तो नारकियों की अवगाहना सामान्य प्रकार से कही गई है। अब आगे विस्तार पूर्वक उसका वर्णन करते हैं—

रयणप्पहाए पुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तं जहा— भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विश्रा य। तत्थ णं जा सा भव-धारणिज्जा सा जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिरिण रयणीओ छच्च

अंगुलाइं; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरस धणू दोन्नि रयणीओ बारस अंगुलाइं (१) सक्करपहापुढवीए णेरइयाणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं दुण्णि रयणीओ बारस अंगुलाइं; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी य (२) वालुअप्पहा-पुढवीए णेरइयाणं भंते! के महालिआ सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इक्करयणी य; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बासट्ठिं धणूइं दो रयणीओ अ (३) एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा। पंकप्पहाए पुढवीए भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बासट्ठिं धणूइं दो रयणीओ य; उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पणवीसं धणूसयं (४) धूमप्पहाए भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पणवीसं धणूसयं; उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं (५) तमाए भवधारणिज्जा

जहरणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अड्ढाइ-ज्जाइं धणूसयाइं; उत्तरवेउव्विया जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं (६) तमतमाए पुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तं जहा—भवधारणि-ज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहरणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच धणूसयाइं; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्साइं (७)

पदार्थ—(रयणप्पहाए पुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य) रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकियों की हे भगवन् ! कितनी बड़ी अवगाहना है ? हे गौतम ! रत्नप्रभा के नारकियों के शरीरों की अवगाहना दो प्रकार की वर्णन की गई है। एक तो भवधारणीया, द्वितीय उत्तरवैक्रिया (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहरणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त-धणूइं तिरिण रयणीओ छच अंगुलाइं) उन दोनों में जो भवधारणीया है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; उत्कृष्ट अवगाहना ७ धनुष्, ३ हाथ और ६ अंगुल प्रमाण होती है (तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्को-सेणं परणरस धणूइं दोरिण रयणीओ बारस अंगुलाइं) उन दोनों में जो उत्तरवैक्रिया है वह जघन्य अंगुल के संख्यातभाग प्रमाण होती है; उत्कृष्ट १५ धनुष्, २ हाथ और १२ अंगुल प्रमाण है ॥ १ ॥ (सक्करप्पहाए पुढवीए णेरइआणं भंते ! के महालिआ सरीरोगाहणा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य) हे भगवन् ! शर्करा-प्रभा नाम की पृथ्वीके नारकियों की शरीरावगाहना कितनी बड़ी है ? हे गौतम ! वह दो प्रकार से बतलाई गई है। जैसे कि—एक भवधारणीया और दूसरी उत्तरवैक्रिया। (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहरणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं परणरस धणूइं दुरिण रयणीओ बारस अंगुलाइं) उनमें से जो भवधारणीया अवगाहना है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट १५ धनुष्, २ हाथ और १२ अंगुल-प्रमाण है। (तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं,

उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इकरयणी अ) उन में से जो उत्तरवैक्रिया नाम की अवगाहना है, वह जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट ३१ धनुष् और १ हाथ प्रमाण है ॥ २ ॥ (वालुअप्पहापुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य) वालुकाप्रभा पृथ्वी के नारकियों की हे भगवन् ! कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! वह दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है। जैसे कि भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एकतीसं धणूइं इकरयणी अ) उन में से जो भवधारणीया है, वह न्यून से न्यून अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है, उत्कृष्ट ३१ धनुष्, १ हाथ प्रमाण होती है। (तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेजइभागं, उक्कोसेणं बासट्ठि धणूइं दो रयणीओ अ) उन में से जो उत्तरवैक्रिया है, वह जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट ६२ धनुष् और २ हाथ प्रमाण है। उत्तरवैक्रिया भवधारणीया से दूनी है ॥ ३ ॥ (एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा) इसी प्रकार सर्व पृथ्वियों के विषय में प्रश्न कर लेना चाहिये। (पंकप्पहाए पुढवीए भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बासट्ठि धणूइं दोरयणीओ य) पंकप्रभा नाम की पृथ्वी के नारकियों की भवधारणीया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ६२ धनुष् और २ हाथ प्रमाण है (उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेजइभागं, उक्कोसेणं पणवीसं धणूसयं) उत्तरवैक्रिया जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १२५ धनुष् प्रमाण है ॥ ४ ॥ (धूमप्पहाए भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पणवीसं धणूसयं) धूमप्रभा के नारकियों की भवधारणीया अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट १२५ धनुष् प्रमाण है। (उत्तरवेउव्विआ जहण्णेणं अंगुलस्स संखेजइभागं, उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं , उत्तरवैक्रिया अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट २५० धनुष् प्रमाण होती है ॥५॥(तमाए भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं) तमःप्रभा नाम की पृथ्वी के नारकियों की भवधारणीया शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट २५० धनुष् प्रमाण है। (उत्तरवेउव्विया जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच धणूसयाइं) उत्तरवैक्रिया शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण, उत्कृष्ट ५०० धनुष् प्रमाण है ॥ ६ ॥ (तमतमाए पुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्साइं) हे भगवन्! तमस्तमः पृथ्वी के नारकियों के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना प्रतिपादन की गई है? भो गौतम! तमस्तमः पृथिवी के नारकियों की अवगाहना दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है, एक भवधारणीया, दूसरी उत्तर-वैक्रिया। उन में से जो भवधारणीया है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, उत्कृष्ट ५०० धनुष् प्रमाण है। दूसरी उत्तरवैक्रिया, जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० धनुष् प्रमाण है ॥ ७ ॥

भावार्थ—उक्त सूत्र में सातों नरकों के नारकियों की अवगाहना के विषय में विवरण किया गया है। सम्पूर्ण नारकियों की अवगाहना दो प्रकार की है। एक भवधारणीया और दूसरी उत्तरवैक्रिया। भवधारणीया अवगाहना जघन्य सर्वत्र अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट पूर्व नरकों की अपेक्षा उत्तर नरकों में दुगुनी-दुगुनी है। उत्तरवैक्रिया, जघन्य सर्वत्र अंगुल के संख्या-तवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट भवधारणीया से सर्वत्र दुगुनी-दुगनी है। नार-कियों की अवगाहना का विवरण यहां समाप्त होता है। और देवों की अव-गाहना का विवरण अब प्रारम्भ होता है। देव चार प्रकार के हैं—भवनपति १, व्यन्तर २, ज्योतिष्क ३ और कल्पवासी ४। इन में सब से पहले अब भवनपतियों की अवगाहना के विषय में कहते हैं—

असुरकुमाराणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा--भवधारणि-ज्जा य उत्तरवेउव्विआ य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ; तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विआ सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं। एवं असुरकुमारागमेणं जाव थणियकुमाराणं ताव भाणि-अव्वं।

पदार्थ—(असुरकुमाराणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विआ य) हे भगवन्! असुरकुमारों की शरीर-अव-

गाहना कितनी बड़ी प्रतिपादन की गई है ? भो गौतम ! उनकी शरीरावगाहना दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है। जैसे कि भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहरणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ) उन दोनों में जो भवधारणीया है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ७ हाथ प्रमाण होती है तथा जो (तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहरणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं) उन दोनों में जो उत्तरवैक्रिया है वह जघन्य अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००००० योजन प्रमाण शरीर की अवगाहना है। (एवं असुरकुमारगमेणं जाव थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वं) इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त स्वरूप जानना चाहिये।

भावार्थ—नारकियों की तरह दश भवनपतियों की भी अवगाहना दो प्रकार की है। एक भवधारणीया, दूसरी उत्तरवैक्रिया। भवधारणीया जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ७ हाथ प्रमाण होती है। उत्तर वैक्रिया अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००००० योजन प्रमाण होती है।

अथ पंचस्थावर-अवगाहना का विषय।

पुढविकाइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; एवं सुहुमाणं ओहियाणं, अपज्जत्तयाणं, पज्जत्तयाणं, बादराणं भाणियव्वा। एवं जाव बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तयाणं भाणियव्वं। वणस्सइकाइयाणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं, सुहुमाणं वणस्सइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाणं तिण्हं

पि जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; बादरवणस्सइकाइयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं; अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं ॥

पदार्थ—(पुढविकाइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?) पृथ्वीकायिक जीवों को हे भगवन्! कितनी बड़ी शरीरावगाहना प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा !) भो गौतम ! (जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण (उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। इसको औघिक वा समुच्चय सूत्र कहते हैं। इसी विषय में आगे भी कहते हैं (एवं सुहुमाणं ओहियाणं) इसी प्रकार सूक्ष्म औघिक सूत्र (अपज्जत्तयाणं) अपर्याप्त सूत्र (पज्जत्तयाणं) पर्याप्त सूत्र (बादराणं ओहियाणं) बादर औघिक सूत्र (पज्जत्तयाणं) पर्याप्त सूत्र (भाणियव्वा) कहने चाहिये (एवं जाव बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तयाणं भाणियव्वा) इसी प्रकार यावत् बादर वायुकाय पर्याप्त पर्यन्त वर्णन करना चाहिये (वणस्सइकाइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा !) हे भगवन् ! वनस्पतिकाय के शरीर की कितनी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! (जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं) जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण, उत्कृष्ट कुछ अधिक सहस्र योजन प्रमाण है (सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं तिण्हं पि जहण्णेणं असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि असंखेज्जइ भागं) सूक्ष्म वनस्पतिकाय के विषय में जो औघिक सूत्र है और अपर्याप्त पर्याप्त सूत्र हैं, उन सब की जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण प्रतिपादन की गई है* । (बादरवणस्सइकाइयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं) बादर वनस्पतिकाय की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग

---

* जघन्य से उत्कृष्ट फिर भी अधिक जानना चाहिये। क्योंकि 'अनन्त' के अनन्त भेद होते हैं। इसी तरह अन्यत्र भी समझना ।

प्रमाण अवगाहना होती है और उत्कृष्ट कुछ अधिक सहस्र योजन प्रमाण (अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) अपर्याप्त जीवों के शरीरों की जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार की अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण ही होती है। (पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं) पर्याप्त जीवों के शरीरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट किंचित् अधिक सहस्र योजन प्रमाण प्रतिपादन की गई है।

भावार्थ—प्रथम औधिक पृथ्वीकायिक जीवों की १ औधिक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक २, अपर्याप्त ३, पर्याप्त ४, औधिक नारक पृथ्वीकायिक जीवों की ५, अपर्याप्त ६, तथा पर्याप्त ७, इन सप्त स्थानों की जघन्योत्कृष्ट अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण अवगाहना प्रतिपादन की गई है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों की अवगाहना है। वनस्पतिकायिक जीवों के सप्त स्थानों में तो जघन्य अवगाहना प्राग्वत् ही है, बादर में उत्कृष्ट जीवों की अवगाहना किंचित् अधिक सहस्र योजन प्रमाण समुद्र में कमल नालिकादि की अपेक्षा से है। इस तरह एकेन्द्रियों के पांच दण्डकों की अवगाहना कथन की गई है। अब द्वीन्द्रिय आदि जीवों के विषय में कहते हैं—

अथ विकलेन्द्रिय विषय।

एवं बेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं; अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं; पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं। तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं; अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं। चउरिंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं

अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं; अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं उक्कोसेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं; पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ॥

पदार्थ—(एवं बेइंदियाणं पुच्छा) द्वीन्द्रिय जीवों की हे भगवन्! कितनी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण अवगाहना होती है (अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि* अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) अपर्याप्त द्वीन्द्रियों की जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों प्रकार की अवगाहनाएँ अंगुल के असंख्यातभाग प्रमाण होती हैं। (पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं) पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण है†। (तेइंदियाणं पुच्छा) हे भगवन्! त्रीन्द्रिय जीवों की कितनी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यातभाग प्रमाण और उत्कृष्ट तीन कोस प्रमाण होती है [यह भी बाहर के द्वीप समुद्रों में जाननी चाहिये] (अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती हैं। (पज्जत्तयाणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं) पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट तीन कोस प्रमाण होती है (चउरिंदियाणं पुच्छा) चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना हे भगवन्! कितनी होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट चार कोस प्रमाण होती है (अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) और अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण है (पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं) पर्याप्त

---

* यहां पर 'वि'—'अपि' शब्द परस्परापेक्षार्थ में है।

† यह कथन स्वयंभूरमण समुद्र में शंखादि जीवों की अपेक्षा से है।

जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट चार कोस प्रमाण होती है।

भावार्थ—द्वीन्द्रिय जीवों की अवगाहना न्यून से न्यून अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १२ योजन प्रमाण कथन की गई है। अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण ही रहती है। त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना तो प्राग्वत् ही है किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना ३ कोस प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना पूर्ववत्, उत्कृष्ट अवगाहना ४ कोस प्रमाण होती है। यह सर्व कथन असंख्यात द्वीप समुद्रों की अपेक्षा से प्रतिपादन किया गया है। अब पञ्चेन्द्रिय जीवों की अवगाहना के विषय में विवरण करते हैं—

अथ पञ्चेन्द्रिय विषय।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता? गोयमा ! जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! एवं चेव; संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! एवं चेव; अपज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयसंमुच्छिम जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स

असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं; संमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं; अपज्जत्तयाणं पुच्छा गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं; अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं; उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; संमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं; अपज्जत्तयाणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं

वि असंखेज्जइभागं, पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं, गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं संमुच्छिम भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, अपज्जत्तयसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयर० पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयर० पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपहुत्तं, गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं, अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं; खहयरपंचिंदिय तिरिक्ख-जोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं; संमुच्छिमखहयराणं जहा भुजगरिसप्पसंमुच्छिमाणं तिसुवि गमेसु तहा भाणियव्वं; गब्भवक्कंति याणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं; अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तगाणं गब्भवक्कंतियखहयर० पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणु पुहुत्तं । तत्थ णं संगहणिगाहाओ भवंति । तंजहा—"जोयण सहस्स गाउयपुहुत्तं तत्तो अ जोयणपुहुत्तं । दोण्हंतु धणुपुहुत्तं समुच्छिमे होइ उच्चित्तं ॥ १ ॥ जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं । गाउयपुहुत्त भुयगे, पक्खीसु भवे धणु पुहुत्तं ॥ २ ॥

पदार्थ—(पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों की अवगाहना कितनी बड़ी प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण अवगाहना होती है (उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) उत्कृष्ट सहस्र योजन प्रमाण होती है (जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा ! एवं चेव) भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण होती है । (संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,)

हे भगवन्! संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! एवं चेव) हे गौतम! यह भी प्राग्वत् ही है। (अपज्जत्तय संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! अपर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों को कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण शरीर की अवगाहना होती है। (पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! पर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण अवगाहना होती है। (गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! गर्भ से उत्पन्न होने वाले जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण अवगाहना प्रतिपादन की गई है। (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन्! अपर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? भो गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही, अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती हैं। (पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण होती है। (चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है, उत्कृष्ट छह कोस प्रमाण है। [यह कथन देवकुरु, उत्तरकुरु के क्षेत्रों में हस्ति आदि युगलियों की अपेक्षा से है।] (संमुच्छिमचउप्पय थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! संमूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात

भाग प्रमाण, उत्कृष्ट पृथक् कोस प्रमाण है (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन् ! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर जीवों की अवगाहना कितनी बड़ी होती है ? भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। (पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं† उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं) हे भगवन् ! पर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है (गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं) हे भगवन् ! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों को कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट छह कोस प्रमाण है (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन् ! अपर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही केवल अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। (पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छगाउयाइं) हे भगवन् ! पर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना छह कोस प्रमाण होती है। (उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) हे भगवन् ! उरपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण [यह कथन बहिर्वर्ती द्वीप समुद्रों की अपेक्षा से है।] (संमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं) हे भगवन् ! संमूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व योजन प्रमाण है। (अपज्जत्तयाणं, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि असंखेज्जइ भागं) हे भगवन् ! अपर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। (पज्जत्तयाणं, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं) हे भगवन् ! पर्याप्त उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय संमूर्च्छिम तिर्यक्

† "संखेज्जइभागं" इत्यपि क्वचित्।

योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व योजन प्रमाण कथन की गई है। (गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! गर्भ से उत्पन्न होने वाले उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण होती है। (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि असंखेज्जइभागं) हे भगवन्! अपर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? भो गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण अवगाहना होती है। (पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं) हे भगवन्! पर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण है। (भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणु† पुहुत्तं) हे भगवन्! भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् प्रमाण है। (संमुच्छिम भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं) भो गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् प्रमाण है। (अपज्जत्तयसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयर० पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन्! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? हे गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण अवगाहना है। (पज्जत्तयसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयर० पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं) हे भगवन्! पर्याप्त संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? हे गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष् प्रमाण होती है। (गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! गर्भ से उत्पन्न होने वाले भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउय

† "गाउअ" इत्यप्यन्यत्र क्वचित्।

पुहुत्तं) हे गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण है। (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन् ! अपर्याप्त जीवों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? हे गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण ही अवगाहना होती है। (पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं) पर्याप्त जीवों की अवगाहना कितनी बड़ी होती है ? हे गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है। (खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं) हे भगवन् ! खेच० पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष् प्रमाण होती है। (संमुच्छिमखहयराणं जहा भुजपरिसप्पसंमुच्छिमाणं तिसुवि गमेसु तहा भाणियव्वं,) भुजपरिसर्प्प संमूर्च्छिम जीवों की अवगाहना तीन गमों में जैसी कही गई है, वैसी ही यहां पर खेचर संमूर्च्छिम जीवों की कहना चाहिये। (गब्भवक्कंतियाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं) गर्भ से उत्पन्न होने वाले खेचरों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष् प्रमाण होती है। (अपज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) हे भगवन् ! अपर्याप्त जीवों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अवगाहनाएँ अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण ही होती हैं। (पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयराणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं) हे भगवन् ! पर्याप्त गर्भज खेचरों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् प्रमाण अवगाहना कथन की गई है। (तत्थ णं संगहणिगाहाओ भवंति, तं जहा–) यहां पर इस विषय की दो गाथाएं भी संगृहीत हैं। जैसे कि (जोयणसहस्स) [संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय योनियों के जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना] एक सहस्र योजन प्रमाण होती है और (गाउयपुहुत्तं) [संमूर्च्छिम चतुष्पद की] पृथक्त्व कोस (तत्तो य जोयणपुहुत्तं ।) तत्पश्चात् [संमूर्च्छिम उरःपरिसर्प की उत्कृष्ट अवगाहना] पृथक्त्व योजन प्रमाण होती है (दोण्हं धणुपुहुत्तं) [संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प तथा खेचर संमूर्च्छिम] इन दोनों की भी पृथक्त्व धनुष् की अवगाहना

होती है (समुच्छिमे होइ उच्चित्तं ।१।) इस प्रकार संमूर्च्छिम तिर्यञ्चों की अवगाहना वर्णन की गई है। १। (जोयणसहस्स ओगाहणाइ) [गर्भज जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनि के जीवों की और चतुष्पदों की क्रमशः अवगाहना एक सहस्र योजन प्रमाण और छह कोस प्रमाण होती है (तत्तो य जोयणसहस्सं) तत्पश्चात् [गर्भज उरःपरिसर्प की भी अवगाहना] १००० योजन प्रमाण है। (गाउयपुहुत्त भुयगे) भुजपरिसर्प की अवगाहना पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है (पक्खीसु भवे धणुपुहुत्तं ।२।) गर्भज पक्षियों की पृथक्त्व धनुष् प्रमाण अवगाहना है ॥ २ ॥

भावार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण होती है; जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन प्रमाण प्रतिपादन की गई है; संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों की अवगाहना भी प्राग्वत् ही है; अपर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है, और पर्याप्त संमूर्च्छिम जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनि के जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण है; गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण अवगाहना है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; पर्याप्त जलचर जीवों की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण अवगाहना होती है; चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनि के जीवों की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ६ कोस प्रमाण अवगाहना होती है; संमूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट केवल अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है; गर्भज चतुष्पद स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग और उत्कृष्ट ६ कोस प्रमाण होती है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण

होती है; पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ६ कोस प्रमाण है; उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण होती है; संमूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व योजन प्रमाण होती है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही केवल अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण है; पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व होती है; गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण होती है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण होती है; भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है; संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् प्रमाण होती है; अपर्याप्त संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अवगाहनाएँ अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती हैं; पर्याप्त संमूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् प्रमाण होती है; गर्भज भुज परिसर्प स्थलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; पर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण होती है; खेचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् की होती है; संमूर्च्छिम खेचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों की अवगाहनाएँ भुजपरिसर्प संमूर्च्छिम तिर्यञ्चों की बराबर है; गर्भज खेचरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् की होती

है; अपर्याप्त जीवों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है; पर्याप्त गर्भज खेचरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष् की होती है; संमूर्च्छिम जलचरों की अवगाहना उत्कृष्ट १००० योजन की होती है और संमूर्च्छिम चतुष्पद की पृथक्त्व कोस की होती है; संमूर्च्छिम उरःपरिसर्प की पृथक्त्व योजन की अवगाहना होती है; संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प और संमूर्च्छिम खेचर, इन दोनों की भी पृथक्त्व धनुष् की ही अवगाहना होती है; जलचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनिक गर्भज जीव की उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन प्रमाण होती है; चतुष्पद की उत्कृष्ट अवगाहना ६ कोस प्रमाण होती है; गर्भज उरःपरिसर्प की अवगाहना भी १००० योजन की है, गर्भज भुजपरिसर्प की अवगाहना उत्कृष्ट पृथक्त्व कोस प्रमाण है और गर्भज पक्षियों की उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष् की होती है। यह सर्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योनियों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है। अब इसके आगे मनुष्यों के विषय में विवरण किया जाता है—

अथ मनुष्य-अवगाहना विषय।

मणुस्साणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं; संमुच्छिममणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; अपज्जत्तय गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते! पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं; पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते! पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं॥

पदार्थ—(मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! मनुष्यों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं) भो गौतम ! न्यून से न्यून अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस की होती है। [जैसे कि देवकुरु उत्तरकुर्वादि मनुष्यों की अवगाहना कथन की गई है।] (संमुच्छिममणुस्साणं पुच्छा,) संमूर्च्छिम मनुष्यों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। [(गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! पुच्छा,) हे भगवन् ! गर्भज मनुष्यों के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं) भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट तीन कोस की होती है।]* (अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्याप्त और गर्भज मनुष्यों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं) भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट केवल अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण ही अवगाहना होती है। (पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्याप्त और गर्भज मनुष्यों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं) भो गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस की होती है।

भावार्थ—संमूर्छिम मनुष्य और अपर्याप्त मनुष्य इन दोनों की न्यून से न्यून और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। गर्भज मनुष्यों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट तीन कोस प्रमाण होती है। इसके मध्यम भेद अनेक जानने चाहियें। यह उत्कृष्ट अवगाहना अकर्मभूमिज मनुष्यों की अपेक्षा से वर्णन की गई है। अब इसके आगे देवों की अवगाहना के विषय में कहते हैं—

---

*[] एतत्कोष्ठान्तर्गतः पाठः कुत्रचिन्नास्त्यपि।

अथ देव-अवगाहना का विषय ।

वाणमंतराणं भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा, जहा वाणमंतराणं, तहा जोइसियाण वि भाणियव्वा; सोहम्मे कप्पे देवाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य; तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं; एवं ईसाणे कप्पे वि भाणियव्वं, जहा सोहम्मकप्पाणं देवाणं पुच्छा, तहा सेसकप्पाणं देवाणं पुच्छा भाणियव्वा, जाव अच्चुअकप्पो; सणंकुमारे भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं, उक्कोसेणं छ रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे; भवधारणिज्जा जहा सणंकुमारे तहा माहिंदे वि भाणियव्वा. बंभलोयलंतगेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच रयणीओ, उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे; महासुक्कसहस्सारेसु भवधार-णिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे; आणत-पाणतआरणअच्चुएसु चउसु वि कप्पेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ; उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे; गेवेज्जगदेवाणं

भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता ? गोयमा ! गेवेज्जगदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे पराणत्ते से जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं दुरिण रयणीओ; अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं भंते ! के महालिया सरीरो-गाहणा पराणत्ता? गोयमा ! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं एगे भवधारणिज्जे से जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं, उक्कोसेणं एगा रयणीउ।

पदार्थ—(वाणमंतराणं भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा) वानव्यन्तरों के भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय शरीरों की अवगाहना जैसे प्रथम असुरकुमारों की वर्णन की गई है, उसी प्रकार जाननी चाहिये। (जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाण वि† भाणियव्वा) जैसे वानव्यन्तरों की अवगाहना का विवरण है, उसी प्रकार ज्योतिषी देवों का भी विवरण जानना चाहिये। (सोहम्मे कप्पे देवाणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पराणत्ता?) हे भगवन्! सौधर्म कल्प के देवों की कितनी बड़ी शरीरावगाहना प्रतिपादन की गई है? (गोयमा! दुविहा पराणत्ता, तं जहा—भवधार-णिज्जा य उत्तरवेउव्विया य) भो गौतम! उक्त देवों की अवगाहना दो प्रकार से वर्णन की गई है*। जैसे कि एक भवधारणीय और दूसरी उत्तरवैक्रिय। (तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहराणेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) उन दोनों में जो भवधारणीय है वह जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। (उक्कोसेणं सत्त रयणीओ) उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की है। (तत्थ णं जा सा उत्तर-वेउव्विया सा जहराणेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं) उन दोनों में जो उत्तरवैक्रिय है, वह जघन्य अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण है और (उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं) उत्कृष्ट एक लक्ष योजन प्रमाण होती है। (एवं ईसाणकप्पे वि भाणियव्वं) जैसे सुधर्म कल्प का विवरण है, उसी प्रकार ईशान कल्प का भी स्वरूप जानना चाहिये। (जहा सोहम्मकप्पाणं देवाणं पुच्छा, तहा सेसकप्पदेवाणं पुच्छा भाणियव्वा, जाव अच्चुअकप्पो) जैसे सुधर्म कल्प देवों की पृच्छा का स्वरूप है, उसी प्रकार अच्युत पर्यन्त शेष कल्पों

† 'वि'—अपि शब्द यहां पर परस्परापेक्षार्थ में है।

* भेदपूर्वक कथन करने से प्रत्येक पदार्थ का विवरण बड़ी सरलता से समझ में आ जाता है। इसी लिये यहां सब जगह प्रायः भेदपूर्वक कथन किया गया है।

का भी स्वरूप जानना चाहिये। (सणंकुमारे भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) सनत्कुमार देवों की भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण, (उक्कोसेणं छ रयणीओ) उत्कृष्ट षट् हाथ की होती है (उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे) उत्तरवैक्रिय अवगाहना सुधर्म देवलोक की भांति है (जहा सणंकुमारे तहा माहिंदे वि) जैसे सनत्कुमारीय देवों की अवगाहना है उसी प्रकार माहेन्द्रीय देवों की भी अवगाहना जाननी चाहिये। (बंभलोयलंतगेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) ब्रह्मलोक और लान्तक देवलोक के वासी देवों की भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातभाग प्रमाण है और (उक्कोसेणं पंच रयणीओ) और उत्कृष्ट पांच हाथ की होती है। (उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे) उत्तरवैक्रिय जैसे सुधर्म देवलोक की है, वैसे ही जाननी चाहिये। (महासुक्कसहस्सारेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) महाशुक्र और सहस्रारवासी देवों की भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातभाग प्रमाण है और (उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ) उत्कृष्ट अवगाहना चार हाथ की है, (उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे) उत्तरवैक्रिय सुधर्म देवलोकवत् है (आणतपाणतआरणअच्चुएसु चउसु वि कप्पेसु भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं) आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चारों कल्पों में भवधारणीय शरीरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातभाग प्रमाण है और (उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ) उत्कृष्ट अवगाहना तीन हाथ की होती है; (उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे) उत्तरवैक्रिय सुधर्म देवलोकवत् है। (गेवेज्जगदेवाणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?) हे भगवन्! ग्रैवेयक देवों के शरीरों की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा! गेवज्जदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे पण्णत्ते, से जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं दुन्नि रयणीओ) भो गौतम! ग्रैवेयकदेवों के एक भवधारणीय शरीर ही प्रतिपादन किया गया है। सो उस शरीर की जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट दो हाथ की अवगाहना होती है। (अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?) हे भगवन्! अनुत्तरोपपादिक देवों के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना होती है ? (गोयमा! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं एगे भवधारणिज्जे, से जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एगा रयणीउ) भो गौतम! अनुत्तरविमानवासी देवों के एक भवधारणीय ही शरीर कहा गया है। सो उस की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण और उत्कृष्ट एक हाथ की होती है।

भावार्थ--वाणव्यन्तर देवों के शरीरों की अवगाहना असुरकुमारों के समान है। और उसी प्रकार ज्योतिषी देवों की भी है। किन्तु बारह कल्पवासी

देवों के भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण होती है। उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यात भाग प्रमाण है और उत्तरवैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक लक्ष योजन प्रमाण होती है। भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट अवगाहना निम्न प्रकार से है—

सुधर्म और ईशान देवलोक वासी देवों की अवगाहना सात हाथ प्रमाण; सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक वासी देवों की षट् हाथ प्रमाण; ब्रह्म और लान्तव के देवों की पाँच हाथ प्रमाण; महाशुक्र और सहस्रार के देवों की चार हाथ प्रमाण; आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवों की तीन हाथ प्रमाण; ग्रैवेयक देवों की दो हाथ प्रमाण; और अनुत्तर विमान वासी देवों की एक हाथ प्रमाण अवगाहना होती है। ये सर्व अवगाहनाएँ उत्सेधांगुल से नापी जाती हैं। इसलिये उत्सेधांगुल का वर्णन यहां पर फिर करते हैं—

अथ पुनः उत्सेधांगुल का विषय ।

से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-सूईअंगुले पयरंगुले घणंगुले, एगंगुलायया एगपएसिया सेढी सूईअंगुले, सूई सूईए गुणिया पयरंगुले, पयरं सूईए गुणियं घणंगुले, एएसि णं सूईअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवे सूई-अंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे, से तं उस्सेहंगुले ।

पदार्थ—(से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—) वह अंगुल संक्षेप से तीन प्रकार का प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि (सूईअंगुले) सूच्यंगुल (पयरंगुले) प्रतरांगुल और (घणंगुले) घनांगुल (एगंगुलायया) एक अंगुल प्रमाण (एगपएसिया सेढी सूईअंगुले) एक प्रदेशिक आकाश की श्रेणि को सूच्यंगुल कहते हैं (सूई सूईए गुणिया पयरंगुले) सूच्यंगुल को सूच्यंगुल के साथ गुणा करने से प्रतरांगुल बनता है। (पयरं सूईए गुणियं घणंगुले) प्रतरांगुल का सूच्यंगुल के साथ

गुणा करने से घनांगुल होता है (एएसि णं सूईअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरेकयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा) हे भगवन् ! इन सूच्यंगुल ? प्रतरांगुल, और घनांगुलों का परस्पर अल्प-बहुत्व, तुल्य-विशेषाधिकत्व किस प्रकार से है, (सव्वत्थोवे सूईअंगुले पयरंगुले असंखेज्ज गुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे) भो गौतम ! सब से छोटा सूच्यंगुल होता है, प्रतरांगुल उससे असंख्यात गुणाधिक है। और घनांगुल प्रतरांगुल से भी असंख्यात गुणाधिक होता है। (से तं उस्सेहंगुले) सो वही उत्सेधांगुल होता है।

भावार्थ--उत्सेधांगुल भी तीन प्रकार से वर्णन किया गया है। जैसे कि सूच्यंगुल १, प्रतरांगुल २, और घनांगुल ३। एक अंगुल प्रमाण दीर्घ और एक प्रदेशिक रूप श्रेणि को सूच्यंगुल कहते हैं। फिर सूच्यंगुलके साथ सूची को गुणा करने से प्रतरांगुल होता है। फिर प्रतरांगुल को सूची से गुणा करने से घनांगुल होता है। सब से स्तोक सूच्यंगुल है। प्रतरांगुल उससे असंख्यात गुणा है, घनांगुल उससे भी असंख्यात गुणा बड़ा है। यह सब आकाश प्रदेशों की अपेक्षा से कथन किया गया है। इसलिये सूच्यंगुल से प्रतरांगुल के प्रदेश असंख्यात गुणाधिक और प्रतरांगुल से घनांगुल के प्रदेश असंख्यात गुणाधिक होते हैं। यह परस्परापेक्षा अधिक जानना। इन का पूर्ण विवरण पूर्व में लिखा गया है। इसी को उत्सेधांगुल कहते हैं। अब प्रमाणांगुल का विवरण किया जाता है—

अथ प्रमाणांगुल का विषय।

से किं तं पमाणंगुले ? पमाणंगुले एगमेगस्स रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए कागणीरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तस्स णं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्सगुणियं पमाणंगुलं भवइ एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, दो पायाओ[1] विहत्थी, दो विहत्थीओ[2] रयणी, दो रयणीओ

१—"दुवालसंगुलाइं विहत्थी" इत्यप्यत्र पाठान्तरम्।

२—"वितस्तिवसतिभरतकातरमातुलिङ्गे हः" प्रा० व्या०, अ० ८, पा १, सूत्र २१४ इत्येननतस्य हः।

कुच्छी, दो कुच्छीओ धणू, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं। एएणं पमाणंगुलेणं किं पओयणं? भवणपत्थडाणं निरयाणं निरयावलीणं निरयपत्थडाणं कप्पाणं विमाणाणं विमाणावलीणं विमाणपत्थडाणं टंकाणं कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराणं विजयाणं वक्खाराणं वासाणं वासहराणं वेलाणं वेइयाणं दाराणं तोरणाणं दीवाणं समुद्दाणं आयामविक्खंभोच्चत्तोव्वेहपरिक्खेवा मविज्जंति

से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सेढीअंगुले पयरंगुले घणंगुले। असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी, सेढी सेढीए गुणिया पयरं, पयरं सेढीए गुणियं लोगो, संखेज्जएणं लोगो गुणिओ संखेज्जा लोगा असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जा लोगा, अणंतेणं लोगो गुणिओ अणंता लोगा। एएसि णं सेढीअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरे हिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ? सव्वत्थोवे सेढीअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्ज गुणे, से तं पमाणंगुले। से तं विभागनिप्फण्णे। से तं खेत्तप्पमाणे॥

पदार्थ—(से किं तं पमाणंगुले ?) प्रमाणांगुल किसे कहते हैं ? (पमाणंगुले एगमेगस्स रण्णो) एक २ राजा का (चउरंतचक्कवट्टिस्स) जिसने तीन दिशा समुद्र तक और चतुर्थी दिशा हेमवंत पर्वत पर्यन्त, इस प्रकार चारों दिशाओं का अन्त किया है अथवा चक्रधारी हो, ऐसे एक एक चक्रवर्ती राजा का (अट्ठसोवण्णिए कागणीरयणे) अष्ट सौवर्णिक

१—क्वचिदेतन्नास्ति।
२—"वासहरपव्वयाणं" इत्यप्यधिकः पाठो दृश्यते क्वचित्।

प्रमाण 'काकिणी' रत्न होता है, जो कि (छत्तले दुवालसंसिए) षट् तल और बारह अंश तथा (अट्ठकणिए) आठ कौन वाला होता है और इसका (अहिगरणसंठाणसंठिए पण्णत्ते) अहिरण के आकार जैसा संस्थान प्रतिपादन किया गया है। (तस्स णं) उस काकणी रत्न को (एगमेगा कोडी) एक एक कोटि (उस्सेहंगुलविक्खंभा) उत्सेधांगुल प्रमाण वष्कंभ वाली अर्थात् चौड़ी है। (तं) वह (समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं) श्रमण भगवान् श्रीमहावीर का अर्द्धांगुल है *। (तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवइ) इसको सहस्र गुण करने से प्रमाणांगुल होता है अर्थात् उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल सहस्र गुणा अधिक होता है। (एएणं अंगुलपमाणेणं) इस अंगुल के प्रमाण से (छ अंगुलाइं पाओ) षट् अंगुल का एक पाद, (दो पायाओ विहत्थी) दो पादों की एक वितस्ति, (दो विहत्थीओ रयणी) दो वितस्तियों की एक रत्नि-हाथ, (दो रयणीओ कुच्छी) दो रत्नियों की एक कुक्षि, (दो कुच्छीओ धणू) दो कुक्षियों का एक धनुष्, (दो धणुसहस्साइं गाउअं) दो हजार धनुषों का एक गव्यूत-कोस, (चत्तारि गाउयाइं जोयणं) चार गव्यूतों का एक योजन होता है। (एएणं पमाणंगुलेणं किं पयउणं?) इस प्रमाणांगुल का क्या प्रयोजन है? (एएणं पमाणंगुलेणं पुढवीणं) इस प्रमाणांगुल से रत्नप्रभादि पृथिवियों की, (कंडाणं) रत्नकाण्ड आदि काण्डों की, (पायालाणं) पाताल कलशों की, (भवणाणं) भवनों की, (भवण-पत्थडाणं) भवनपतियों के प्रस्तरों की, (निरयाणं) नरकों की, (निरयावलीणं) नरक की पंक्तियों की, (निरयपत्थडाणं) नरक के प्रस्तरों की, (कप्पाणं) कल्पों की, (विमाणाणं) विमानों की, (विमाणावलीणं) विमानों की पंक्तियों की, (विमाणपत्थडाणं) विमानों के प्रस्तरों की, (टंकाणं) छिन्नटंकों की, (कूडाणं) कूटों की, (सेलाणं) पर्वतों की, (सिहरीणं) शिखरी पर्वतों की, (पब्भाराणं) नम्र पर्वतों की, (विजयाणं) विजयों की, (वक्खाराणं) वक्षार पर्वतों की, (वासाणं) क्षेत्रों की, (वासहराणं) वर्षधर पर्वतों की, (वेलाणं) समुद्र की वेलाओं की, (वेइयाणं) वेदिकाओं की, (दाराणं) द्वारों की, (तोरणाणं) तोरणों की, (दीवाणं) द्वीपों की, (समुद्दाणं) समुद्रों की, (आयामविक्खंभोच्चत्तोव्वेहपरिक्खेवा) लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गह-राई और परिधि (मविज्जंति) नापी जाती है।

(से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-) वह प्रमाणांगुल संक्षेप से तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि (सेढीअंगुले, पयरंगुले, घणंगुले) श्रेणि-अंगुल १, प्रत-रांगुल २, और घनांगुल ३ (असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढी) प्रमाणांगुल के प्रमाण

*श्रीमहावीरस्वामी स्वहाथों से साढ़े तीन हाथ प्रमाण और उत्सेधांगुल से सात हाथ प्रमाण हैं।

† भवनपति देवों के त्रयोदश अन्तर स्थान को 'स्तट' कहते हैं।

से असंख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण एक 'श्रेणि' होती है, (सेढी सेढीए गुणिया पयरं) श्रेणि को श्रेणि के साथ गुणा करने से 'प्रतरांगुल' होता है, और (पयरं सेढीए गुणीयं लोगो) प्रतरांगुल को श्रेणि के साथ गुणा करने से एक 'लोक' होता है। वह लोक चौदह रज्जु प्रमाण होता है। स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्व से पश्चिम तक के विस्तार को एक रज्जु कहते हैं। सो इसी (संखेज्जएणं लोगो गुणिओ संखेज्जा लोगा) संख्यात लोक से गुणाकार करने पर संख्यात लोक होता है, (असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जा लोगा) असंख्यात लोक से गुणा करने पर असंख्यात लोक होता है (अणंतेणं लोगो गुणिओ अणंता लोगा) एक लोक का अनंत लोकों के साथ गुणा करने से अनंत लोक होता है अर्थात् लोक अनंत है। (एएसि णं सेढिअंगुलपयरंगुलघणंगुलाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा) इन श्रेणि-अंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुलों का परस्पर किस २ के साथ अल्प, बहुत्व, तुल्य और विशेषाधिक भाव है अर्थात् परस्पर न्यूनाधिक कौन से अंगुल हैं? (सव्वथोवे सेढिअंगुले) सब से स्तोक छोटा श्रेणि-अंगुल होता है, (पयरंगुले असंखेज्जगुणे) श्रेणि-अंगुल से प्रतरांगुल असंख्यात गुणाधिक होता है और (घणंगुले असंखेज्जगुणे) प्रतरांगुल से घणांगुल भी असंख्यात गुणाधिक होता है, (से तं पमाणंगुले से तं विभाग-निप्फण्णे) सो यही प्रमाणांगुल है और यही विभाग निष्पन्न नामक भेद है, (से तं खेत्तप्पमाणे) सो यही क्षेत्र प्रमाण है अर्थात् उक्त अंगुलियों के द्वारा ही सर्व प्रकार से क्षेत्रों का प्रमाण किया जाता है।

भावार्थ—प्रमाणांगुल उत्सेधांगुल से १००० गुणाधिक है। इस प्रकार सूत्र में कहा गया है। श्रीमान् भगवान् वर्द्धमान स्वामी की एक अंगुल के प्रमाण में उत्सेधांगुल दो होते हैं। अनादि पदार्थों का प्रमाण इसी अंगुल के द्वारा किया जाता है और इस अंगुल के भी पूर्ववत् पाद, हाथ, धनुष्, कोश, योजन आदि जान लेने चाहिये। फिर उत्सेधांगुल घणांगुलों का अल्प-बहुत्व भी प्राग्वत् ही कथन किया गया है। वृत्ति में इस अंगुल का निम्न प्रकार से स्वरूप प्रतिपादन किया गया है, इस के अनन्तर प्रमाणांगुल का विवरण किया जाता है। उत्सेधांगुल से १००० गुणाधिक प्रमाणांगुल होता है। परम प्रकर्ष रूप प्रमाण को जो अंगुल प्राप्त हो, उसे 'प्रमाणांगुल' कहते हैं। अथवा समस्त लोकव्यवहारादि और राज्यस्थिति आदि का जिस से प्रमाण किया जाय तथा जिससे बृहत्तर अन्य कोई अंगुल न हो, उसे 'प्रमाणांगुल' कहते हैं, अथवा लौकिक सर्व व्यवहार के दर्शक प्रमाण भूत तथा इस अवसर्पिणी काल में प्रथम श्री-युगादि देव श्रीऋषभनाथ भगवान् के अंगुल और उनके सुपुत्र श्रीभरत चक्र-

वर्त्ती के अंगुल को भी 'प्रमाणांगुल' कहते हैं। 'काकणी' रत्न के छह तल, बारह अंश और आठ कौने होते हैं। 'अहिरण' रत्न के सदृश उस का आकार होता है। और वह प्रत्येक चतुरन्त चक्रवर्त्ती राजा के पास होता है अन्य अन्य काल में उत्पन्न हुए चक्रवर्त्ती के काकणी रत्न को तुल्य कहने के लिये 'एक' शब्द का ग्रहण किया गया है। तथा निरुपचरित 'राज' शब्द का विषय जानने के लिये 'राज' शब्द का ग्रहण किया गया है। तीन दिशाओं में समुद्र तक तथा चौथी दिशा में हैमवंत पर्वत पर्यन्त सामान्य रूप से अपने चक्र के द्वारा पृथ्वी को साधन करने वाले को 'चतुरन्त चक्रवर्ती' कहते हैं। काकणी रत्न का प्रमाण इस प्रकार है।

चार मधुर तृण फल का एक श्वेत 'सर्षप्' होता है। सोलह श्वेत सर्षप् का एक 'धान्य माष फल' होता है। चार धान्य माष फलकी एक 'गुंजा' होती है। पांच गुंजा का एक 'कर्ममाषक' होता है। सौलह कर्ममाषक का एक 'सुवर्ण' और आठ सुवर्ण का एक 'काकणी रत्न' होता है। ये मधुर तृण फलादि भरत चक्रवर्ती के समय के ग्रहण किये गये हैं। अन्यथा काल के भेद से इनका न्यूनाधिक होना संभव है। इसी कारण से समस्त चक्रवर्तियों के काकणी रत्न तुल्य नहीं होते। काकणी रत्न चारों दिशाओं तथा ऊर्द्ध अधो दिशाओं में होता हैं। इसलिये इसके षट् तल और बारह अंश होते हैं। ऊर्द्ध वा अधो दिशाओं में चार २ कोण संभव होते हैं। अतः इसके आठ कोण हैं। इसी कारण से इसे 'अष्टकर्णिका' भी कहा जाता है। इसका संस्थान अहिरण के आकार जैसा प्रतिपादन किया गया है। काकणी रत्न की एक कोटि उत्सेधांगुल प्रमाण चौड़ी है। इसी प्रकार शेष चार अंश भी एक उत्सेधांगुल प्रमाण होते हैं। इसका चतुरंश, आयाम तथा विष्कंभ प्रत्येक उत्सेधांगुल प्रमाण होता है। किसी २ ग्रन्थ में इस प्रकार भी कहा गया है कि चतुरंगुल प्रमाण* सुवर्ण, काकणी रत्न जानना चाहिये। यह किसी २ का मत है। निश्चित मत सर्वज्ञ जानें। प्रत्येक उत्सेधांगुल भगवान् वर्द्धमानस्वामीजी के अर्द्धांगुल के बराबर होता है। यथा —

श्रीवर्द्धमानस्वामी सात हस्त प्रमाण ऊंचे थे। एक २ हाथ चौबीस अंगुल प्रमाण होता है। इस हिसाबसे भगवान् एकसौ अरसठ उत्सेधांगुल प्रमाण हुए। और मतान्तर-अपेक्षा अपने हाथों द्वारा नापने से साढ़े तीन हाथ अर्थात् चौरासी उत्सेधांगुल प्रमाण हुए। इस तरह से एक उत्सेधांगुल, भगवान् वर्द्धमान स्वामी-

---

* "चउरंगुलप्पमाणा"।

जी के अर्द्धांगुल के बराबर होता है। और दो उत्सेधांगुल, भगवान् के आत्मांगुल की अपेक्षा एकसौ आठ अंगुल अर्थात् साढ़े चार हाथ के हैं। उन के मत में एक आत्मांगुल उत्सेधांगुल के नव भागों में से पांच भाग के बराबर हुआ। और जिनके मत में आत्मांगुल की अपेक्षा से भगवान् एक सौ बीस अंगुल अर्थात् पांच हाथ प्रमाण हैं, उनके मत में एक आत्मांगुल उत्सेधांगुल के पाँच भागों में से दो भाग अधिक हुआ। इस प्रकार प्रथम मत की अपेक्षा से एक उत्सेधांगुल, भगवान् वर्द्धमान स्वामीजी के अर्द्धात्मांगुल के तुल्य होता है। एक उत्सेधांगुल को सहस्र गुणा करने से एक प्रमाणांगुल होता है। यथा—भरत चक्रवर्ती, प्रमाणांगुल से एक सौ बीस अंगुल प्रमाण ऊंचे थे। क्योंकि इनके आत्मांगुल तथा प्रमाणांगुल दोनों अन्यूनाधिक होते हैं। उत्सेधांगुल की अपेक्षा से भरत चक्रवर्ती पांच सौ धनुष् प्रमाण थे। एक धनुष् नौ सौ त्रेसठ उत्सेधांगुल का होता है। इस गणना से पांच सौ धनुष् के अड़तालीस सहस्र उत्सेधांगुल होते हैं। यहां पर शंका हो सकती है कि जब प्रमाणांगुल चार सौ उत्सेधांगुल के बराबर हुआ, तब "पूर्वोक्त उत्सेधांगुल से एक सहस्र गुणाधिक प्रमाणांगुल होता है" यह कथन किस प्रकार से ठीक हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि एक प्रमाणांगुल ढाई अंगुल प्रमाण मोटा है। सो जब वह मोटाई में यथावस्थित होता है, तब चार सौ गुणा ही होता है। क्योंकि उत्सेधांगुल मोटाई को चार सौ रूप दीर्घता के साथ गुणा करने पर एक अंगुल विष्कंभ तथा एक हजार अंगुल विष्कंभ तथा एक हजार अंगुल दीर्घ प्रमाण की सूचि सिद्ध हुई। पुनः ढाई अंगुल विष्कम्भ प्रमाणांगुल की तीन श्रेणियां कल्पित करने पर पहली एक अंगुल विष्कम्भ चार सौ अंगुल की श्रेणि हुई। दूसरी भी इतनी ही है। और तीसरी श्रेणि अर्द्धांगुल विष्कम्भ है। इसलिये दो सौ अंगुल प्रमाण दीर्घ हुई। सो तीनों मिल कर एक हजार अंगुल हुई। इसमें से एक उत्सेधांगुल विष्कम्भ तथा सहस्र उत्सेधांगुल दीर्घ की सूची सिद्ध हुई। अतः इस गणना की अपेक्षा से उत्सेधांगुल से एक हजार गुणा प्रमाणांगल होगया है। परन्तु वास्तव में चारसौ गुणा ही बड़ा है। इसी का नाम 'विभागनिष्पन्नक्षेत्र प्रमाण' है। अब आगे 'काल प्रमाण' का विवरण करते हैं—

अथ काल का विषय।

***से किं तं कालप्पमाणे?, २ दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पएस-**

* 'से' शब्द मागधी भाषा में 'अथ' शब्द के अर्थ में आता है, 'किं' शब्द प्रश्न के अर्थ में आता है और 'तं' शब्द पूर्व सम्बन्धार्थ में आता है।

निप्फण्णे य विभागनिप्फण्णे य, से किं तं पएसनिप्फण्णे ?, २ एगसमयट्ठिइए दुसमयट्ठिईए तिसमयट्ठिईए चउसमयट्ठिएई जाव दससमयट्ठिईए असंखेज्जसमयट्ठिईए, से तं पएसनिप्फण्णे । से किं तं विभागनिप्फण्णे ?, समयावलिअ-मुहुत्ता, दिवसअहोरत्तपक्खमासा अ । संवच्छरजुगपलिया, सागरओसप्पिपरियट्टा ॥ १ ॥

पदार्थ—(से किं तं कालप्पमाणे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–) काल प्रमाण किसे कहते हैं ? वह दो प्रकार से वर्णन किया गया है । जैसे कि—(पएसनिप्फण्णे य विभाग-निप्फण्णे य) प्रदेशनिष्पन्न और विभाग निष्पन्न (से किं तं पएसनिप्फण्णे ?) प्रदेशनिष्पन्न काल प्रमाण किसे कहते हैं ? (एगसमयट्ठिईए) एक समय की स्थिति वाला द्रव्य वा परमाणु काल प्रमाण से एक समय की स्थिति वाला कहा जाता है । (दुसमयट्ठिईए) दो समय की स्थिति वाला (तिसमयट्ठिईए, तीन समय की स्थिति वाला (चउसमयट्ठिईए) चार समय की स्थिति वाला (जाव दससमयट्ठिईए) दश समय की स्थिति वाले (असंखिज्ज समयट्ठिईए) असंख्यात समय की स्थिति वाले तक जानना (से तं पएसनिप्फण्णे) सो वही प्रदेश निष्पन्न काल प्रमाण होता है । (से किं तं विभागनिप्फण्णे ?) विभागनिष्पन्न काल प्रमाण किसे कहते हैं ?

समयावलिअमुहुत्ता, दिवसअहोरत्तपक्खमासा य ।
संवच्छरजुगपलिया, सागरओसप्पिपरियट्टा ॥ १ ॥

समय, *आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, संवत्सर, युग, पल्य, सागर, उत्सर्पिणी और परिवर्तन, ये सभी विभागनिष्पन्न काल प्रमाण है ।

भावार्थ—काल प्रमाण भी दो प्रकार का है । एक प्रदेशनिष्पन्न और दूसरा विभागनिष्पन्न । एक समय स्थिति वाले परमाणु या स्कन्ध, दो समय स्थिति वाले

१—क्वचिदेतद्वाक्यं नोपलभ्यते ।

* असंख्यात समयों की एक आवलिका, १६७७७२१६ आवलिकाओं का एक मुहूर्त्त, १५ मुहूर्तों का एक दिवस, ३० मुहूर्तों का एक अहोरात्र या रात्रि दिवस, १५ अहोरात्र का एक पक्ष, २ पक्षों का एक मास, १२ मासों का एक संवत्सर, ५ संवत्सरों का एक युग, अनेक युगों का एक पल्य, १० कोटाकोटि पल्यों का एक सागर, १० कोटाकोटि सागरों की एक उत्सर्प्पिणी और अनन्त उत्सर्पिणी कालों का एक (पुद्गल) परावर्तन होता है ।

परमाणु या स्कन्ध, इसी तरह तीन चार आदि असंख्यात समय पर्यन्त वाले परमाणु-स्कन्धों को 'प्रदेशनिष्पन्न काल प्रमाण' कहते हैं, और समय, आवलिका, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, सम्वत्सर, युग, पल्य, सागर, अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, परावर्तन इत्यादि को 'विभागनिष्पन्न काल प्रमाण' कहते हैं। अब समय का स्वरूप वर्णन करते हैं—

अथ समय का विषय।

से किं तं समए ? समयस्स णं परूवणं करिस्सामि, से जहानामए[1] तुण्णागदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पातंके[2] थिरग्गहत्थे दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणते तलजमलजुयलपरिघणिभबाहू[3] घणणिचियवट्टपालिखंधे घम्मट्ठगदुहणमुट्ठियसमाहतनिचितगत्तकाए[4] उरस्सबल समण्णागए लंघणपवणजइणवायामसमत्थे छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए एगं महतीं पडिसाडियं (वा) पट्टसाडियं वा गहाय सयराहं हत्थमेत्तं ओसारेज्जा, तत्थ चोअए पण्णवयं एवं वयासी—जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए, से समए भवइ?, नो इणट्ठे समट्ठे, कम्हा?, जम्हा संखेज्जाणं तंतूणं समुदयसमितिसमागमेणं एगा पट्टसाडिया निप्फज्जइ, उवरिल्लंमि तंतुंमि अच्छिण्णे हिट्ठिल्ले तंतू न छिज्जइ, अण्णंमि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ,

---

१— नाम' इति संभावनायाम्।

२—'अप्प'—अल्प शब्दोऽभाववचनः।

३—क्वचिदेतद्वाक्यं नोपलभ्यते। क्वचित् 'चम्मे०'

४—क्वचित् 'धम्म' स्य स्थाने 'चम्मे' इति।

अगणंमि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ, तम्हा से समए न भवइ, एवं वयंतं पगणवयं चोअए एवं वयासी—जेणं कालेणं तेणं तुगणागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्ट-साडियाए वा उवरिल्ले तंतू छिगणे से समए भवइ ? न भवइ, कम्हा ? जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे तंतू निप्फज्जइ, उवरिल्ले पम्हे अच्छिगणे हेट्ठिल्ले पम्हे न छिज्जइ, अगणंमि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जइ, अगणंमि काले हेट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ, तम्हा से समए न भवइ । एवं वयंतं पगणवयं चोअए एवं वयासी—जेणं कालेणं तेणं तुगणा-गदारएणं तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे छिगणे से समए भवइ? न भवइ, कम्हा ? जम्हा अणंताणं संघायाणं समु-दयसमितिसमागमेणं एगे पम्हे निप्फज्जइ, उवरिल्ले संघाए अविसंघाइए हेट्ठिल्ले संघाए न विसंघाइज्जइ, अगणंमि काले उवरिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, अगणंमि काले हिट्ठिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, तम्हा से समए न भवइ । एत्तो वि अ णं सुहुमतराए समए पगणत्ते समणाउसो ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलिअत्ति वुच्चइ, संखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो, संखिज्जाओ आवलियाओ नीसासो—हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवक्किट्ठस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चई ॥१॥ सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे । लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते विआहिए ॥२॥ तिगिण सहस्सा सत्त य, सयाइं तेहुत्तरिं च ऊसासा । एस मुहुत्तो भणियो, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥३॥ एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसं

मुहुत्ता अहोरत्तं, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा ऊऊ, तिण्णि उऊ अयणं, दो अयणाइं संवच्छरे, पंच संवच्छराइं जुगे, वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्सं, चोरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे, चउरासीइं पुव्वंग-सयहस्साइं से एगे पुव्वे, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे तुडिअंगे, चउरासीइं तुडिअंगे सयसहस्साइं से एगे तुडिए, चउरासीइं तुडिअसयसहसाइं से एगे अडडंगे, चउरासीइं अडडंगसयसहसाइं से एगे अडडे, एवं अव-वंगे अववे हुहुअंगे हुहुए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे नलिणंगे नलिणे अच्छनिऊरंगे अच्छनिउरे अउअंगे अउए पउअंगे पउए णउअंगे णउए चूलिअंगे चूलिया सीस-पहेलियंगे चउरासीइं सीसपहेलियंगसयसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिआ। एयावया चेव गणिए, एयावया चेव गणिअस्स विसए एत्तोवरं ओवमिए पवत्तइ ॥

पदार्थ-(से किं त समए ?) समय किसे कहते हैं ? (समयस्स णं परूवणं करिस्सामि) अब मैं समय की ही प्ररूपणा करूंगा, (से जहानामए तुण्णागदारए सिया) जैसे एक दर्जी हो, (तरुणे बलवं) वह तरुण और बलवान् हो,(जुगवं जुवाणे) चतुर्थकाल का जन्महो और जवान हो, अप्पातंके) रोग रहित हो (थिरग्गहत्थे) हाथ जिसके स्थिर हो, (दढपाणिपाय पिट्ठत्तरोरुपरिणते) पार्श्व, पृष्ठ्यन्तर और उरु भाग भी जिसके दृढ़ और सुपरिणमित हों अर्थात् सुडौल हों (तलजमलजुयलबाहू) ताल वृक्षोंके सदृश लम्बे और अर्गलोंके समान जिसके बाहुयुगल मोटे हों (घणणिचियवट्टपालिखंधे) कठिन संगठित और वर्तुलाकार जिसके स्कन्ध हों (चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठिअसमाहत निचितगत्तकाए) चर्मेष्टक, द्रुघण मुष्टिका आदि व्यायामों के प्रतिदिन अभ्यास से जिसके शरीर के अवयव पुष्ट होगये हों (उरस्सबलसमण्णागए) हृदय का बल भी जिसको प्राप्त हो गया है अर्थात् जिस [illegible] वीर्य आदि से युक्त हो (लंघणपवणजइणवायामसमत्थे) कदना,

फलांगना, तैरना, दौड़ना आदि व्यायामों के करने में भी जो समर्थ हो (च्छेए) जो प्रयोगादि का भी ज्ञाता हो, (दक्खे) जो शीघ्र कार्य करने वाला हो, (पत्तट्ठे) जो उपाय को करने वाला हो, और (कुसले) जो विचार शील हो (मेहावी) जो एक बार ही सुन कर या देख कर स्मृति रखने वाला तथा कार्य आरम्भ करने वाला हो, (निउणे) उपायों का ज्ञाता हो, (निउणसिप्पोवगए) जो शिल्पोपगत और सूक्ष्म विज्ञान युक्त हो, एक (एगं महतिं पडिसाडियं पट्टसाडियं वा गहाय) एक बड़ी या छोटी पट साटिका ग्रहण करके उसमें से (सयराहं हत्थमेत्ते ओसारेज्जा) एक ही बार में बहुत शीघ्र हाथ भर फाड़ दे, (तत्थ चोयए पण्णवयं एवं वयासी—) उस समय ऐसी स्थिति में प्रेरक शिष्य ने प्रज्ञापक-गुरु से यों कहा-(जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडिआए वा पट्टसाडियाए वा सयराहं हत्थमेत्ते ओसारिए से समए भवइ ?) जितने काल में उस दर्जी के बालक ने उस कपड़े में से एक ही बार में बहुत ही शीघ्र एक हाथ भर कपड़ा फाड़ दिया तो क्या वही समय है ? (नो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थ नहीं है, (कम्हा?, क्यों ? (जम्हा संखेज्जाणं तंतूणं समुदयसमितिसमागमेणं) यों कि संख्यात तन्तुओं के समुदाय से (एगा पडिसाडिया निप्फज्जइ) एक पट्टसाटिका उत्पन्न होती है, और (उवरिल्लंमि तंतुंमि अच्छिण्णे हिट्ठिल्ले तंतू न छिज्जइ) ऊपरके तन्तुओं के बिना छिदे नीचे के तन्तु नहीं छिदते, (अण्णंमि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ अण्णंमि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ) ऊपर के तन्तु अन्य काल में छेदन होते हैं और नीचे के तन्तु अन्य काल में छेदन होते हैं (तम्हा से समए न भवइ) इसलिये वह 'समय' नहीं है। (एवं वयंतं पण्णवयं चोअए एवभं वयासी—) गुरु के इस प्रकार कहने पर शिष्यने यों कहा-(जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं तीसे पडसाडियाए वा पट्टसाडियाए वा उवरिल्ले तंतू च्छिण्णे से समए भवइ ?) जितने काल में उस दर्जी के बालक ने उस कपड़े के ऊपर के तन्तु को छेदन किया, क्या वह 'समय' है ? (न भवइ) नहीं होता, (कम्हा ?, क्यों? (जम्हा संखेज्जाणं पम्हाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे तंतू निप्फज्जइ) इसलिये कि संख्यात पक्ष्मणों के समुदाय से एक तन्तु बनता है और (उवरिल्ले पम्हे अच्छिण्णे हेट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ) ऊपर के पक्ष्म छिदे विना नीचे के पक्ष्म नहीं छिदते (अण्णंमि काले उवरिल्ले पम्हे च्छिज्जइ अण्णंमिकाले हेट्ठिल्ले पम्हे च्छिज्जइ) ऊपर के पक्ष्म अन्य काल में छिदते हैं और नीचे के पक्ष्म अन्य काल में छिदते हैं (तम्हा से समए न भवति) इसलिये वह 'समय' नहीं है (एवं वयंतं पण्णवयं चोअए एवं वयासी—) इस प्रकार गुरु के कहने पर शिष्य ने कहा-(जेणं कालेणं तेणं तुण्णागदारएणं) जिस काल में उस दरजी के बालक ने (तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे च्छिण्णे से समए भवइ ?) उस तन्तु के ऊपर को 'पक्ष्म' को छेदन किया है, क्या वह

'समय' है ? (न भवइ) नहीं, (क हा?) क्यों ? (जम्हा अणंताणं संघायाणं समुदयसमितिसमागमेणं एगे पम्हे निप्फज्जइ) इसलिये कि अनन्त संघातों के समुदाय समिति समागम से एक 'पक्ष्म' उत्पन्न होता है. (उवरिल्ले संघाए अविसंघाइए हिट्ठिल्ले संघाए न वि संघाइज्जइ) ऊपर के संघात के विसंघटित हुए विना नीचे का संघात विसंघटित नहीं होता। (अण्णंमि काले उवरिल्ले संघाए विसंघ इज्जइ) ऊपर का अन्य काल में संघात विसंघटित होता है, और (अण्णंमि काले हिट्ठिले विसंघाए विसंघाइज्जइ) नीचे का संघात अन्य काल में विसंघटित होता है। (तम्हा से समए न भवइ) इसलिये वह 'समय' नहीं है, किन्तु (एत्तो वि अ णं सुहुमतराए समए पण्णत्ते, समणाउसो !) हे श्रमणायुष्मन् ! इस ऊपर के पक्ष्म के छेदन काल से भी सूक्ष्मतर 'समय' प्रतिपादन किया गया है।* (असंखिज्जाणं समयाणं समुदय-समितिसमागमेणं) अपि तु फिर असंख्यात समयों के समुदाय समिति और समागम से (सा ए ा आवलिअत्ति वुच्चइ,) वह एक आवलिक का कहा जाता है, फिर (संखेज्जाओ आवलियाओ ऊसास.) संख्यात आवलिकाओं का एक उश्वास और (संखेज्जाओ आवलिया-ओ नीसासो) संख्यात आवलिकाओं का एक निश्वास होता है, अर्थात् संख्यात आव-लिकाओं के मिलने से एक उच्छ्वास निश्वास होता है, नाभि से ऊर्द्ध गमन को उच्छ्वास और अधोगमन को निश्वास कहते हैं, फिर (हट्ठस्स अणवगलस्स) हृष्ट (हर्ष) वंत और जरा से रहित और (निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।) व्याधि से भी रहित ऐसे पुरुष के (एगे ऊसासनीसासे एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥१॥) एक उश्वास निश्वास के काल को प्राण कहा जाता है अर्थात् जो हर्षवन्त शोक रहित पुरुष है उसके एक श्वासोच्छ्वास को प्राण कहते हैं, और (सत्तपाणूणि से थोवे) और उन सप्त प्राणों का एक स्तोक, (सत्त थोवाणि से लवे) और ७ स्तोकों का एक लव होता है। (लवाणं सत्तहत्तरिए) और ७७ लवों का एस मुहुत्ते वियाहिए) यह मुहूर्त कहा गया है ॥ २ ॥

अब मुहूर्त काल के उच्छ्वासों का विवरण करते हैं। (तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं) तीन सहस्र सात सौ (तेहुत्तरिं च ऊसासा)। और ७३ उच्छ्वासों का (एस मुहुत्तो

*लेकिन इस कथन से अनन्त पक्ष्मणों के छेदन में अनन्त समय न जानना चाहिये किन्तु इसमें असंख्यात समय ही होते हैं। क्योंकि आगम में कहा गया है कि—"असंखेज्जासु णं भंते ! उस्सप्पिणिअवसप्पिणीसु केवईया समया पण्णत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा; अणंतासु णं भंते ! उस्सपिणिअवसप्पिणीसु केवईया समया पण्णत्ता ? गोयमा ! अणंता" अनन्त उत्सर्पिणियों के अनन्त समय होते हैं और असंख्यात उत्सर्पिणियों के असं-ख्यात समय होते हैं।

भणिओ) ऐसा एक मुहूर्त (सव्वेहि अणंतनाणीहिं ॥३॥) सर्व अनन्त ज्ञानियों ने कहा है ॥३॥ अर्थात् सर्वज्ञ देवों ने एक मुहूर्त के ३७७३ श्वासोच्छ्वास कथन किये हैं। इसलिए (एएणं मुहुत्तपमाणेणं) इस मुहूर्त प्रमाण से (तीसं मुहुत्ता अहोरत्तं) तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र होता है, और (पन्नरस अहोरत्ता पक्खो) पंच दश १५ दिन रात्रियों का १ पक्ष, (दो पक्खा मासो) दो पक्षों का एक मास होता है, फिर (दो मासा उऊ) दो मासों की एक ऋतु, (तिण्णि ऊऊ अयणं) और तीन ऋतुओं का एक अयण होता है, और (दो अयणाइं संवच्छरे) दो अयणों का एक संवत्सर होता है, (पंच संवच्छराइं जुगे) पांच संवत्सरों का एक युग, और (वीसं जुगाइं वाससयं) बीस युगों का एकसौ वर्ष होता है, (दस वाससयाइं वाससहस्सं,) दस सौ वर्षों का एक सहस्र वर्ष, (सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्सं) सौ सहस्र वर्षों का एक लक्ष वर्ष होता है, और (चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे) चौरासी लक्ष वर्षों का एक पूर्वांग होता है, (चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे,) चौरासी लक्ष पूर्वांगों का एक पूर्व, और (चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं से एगे तुडिअंगे,) चौरासी लाख पूर्वों का एक त्रुटितांग होता है, (चउरासीइं तुडियंगसयसहस्साइं से एगे तुडिए) चौरासी लक्ष त्रुटितांगों का एक त्रुटित होता है, और (चउरासीइं तुडियसयसहस्साइं से एगे अडडंगे,) ८४ लक्ष त्रुटितों का एक अडडांग होता है, (चउरासीइं अडडंगसतसहस्साइं से एगे अडडे,) चौरासी लक्ष अडडांगों का एक अडड होता है, एवं अववंगे अववे) इसी प्रकार आगे भी ८४ लाख गुणा करते जाना सो अववंग, अवव, (हुहुअंगे हुहुए) हुहुअंग और हुहुय (उप्पलंगे उप्पले) उत्पलांग और उत्पल, (पउमंगे पउमे) पद्मांग और पद्म, (नलिणंगे नलिणे) नलिणांग और नलिण, (अच्छनिऊरंगे अच्छनिऊरं) अच्छनिऊरांग और अच्छनिऊर (अउयंगे अउय) अयुतांग और अयुत, (पउअंगे पउए) प्रयुतांग और प्रयुत, (णउअंगे णउए) नयुतांग और नयुत, (चूलिअंगे चूलिया) चूलितांग और चूलिका (सीसपहेलियंगे) शीर्षप्रहेलिकांग, (चउरासीइं सीसपहेलियंगसतसहस्साइं) ८४ लक्ष शीर्षप्रहेलिकांगों की (सा एगा सीसपहेलिया) एक शीर्ष प्रहेलिका होती है, (एतावता चेव गणिते) एतावन्मात्र ही गणना है, और (एतावता चेव गणिअस्स विसये) एतावन्मात्र ही गणित का विषय है अर्थात् फलितार्थ है, अपि तु इसका पूर्ण विवरण किया जा चुका है, इसीलिये विशेष वर्णन नहीं किया है, किन्तु (*अतो तेणं परं उवमिए पवत्तंते,) इसके उपरान्त उपमा प्रवर्ती है अर्थात इस गणना के उपरान्त पल्योपम व सागरोपम का ही विवरण किया जाता है, क्योंकि गणना संख्या में केवल एकसौ ९४ ? अक्षर होते हैं, अधिक नहीं होते, इसीलिये सूत्र ने प्रतिपादन किया है कि एतावन्मात्र ही गणित वा गणित का विषय है।

*'पत्तोत्तं' पाठान्तरम्।

भावार्थ—समय किसे कहते हैं ? समय का स्वरूप निम्न प्रकार से है, जैसे कि—कोई देवदत्त नामक दरजी का बालक तरुण, बलवान, चतुर्थ समय का उत्पन्न हुआ हुआ, युवा निरोग शरीर स्थिर हस्ताग्र दृढ़ है जिसके, पाणि और पाद, पुनः पार्श्व, पृष्ठयन्तर उरु आदि भी सुपरिणमित है तथा युगलताडं वृक्षों के समान सम है और जिसकी बाहु दीर्घ है, कठिन मांसोपचित वर्तुलाकार जिसके स्कन्ध हैं, और व्यायाम से भी जिसका शरीर पुष्ट है, तथा वक्षःस्थल में भी बल प्राप्त हो रहा है ऐसा सदैव शीघ्र कार्य करने वाला, दक्ष, प्रज्ञावान, कुशल और मेधावी है, पुनः निपुण और शिल्पोपगत है उसने एक महान् उत्तीर्ण वा लघु पट्टशाटिका† हाथ में लेकर एक हस्त प्रमाण फाड़ दिया। जिस काल में उस युवा पुरुष ने उस वस्त्र को फाड़ा क्या वही समय काल होता है ? नहीं, क्यों ? संख्यात तंतुओं के समुदाय से पट्टशाटिका की उत्पत्ति होती है, इसलिये ऊपरके तंतु के छेदन किये बिना नीचे का तंतु छेदन नहीं होता, सो ऊपर के तंतु-छेदन का समय और है, तथा नीचे के तंतुओं का छेदन समय और है इसलिये वह समय काल नहीं है। जिस काल में उस युवा पुरुष ने उस पट्टशाटिका के ऊपर के तंतु को छेदन किया है, तो क्या वह समय होता है ? नहीं, किस कारण ? संख्यात पक्ष्मणों के समुदाय से एक तंतु उत्पन्न होता है सो ऊपर के पक्ष्मणों के बिना छेदन हुए नीचे का पक्ष्म छेदन नहीं होता है और उनके छेदन काल का समय पृथक् २ है इसलिये वह भी समय काल नहीं होता है। क्या ऊपरके पक्ष्म के छेदनकाल को समय कहते हैं ? नहीं। क्यों ? अनन्त परमाणुओं के मिलने से एक पक्ष्म की उत्पत्ति होती है, इसलिये उनका भी छेदन काल पृथक् २ है। इसलिये प्रतिपादन किया गया है कि समय काल बहुत ही सूक्ष्म है*। तथा असंख्यात समयों के मिलने से एक आवलिका होती है, संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास और निःश्वास होता है, सो प्रसन्न मन, निरोग शरीर, जरा और व्याधि से रहित पुरुष के एक श्वासोच्छ्वास को एक प्राण कहते हैं, और सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव होता है, ७७ लवों का एक मुहूर्तकाल वर्णन किया गया है, तीन सहस्र सात सौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त होता है, फिर तीस मुहूर्तों

† वस्त्र विशेष।

* 'असंखेज्जासु णं भंते ! उस्सप्पिणीसु केवइया समया पण्णत्ता ?, गोयमा ! असंखेज्जा, अणंतासु णं भंते ! उस्सप्पिणिसु केवइया समया पण्णत्ता ?, गोयमा ! अणंता' इति वचनात्।

का एक दिन रात, १५ दिन रात्रों का एक पक्ष होता है, दो पक्षों का एक मास होता है, दो मासों की एक ऋतु और तीन ऋतुओं की एक अयण, दो अयणों का एक संवत्सर होता है, इसी तरह पाँच संवत्सरों का एक युग बीस युगों का १०० वर्ष होता है, दश सौ वर्षों का एक सहस्र वर्ष, सौ सहस्र वर्षों का एक लाख वर्ष, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है, इसी प्रकार प्रत्येक को चौरासी लाख से गुणा कर लेना चाहिये। पूर्व त्रुटितांग, त्रुटित, अडड २, अवव २, हुहुए २; उप्पले २, पउमे २, नलिण २ अच्छिन २, प्रयुत २, अयुत २, चुलित २, शीर्षप्रहेलिका २। एक पूर्ववर्ती अंग से उत्तर स्थिति पद चौरासी लाख गुणा अधिक जानना चाहिये, सो एतावन्मात्र गणित का विषय है। अपि तु इसके उपरांत उपमा से कार्य साधन करना चाहिये इसलिये अब उपमा का विषय कहते हैं—

अथ उपमा का विषय।

से किं तं ओवमिए?, २दुविहे पगणत्ते तंजहा—पलिओवमे य सागरोवमे य, से किं तं पलिओवमे?, २ तिविहे पगणत्ते, तंजहा— उद्धारपलिओवमे अद्धापलिओवमे खित्तपलिओवमे अ, से किं तं उद्धारपलिवमे?, २ दुविहे पगणत्ते, तंजहा— सुहुमे अ ववहारिए अ, तत्थ गां जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ गां जे से ववहारिए से जहानामए पल्ले सिया जोयणं आयामविक्खंभेणं जोयणं उद्धं उच्चत्तेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से गां पल्ले एगाहिअ वेआहिअतेआहिअ जाव उक्कोसेणं सत्तरत्त [प] रूढाणं संसट्ठे संनिचिते भरिए वालग्गकोडीणं ते गां वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा नो वाऊ हरेज्जा नो कुहेज्जा नो पलिविद्धंसिज्जा नो पुइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ गां समए२एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइ-

एगां कालेगां से पल्ले खीगो नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ, से तं ववहारिए उद्धारपलिओवमे।

ऐऐसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं ववहारियस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥ १ ॥

एएहिं वावहारियउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओअणं?, एएहिं वावहारिअउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं णत्थि किंचिप्पओअणं, केवलं, तु पणवणा किज्जइ, से तं वावहारिए उद्धारपलिओवमे।

पदार्थ—(से किं तं ओवमिए ?, २ दुविहे पराणत्ते, तंजहा-) औपमिक किसे कहते हैं? जो संख्या से अतिरिक्त है उसको उपमा के द्वारा विवर्ण किया जाय उसे औपमिक कहते हैं, तथा च औपमिक विवर्ण दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि— (पलिओवमे य सागरोवमे य) पल्योपम और सागरोपम, (से किं तं पलिओवमे ?, २ तिविहे पराणत्ते, तंजहा-) पल्योपम किसे कहते हैं? जो धान्य के पल्य (कूप) के समान पल्य है उसको उपमा देकर पदार्थों का विवर्ण करना ही पल्योपम कहलाता है, किन्तु पल्योपम भी तीनों प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि— उद्धारपलिओवमे) उद्धारपल्योपम, (अद्धापलिओवमे) अद्धा (काल) पल्योपम और (खित्तपलिओवमे) क्षेत्रपल्योपम, (से किं तं उद्धारपलिओवमे) उद्धार पल्योपम किसे कहते हैं? (उद्धारपलिओवमे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा-) उद्धार पल्योपम दो प्रकार से विवर्ण किया गया है, जैसे कि-(सुहुमे य ववहारिए य)सूक्ष्मउद्धारपल्योपम और व्यावहारिकउद्धारपल्योपम, अपि तु, फिर (तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे,) उन दोनों में जो सूक्ष्म है उसके स्वरूप को तो अभी छोड़ दीजिये, परंतु (तत्थ णं जे से वावहारिए से जहानामए पल्ले सिया) उन दोनों में जो वह व्यावहारिक है वह जैसे नाम संभावना में धान्य के पल्य के समान पल्य होता है वह पल्य (जोयणं आयामविक्खंभेणं) उत्सेधांगुल के परिमाण से योजन मात्र दीर्घ और विस्तार संयुक्त हो, और (जोयणं उड्ढं †उच्चत्तेणं) योजन मात्र ऊंचा हो,

१ एतदन्यत्र नास्ति। २ पराणवि० पाठान्तरम्।

† किसी २ प्रति में (जोयणं उव्वेहणं) योजन प्रमाण गहरा है, ऐसा पाठ है।

और (तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं) उस पल्य की कुछ विशेष त्रिगुणी परिधि हो, (से णं पल्ले एगाहियवेआहिए तेआहिए जाव उक्कोसेणं सत्तरत्त [प] रूढाणं) फिर उस पल्य में एक दिन से लेकर सात दिन पर्यन्त उत्पन्न हुए हुए बालकों के (वालग्गकोडीणं) वालाग्रों की अनियों से (संसट्ठे संनिचिते) संसृष्टता पूर्वक और पूर्णतया अथवा घनिष्ठतया (भरिए) भरा हुआ हो, फिर उन वालाग्रों को (नो अग्गी डहेज्जा) अग्नि दाह न कर सके, (नो वाऊ हरेज्जा) न ही वायु हरण करे, (नो कुहेज्जा) न ही सड़े अर्थात् परिभ्रंश भी न हो, (नो विद्धंसेज्जा) न ही विध्वंस हो, (नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा) न ही दुर्गंध उत्पन्न हो, फिर (तओ णं समए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय) उन वालाग्रों को समय २ में अपहरण करके (जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ, से तं ववहारिए उद्धार पलिओवमे ।) जितने काल मात्र में वह पल्य क्षीण, *निरज, निर्लेप और निष्ठित होता है उसीको व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं। पल्य के स्वरूप के अनन्तर अब सागरोपम का विवर्ण करते हैं—

(एए सिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।
तं ववहारियस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥)

इन उक्त पल्योपमों को दश कोटा कोटि गुणा करें तो एक व्यवहारिक उद्धार सागरोपम का परिमाण होता है अर्थात् दश कोटा कोटि पल्योपमों का एक सागरोपम होता है, (एएहिं वावहारियउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?) इन व्यावहारिक उद्धारपल्योपम और सागरोपम के कथन करने का क्या प्रयोजन है ? (नत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं तु पण्णवणा किज्जइ) कुछ भी प्रयोजन नहीं है, केवल प्ररूपण मात्र ही इनका विवर्ण किया जाता है। जब किंचित् मात्र भी प्रयोजन नहीं है तो फिर इसका विवर्ण व्यर्थ है ? वर्तमान प्रारम्भ मास में इसको किंचित्मात्र भी प्रयोजनता असिद्ध है किन्तु सूक्ष्मउद्धारपल्योपम समास के समय में यह सुखाववोध के लिए उपादेय है अर्थात् अत्यन्त उपयोगी है, (से तं ववहारिए उद्धारपलिओवमे) अतएव वही व्यावहारिक उद्धारपल्योपम है।

भावार्थ—औपमिक समास उसे कहते हैं जहाँ पर गणित का विषय तो न हो सके, परन्तु उपमा के द्वारा उसका विवर्ण किया जाय, वह उपमा दो प्रकार से वर्णन की गई है, जैसे कि—पल्योपम और सागरोपम, पल्योपम के भी तीन भेद हैं, जैसे कि—उद्धारपल्योपम, अद्धापल्योपम और क्षेत्र-

* यह तीनों शब्द एकार्थी हैं, तथापि परस्पर विशुद्धतर जानने चाहिए।

पल्योपम, अपि तु फिर उद्धारपल्योपम भी दो प्रकारसे वर्णन किया गया है, जैसे कि-सूक्ष्म और व्यावहारिक, सूक्ष्म का विवर्ण फिर किया जायगा, अतः व्यावहारिक का स्वरूप निम्न लिखितानुसार पढ़ना चाहिये, जैसे एक उत्सेधाँगुल के प्रमाण से योजनमात्र दीर्घ, विस्तीर्ण और ऊर्ध्व पल्य (कूप) के समान हो, उसकी कुछ विशेष त्रिगुणी परिधि भी हो, उसको एक दिन से लेकर सात दिन तक के उत्पन्न हुए हुए बालकों के केशों से ऐसा भरा जाय कि उनको अग्नि दाह न कर सके, वायु भी अपहरण न करे, और न वे विध्वंस हो, तथा न उनमें दुर्गन्धि उत्पन्न होवे, फिर उन बालाग्रों को समय २ में अपहरण किया जाय, जितने काल में वह पल्य क्षीण, निरज, निर्लेप निष्ठित हो जाय उसी को व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं, और इन्हीं पल्यों को दश कोटाकोटि गुणा करने से व्यावहारिक उद्धारसागरोपम होता है। यदि यह शंका हो कि—इसके कथन करने का क्या प्रयोजन है तो उत्तर यह है कि-इस समय तो कुछ भी प्रयोजन नहीं है किन्तु सूक्ष्म पल्य के बोध के लिये अत्यन्त उपयोगी है, इसीलिये इसको व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं। अब इसके अनन्तर सूक्ष्म उद्धारपल्योपम के विषय में कहा जाता है—

अथ सूक्ष्मउद्धारपल्योपम का विषय।

से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे ?, २ से जहा-नामए पल्ले सिया जोयणं आयामविक्खंभेणं जोयणं उव्वेहेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहिअबेआहिए तेआहिअ उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं संसट्ठे संनिचिते भरिते वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ, तेणं वालग्गा दिट्ठी-ओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणग-जीवस्स सरीरोगाहणाउ असंखेज्जगुणा, तेणं वालग्गा णो

अग्गी डहेज्जा णो वाऊ हरेज्जा णो कुहेज्जा णो विद्धंसेज्जा नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, तओ णं समए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे
एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिया ।
तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥

एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओ-अणं ? एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारं घेप्पइ । केवइयाणं भंते ! दीवसमुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ते ? गोयमा ! जावइयाणं अड्ढाइज्जाणं [३] उद्धार सुहुमसागरोवमाणं उद्धारसमया एवइयाणं दीव-समुद्दा उद्धारेणं पण्णत्ता, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे, से तं उद्धारपलिओवमे ।

पदार्थ—(से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे ?, २ से जहानामए) सूक्ष्मउद्धारपल्योपम किसे कहते हैं ? जैसे कि—(पल्ले सिया जोयणं आयामविक्खंभेणं) धान्य के पल्य के समान पल्य हो और वह योजन प्रमाण दीर्घ और विस्तार युक्त हो और (जोयणं उव्वेहेणं) योजन प्रमाण भूमिके नीचे स्थित हो, (तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं) फिर उसकी परिधि कुछ विशेष त्रिगुणी भी कथन की गई हो (से णं पल्ले एगाहिअ) फिर उस पल्य में एक दिन के, (बेआहिअ) दो दिन के, (तेआहिअ) तीन दिन के, (उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं) उत्कृष्ट से सात दिन तक के वृद्धि किये हुए केशों से,

१ 'पलि'० इति पाठान्तरम् ।

२ 'रो' इति पाठान्तरम् ।

३ 'उद्धारसागरोवमाणं' इति पाठः ।

(संसट्ठे) †आकर्ण पर्यन्त (संनिचिते) घनिष्ठता से (भरिते वालग्गकोडीणं) बालाग्रों की कोटि (अनियों) से भरा हुआ हो, फिर (एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ) एक २ बालाग्र के असंख्यात प्रमाण खंड किये जायँ। अब द्रव्य से उन खंडों का प्रमाण कहते हैं—(ते णं वालग्गा ‡दिट्ठीओ ओगाहणाउ असंखेज्जइभागमेत्ता) वे बालाग्र दृष्टि की अवगाहना से असंख्यात भाग मात्र हों अर्थात् यावन्मात्र दृष्टिगत पदार्थ हों, उन से भी असंख्यात भाग प्रमाण वह खंड न्यून हो, इसलिये दृष्टि से वह खंड असंख्यात भाग प्रमाण होता है। अब क्षेत्र से प्रमाण कहते हैं-(सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरओगाहणाउ असंखेज्जगुणा,) सूक्ष्म पनक—जीव के शरीर की अवगाहना से असंख्यात गुणाधिक है। अतः यावन्मात्र सूक्ष्म पनक जीव की शरीर अवगाहना होती है, उस से असंख्यात गुणा है यानी *बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवों के तुल्य है, इस प्रकार वृद्धवाद भी कहा जाता है। फिर (ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा) उन बालाग्रों को अग्नि भी दाह न कर सके, (णो वाऊ हरेज्जा) न ही वायु हरण कर सके, (णो कुच्छेज्जा) न ही वे सड़े, (णो विद्धंसिज्जा) विध्वंस भी न हों, (णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा) न ही दुर्गन्धता को वे प्राप्त हों, (तओ णं समए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय) फिर एक २ बालाग्र को समय २ में अपहरण करके (जावइएणं कालेणं) यावन्मात्र काल में (से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ,) वह पल्य क्षीण, निरज, निर्लेप और निष्ठित होता है, (से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे।) इसी को सूक्ष्म–उद्धारपल्योपम कहते हैं।

(एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिया ।)
(तं सुहुमस्स उद्धारसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥)

इन पल्यों को दश कोटाकोटि गुणा करने से एक सूक्ष्म-उद्धारसागर का परिमाण होता है, अर्थात् दश १० कोटाकोटि पल्यों का एक सूक्ष्मउद्धारसागर होता है। (एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?) इन सूक्ष्मउद्धारसागरोपम और पल्योपम के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएहिं सुहुमउद्धारपलिओवमसागरोवमेहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारं घेप्पइ) इन सूक्ष्मउद्धारपल्योपम और सागरोपमों से द्वीप समुद्रों का उद्धार किया जाता है,

---

† प्राकृत भाषा में जैसे कोई घटादि जल से इतना पूर्ण हो कि उसमें एक भी बिन्दु और प्रविष्ट न हो सके तो उसकी पूर्णता को आकर्ण–पूर्णता कहा जाता है।

‡ 'दिट्ठी' इत्यपि पाठः ।

*'बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तशरीरतुल्यानीति' वृद्धवादः ।

अर्थात् द्वीप समुद्रों का प्रमाण इसी गणना के अनुसार ग्रहण किया गया है। (केवइ-याणं भंते ! दीवसमुद्दा उद्धारेणं पराणत्ता ?) इस प्रकार श्री भगवान् के वचनों को सुन कर श्री गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! कियत्प्रमाण द्वीप समुद्र उद्धार प्रमाण से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! जावइयाणं अड्ढाइज्जाणं उद्धारसुहुमसागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया णं दीवसमुद्दा उद्धारेणं पन्नत्ता, से तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे, से तं उद्धारपलि-ओवमे।) भगवान् ने उत्तर दिया कि भो गौतम ! यावत्प्रमाण ढाई उद्धार सूक्ष्म सागरोपम के उद्धार समय हैं, तावत्प्रमाण उद्धार द्वीप समुद्र हैं, यही पूर्वोक्त सूक्ष्मो-द्धारपल्योपम है और इसी को पल्योपम कहते हैं।

भावार्थ— सूक्ष्मउद्धारपल्य उसे कहते हैं जो प्राग्वत् के समान एक पल्य स्थापन किया गया है, अपि तु जो बालाग्रों की कोटियों से भरा हुआ हो, फिर उन कोटियों में से एक २ कोटि के असंख्यात खंड कल्पित कर लिये जायँ जो कि दृष्टि की अवगाहनता से असंख्यात भाग प्रमाण हों, और सूक्ष्म *पनक जीव की अवगाहना से असंख्यात गुणा हो, इस प्रकार उस पल्य को बालाग्रों से भर दिया जाय, पुनः जिसे अग्नि दाह न कर सके तथा वायु अपहरण न कर सके, न ही उसको दुर्गंध पराभव कर सके और वह घनता युक्त भी हो, फिर उन बालाग्रों का समय २ में एक २ खंड करके वह पल्य खाली कर दिया जाय, इस प्रकार जितने काल में वह पल्य खाली हो जाय उसको सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते हैं। जब दश कोटा कोटि प्रमाण पल्य खाली हो जाय तब एक सूक्ष्मउद्धार सागर होता है। इसके प्रतिपाद करने का मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि इसके द्वारा द्वीपसमुद्रादि का प्रमाण किया जाता है। इस प्रकार गुरु के बचनों को सुन कर शिष्य ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन् ! उक्त प्रमाण से कितने द्वीप समुद्र हैं ? गुरु ने उत्तर दिया कि भो ! शिष्य ! उक्त प्रमाण से अर्द्ध तृतीय अढ़ाई २॥ सागरों के समान द्वीप समुद्र हैं, अथवा २५ पच्चीस कोटा कोटि उद्धार पल्यों के तुल्य द्वीप समुद्र हैं, सो इसे ही उद्धारपल्य कहते हैं। अब इसके अनन्तर अद्धापल्य का वर्णन किया जाता है—

अथ अद्धा पल्य का विषय।

से किं तं अद्धापलिओवमे ?, २ दुविहे पराणत्ते, तंजहा-सुहुमे य ववहारिए अ तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ

---

* निगोद के जीव।

णं जे से वावहारिए से जहानामए पल्ले सिया जोयणं आयाम-विक्खंभेणं जो० उ० तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेआहियतेआहिए जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव नो पलिविद्धंसिज्जा नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, ततो णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ, से तं ववहारिए अद्धापलिओवमे।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हविज्ज दसगुणिता।
तं ववहारिअस्स, अद्धासा०एगस्स भवे परिमाणं॥१॥

एएहिं ववहारिएहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?, एएहिं ववहारिअअद्धापलिओवमसागरोवमेहिं नत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं पण्णवणा किज्जइ, से तं ववहारिए अद्धापलिओवमे। से किं तं सुहुमे अद्धापलिओवमे ?, २ से जहानामए पल्ले सिआ जोअणं आयाम-विक्खम्भेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, से णं पल्ले एगाहियबेआहियतेआहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभाग-मेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखिज्ज गुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पलिविद्धं-सिज्जा नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, ततो णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडि भवेज्ज दस गुणिया।
तं सुहुमस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं॥१॥

एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं? एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवाणं आउअं मविज्जति।

पदार्थ—(से किं तं अद्धापलिओवमे ? २ दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–) अद्धापल्योपम किसको कहते हैं ? अद्धापल्योपम दो प्रकार से वर्णन किया गया है, जैसे कि–(सुहुमे य ववहारिए य,) सूक्ष्म और व्यावहारिक, (तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे,) उन दोनों में से जो सूक्ष्म है उसे छोड़ दीजिये, (तत्थ णं जे से ववहारिए, उन दोनों में जो वह व्यावहारिक है, वह निम्न प्रकार से है—(से जहानामए) जैसे कि—(पल्ले सिया जोयणं आयामविक्खंभेणं) धान्यों के समान एक पल्य हो, जो कि योजन प्रमाण दीर्घ और विस्तार युक्त हो, और (जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं) योजन प्रमाण ऊर्ध्वता से भी युक्त हो (तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं.) उसकी त्रिगुणी कुछ विशेष परिधि भी हो, अर्थात् त्रिगुणी साधिक परिधि से युक्त हो, से णं पल्ले एगाहियबेआहियतेआहिए जाव भरिए वालग्गकोडीणं) फिर उस पल्य को एक दिन दो दिन तीन दिन यावत् सात दिन तक के बालाग्रों से भर दिया गया हो और (ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव नो पलिविद्धंसिज्जा नो पूईत्ताए हव्वमागच्छेज्जा,) जब की बालाग्रों की कोटियों से भर दिया गया तब उन बालाग्रों को अग्नि भी दाह न कर सकती हो यावत् वे बालाग्र विध्वंस भी न हों क्योंकि कठिन यानी घनता से भरे गए हैं, और नहीं इनमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो, (ततो णं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय,) फिर उस पल्य में से सौ २ वर्ष के पश्चात् एक एक बालाग्र निकाल लिया जाय तो (जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ,) जितने काल में वह पल्य क्षीण, निरज, निर्लेप, और निष्ठितार्थ होता है (से तं ववहारिए अद्धापलिओवमे ।) उसी काल मात्र को व्यावहारिक अद्धापल्योपम कहते हैं।

(एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भविज्ज दस गुणिया।
ववहारिअस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥)

इन पल्योपमों को दश कोटा कोटि गुणा किया जाय तब एक व्यावहारिक अद्धासागरोपम होता है। (एएहिं ववहारिएहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?)

इन व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम के कथन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएहिं ववहारियअद्धापलिओवमसागरोवमेहिं नत्थि किंचिप्पओयणं, केवलं पण्णवणा-किज्जइ,) इन व्यावहारिक अद्धापल्योपम और सागरोपम के कथन करने का किंचिन्मात्र भी प्रयोजन नहीं है, केवल सुखावबोध के वास्ते प्ररूपणा मात्र ही कथन किया गया है, (से तं ववहारिए अद्धापलिओवमे ।) वही पूर्वोक्त व्यावहारिक अद्धा पल्योपम है। (से किं तं सुहुमे अद्धापलिओवमे ? २ से जहानामए) सूक्ष्म अद्धापल्योपम किसे कहते हैं ? जैसे कि—(पल्ले सिया) प्राग् कथित पल्य हो, और वह (जोयणं आयाम-विक्खंभेणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं,) योजन प्रमाण दीर्घ और विस्तार पूर्वक हो, अपितु योजन प्रमाण ऊर्ध्व भी हो (तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं) और उसको परिधि तीन गुणीसे कुछ विशेष भी हो, (से णं पल्ले एगाहियवेआहियतेआहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं,) फिर वह पल्य एक दिन, दो दिन, तीन दिन, यावत् सात् दिनतक के उत्पन्न हुए २ बालाग्रोंसे भर दिया गया हो अथवा बालाग्रों की कोटियों से घन रूप भी होगया हो, (तत्थणं) फिर (एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ, एक २ बालाग्र के असंख्यात खंड किये जायँ, फिर (ते णं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता) वे बालाग्र दृष्टि की अवगाहना से असंख्यात भाग मात्र हो, किन्तु (सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा,) सूक्ष्म पनक जीव के शरीर की अवगाहना से असंख्येय गुणाधिक कल्पित कर लिये जायँ, (तेणं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा) फिर उन बालाग्रों को अग्नि भी दाह न कर सके, (जाव नो पलिविद्धंसिज्जा) यावत् वे विध्वंस भी न हों (नो पूइत्ताए हव्वमा-गच्छेज्जा,) और न ही वे दुर्गन्धता को प्राप्त हों, (ततोणं वाससए २ एगमेगं वालग्गं अवहाय) फिर उन में से सौ सौ वर्ष के पश्चात् एक एक बालाग्र अपहरण किया जाय तो (जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे निट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे ।) फिर वह पल्य जितने काल में क्षीण, निरज, निर्लेप और निष्ठितार्थ हो जाय, उसको *सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते हैं, फिर—

(एएसिं पल्लाणं कोडाकोडि भवेज्ज दस गुणिया ।)
(तं सुहुमस्स अद्धासागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥)

इन अद्धापल्योपमों को दश कोटाकोटि गुणा करने से एक सूक्ष्म अद्धासागरोपम का परिमाण होता है। (एएहिं सुहुमेहिं अद्धापलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?) इन सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सागरोपमों के कथन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएहिं सुहुमेहिं

---

*'नवरमुद्धारकालस्येह वर्षशतमानत्वाद्व्यावहारिकपल्योपमे। सङ्ख्येया वर्षकोट्योऽवसेयाः, सूक्ष्मपल्योपमे त्वसङ्ख्येया' इति ।

अन्तर्मुहूर्त　तेरिकखजोणियमणुस्सवाणां आउयं मविज्जति,) इन सूक्ष्म अद्धा-
है, (तत्　ओं से नारकीय, तिर्यग् योनिक, मनुष्य और देवताओं की आयु
नारकियों　अर्थात् उक्त प्रमाणों से चारों गतियों के जीवों की आयु की
सागरोवमं　लिये इसे अध्वन् काल कहते हैं।

की और　स्थूल अद्धापल्य का वर्णन पहिले किया जा चुका है,
शेष पृथि　का भी स्वरूप जानना चाहिये, किन्तु विशेषता केवल इतनी
पर्य्याप्त,　ग्र के असंख्यात २ खंड कल्पित कर लेने चाहिये जो कि
काल अप　असंख्यात भाग प्रमाण हों और सूक्ष्म पनकजीव की अव-
अगले सूत्र　गुणाधिक हों, फिर उनबालाग्रों में से एक एक को
कालं ठिई प　काला जाय, जितने काल में वह पल्य खाली होजाय उसी
प्रतिपादन　हैं। जब दश कोटा कोटि प्रमाण पल्य खाली होजाय तब
हे गौतम !　ता है, इसके विवरण करने का मुख्य प्रयोजन केवल इतना
है, (पंक　य २, तिर्य्यक् योनिक २, मनुष्य ३ और देवों की ४ आयु
नारकियों　, अतः सर्व जीवों की आयु का मान इसी के द्वारा किया
सागरोवमाइ　आयु के विषय में विवरण करते हैं—

और उत्कृ

नारकियों की स्थिति।

उक्कोसेणं　ते ! केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा !
दश सागरो　वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरो-
पुढविनेरइयाणं　भापुढविणेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं
स्थिति कित　गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं
उक्कोसेणं वा　सागरोवमं, अपज्जत्तगरयणप्पभापुढविणेर-
२२ सागरोप　इयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जह-
तमस्तमाप्रभा　हुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तग-
(†गोयमा ! ज　णेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई प० ?
जघन्य स्थिति　णं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं
　सागरोवमं अंतोमुहुत्तोणं, सक्करप्पभा-

†

पुढविनेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिती प० ? गो! जहन्नेणं एगं सागरोवमं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं, एवं सेसपुढवीसु पुच्छा भाणियव्वा, वालुअप्पभापुढविनेरइयाणं जहन्नेणं तिण्णि सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं, पंकप्पभापुढविनेरइयाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं, धूमप्पभापुढविनेरइयाणं जहन्नेणं दस सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं, तमप्पभापुढविनेरइयाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं, तमतमापुढविनेरइयाणं भंते! केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

पदार्थ—(णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?) हे भगवन्! नारकियों की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है? (गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं,) भो गौतम! जघन्य से दश सहस्र वर्ष, और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम अर्थात् नारकियों की न्यून से न्यून स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है, इसी को औधिक सूत्र कहते हैं। (रयणप्पभापुढविणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई प०?) हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नारकियों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है? (गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं) हे गौतम! जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष की और (उक्कोसेणं एगं सागरोवमं,) उत्कृष्ट एक सागरोपम की होती है, (अपज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई प०?) हे भगवन्! अपर्याप्त रत्नप्रभापृथ्वी के नारकियों की स्थिति कितने काल की वर्णन की गई है? (गोयमा! जहन्नेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम! इनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त की होती है, (पज्जत्तगरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई प०,) हे भगवन्! पर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकियों की स्थिति कितने काल की वर्णन की गई है? (गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तणाइं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तोणं,) हे गौतम! जघन्य से

अन्तर्मुहूर्त न्यून दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून एक सागरोपम की होती है, (सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं०?) हे भगवन् शर्करप्रभापृथ्वी के नारकियों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति एक सागरोपम की और उत्कृष्ठ तीन सागरोपम की होती है, (एवं सेसपुढवीसु पुच्छा भाणियव्वा,) इसी प्रकार शेष पृथिवियों के विषय में पृच्छा करनी चाहिये। जैसे कि—अपर्य्याप्त काल और पर्य्याप्त, सो अपर्य्याप्त काल सभी नारकियों का अंतर्मुहूर्त प्रमाण होता है और पर्य्याप्त काल अपर्य्याप्त काल के अंतर्मुहूर्त को छोड़ कर शेष यथा स्थिति काल होता है, जो अगले सूत्र में विवरण किया गया है, जैसे कि—(वालुअप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं०?) हे भगवन् ! बालुप्रभा पृथ्वी के नारकियों के कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की और उत्कृष्ठ सात सागरोपम की होती है, (पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं० ?) हे भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नारकियों की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं,) हे गौत्तम ! जघन्य स्थिति सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दश सागरोपम की होती है, (धूमप्पभापुढवि० जहण्णेणं दस सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं,) तथा धूमप्रभापृथ्वी के नारकियों की जघन्य स्थिति-दश सागरोपम प्रमाण की और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम की होती है († तमप्पभा-पुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं०) हे भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नारकियों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति १७ सागरोपम की और उत्कृष्ट २२ सागरोपम की होती है, (तमतमापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं०?) हे भगवन् ! तमस्तमाप्रभापृथ्वी के नारकियों की कितने काल की स्थिति प्रति पादन की गई है ? (‡ गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २२ सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

---

† एतद्वाक्यं क्वचिन्नोपलभ्यते,

‡ सागरमेगं तिय सत्त दस य सत्तरस तह य बावीसा।
तेत्तीसं जाव ठिई सत्तसुवि कमेण पुढवीसु ॥ १ ॥
सागरोपममेकं त्रीणि सप्तदश च सप्तदश तथैव द्वाविंशतिः

भावार्थ—नारकियों की जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है, इसी को औधिक सूत्र कहते हैं। और सातों नरकों के अपर्य्याप्त नारकियों की स्थित सिर्फ अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही वर्णन की गई है, तथापि पर्याप्त नारकियों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून होती है। इन सातों नरकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति निम्न लिखितानुसार जाननी चाहिये—

नरक	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
प्रथम	दश सहस्र वर्ष	१ सागरोपम
द्वितीय†	एक सागरोपम	३ तीन सागरोपम
तृतीय	तीन सागरोपम	७ सात सागरोपम
चतुर्थ	सात सागरोपम	१० दश सागरोपम
पंचम	दश सागरोपम	१७ सत्तरह सागरोपम
षष्ठ	सत्तरह सागरोपम	२२ द्वाविंशति सागरोपम
सप्तम	द्वाविंशति सागरोपम	३३ त्रयस्त्रिंशत् सागरोपम

इस तरह जघन्य और उत्कृष्ट सातों नरकों की स्थिति वर्णन की गई है, किन्तु जघन्य से अधिक और उत्कृष्ट स्थिति से न्यून सर्व मध्यम स्थिति जाननी चाहिये। अब इसके पश्चात् दंडकानुसार भवनपत्यादि देवों की स्थिति वर्णन करते हैं:—

अथ भवनपत्यादि देवों की स्थिति।

असुरकुमाराणं भंते! केवइयं कालं ठिई पं०? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं, असुरकुमारदेवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्ध-पंचमाइं पलिओवमाइं, नागकुमाराणं भंते! केवइयं कालं ठिई पं०? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्को-

† 'जा पढमाए जेट्ठा सा बीयाए कणिट्ठा भणिया।
या प्रथमायां ज्येष्ठा सा द्वितियायां कनिष्ठा भणिता' ॥

सेणं देसूणाइं दुण्णि पलिओवमाइं, नागकुमारीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं० ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं, एवं जहा नागकुमाराणं देवाणं देवीण य तहा जाव थणियकुमाराणं देवाणं देवीण य भाणियव्वं ।

पदार्थ—(असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते?) हे भगवन् ! असुरकुमारों की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष प्रमाण और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक की वर्णन की गई है। (असुरकुमारदेवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते?) हे भगवन् ! असुरकुमारों के देवियों की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष और उत्कृष्ट साढ़े चार ४॥ पल्योपम की प्रति पादन की गई है, (नागकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते?) हे भगवन् ! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं दुण्णि पलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट देश न्यून दो पल्योपम की है, (नागकुमारीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते?) हे भगवन् ! नागकुमारियों की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं, हे गौतम ! जघन्य दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट देश न्यून एक पल्योपम की होती है। (एवं जहा नागकुमाराणं देवाणं देवीण य तहा जाव थणियकुमाराणं देवाणं देवीण य भाणियव्वं ।) जिस प्रकार नाग कुमार देव और देवियों की स्थिति वर्णन की गई है उसी प्रकार स्तनितकुमार देव और देवियों की स्थिति भी जानना चाहिये, अर्थात् जैसे नाग कुमारों की स्थिति वर्णन की गई है उसी प्रकार नव निकायों की भी स्थिति जाननी चाहिये।

भावार्थ—असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति याने न्यून से न्यून दश सहस्र वर्ष की होती है, और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक प्रतिपादन की गई है, किन्तु उनके देवियों की जघन्य तो पूर्ववत् ही है परन्तु उत्कृष्ट साढ़े-चार ४॥ पल्योपम की होती है। और नागकुमारों की जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट देश न्यून दो पल्योपम की होती है।

अथ पांच स्थावरों की स्थिति।

पुढवीकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, सुहुमपुढवीकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते ? गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, बादरपुढविकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, अपज्जत्तगबादरपुढविकाईयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, एवं सेसकाइयाणंपि पुच्छावयणं भाणियव्वं, आउकाइयाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं, सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हवि जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, बादरआउकाइयाणं जहा ओहियाणं, अपज्जत्तगबादरआउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगबादरआउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, तेउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं, सुहुमतेउकाइ-

१—सु० 'ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य ति[illegible] पुच्छा,' इत्यपि पाठः।

याणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हवि
जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,
बादरतेउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतो-
मुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं, अपज्जत्तगबादर-
तेउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणवि अन्तो-
मुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगबादरतेउ-
काइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्को-
सेणं तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, वाउकाइयाणं
पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं
तिण्णि वाससहस्साइं, सुहुमवाउकाइयाणं ओहियाणं
अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य तिण्हवि जहण्णेण वि अंतो-
मुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, बादरवाउकाइयाणं पुच्छा,
गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससह-
स्साइं, अपज्जत्तगबादरवाउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जह-
ण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जतगबादर-
वाउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं
उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अन्तोमुहुत्तूणाइं । वण-
स्सइकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अन्तो-
मुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं, सुहुमवणस्सइ-
काइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण य
तिण्हवि जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तो-
मुहुत्तं, बादरवणस्सइकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जह-
ण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं,
अपज्जत्तगबादरवणस्सइकाइयाणं पुच्छा, गोयमा !

जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, पज्जत्तगबादरवणस्सइकाइयाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अन्तोमुहुत्तूणाइं।

पदार्थ—(पुढवीकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ट्ठिई पन्नत्ते ?) हे भगवन् ! पृथिवी काय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं,) भो गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है, (सुहुमपुढवीकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ट्ठिई पन्नत्ते,) हे भगवन् ! सूक्ष्म-पृथिवीकाय के जीवों को स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि† अन्तोमुहुत्तं,) भो गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की प्रतिपादन की गई है, (बादरपुढवीकाइयाणं पुच्छा,) बादर (स्थूल) पृथ्वीकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष को होती है, (अपज्जत्तगबादरपुढवीकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त बादर पृथिवीकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है. (पज्जत्तगबादरपुढवीकाइयाणं पुच्छा,) पर्याप्त बादर पृथिवोकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट, अन्तर्मुहूर्त न्यून बाईस हजार वर्ष को होती है, क्योंकि अपर्य्याप्त काल को पृथक् कर दिया है, (एवं सेसकाइयाणं पि पुच्छावयणं भाणियव्वं,) इसी प्रकार शेष कायों के विषय में भी प्रश्नोत्तर जानने‡ चाहिये। (आउकाइयाणं जहण्णेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं,) अप्कायिकों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की होती है, (सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्ह वि जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,) तथा सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक, अपर्य्याप्त, और पर्य्याप्त इन तीनों की जघन्य स्थिति भी अन्तमु-

† 'अपि' शब्द समुच्चय वाचक है।

‡ अब सामान्य प्रकार से ही पृच्छा की जाती है, जैसे कि—(आउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! जलकायिकों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? इत्यादि—

हूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है, (बादरआउकाइयाणं जहा ओहियाणं) बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति जैसे प्रथम औधिक सूत्र में वर्णन की गई है उसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु (अपज्जत्तगबादरआउकाइयाणं जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,) अपर्य्याप्त बादरअप्काय के जीवों की स्थिति, जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है, (पज्जत्तगबादरआउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्य्याप्त बादरजलकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अन्तोमुहुत्तूणाइं,) भो गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून सात हजार वर्ष की होती है, अब अग्निकाय के विषय में कहते हैं—(तेउकाइआणं पुच्छा,) हे भगवन् ! अग्निकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदिआइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि दिनको होती है, तथा—(सुहुमतेकाइआणं ओहिआणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणं तिण्हवि जहण्णेणं विअंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,) किन्तु सूक्ष्म अग्निकाय के औधिक अपर्य्याप्त, और पर्य्याप्त अर्थात् उक्त तीनों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है, (बादरतेउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! बादर अग्निकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की है ? (गोयमा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णिराइंदिआइं.) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि दिन की होती है, (अपज्जत्तगबादरतेउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त अग्निकाय के जीवों स्थिति कितने काल को प्रतिपादन की है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,) भो गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त की ही प्रतिपादन की गई है, (पज्जत्तगबादरतेउकाइयाणं पुच्छा,) पर्य्याप्त बादर अग्निकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं.) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन रात्रि दिन की होती है (वाउकाइयाणं पुच्छा,) वायुकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं.) हे गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की होती है, (सुहुमवाउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणय तिण्हवि जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के औधिक अपर्य्याप्त, और पर्य्याप्त, इन तीनों की ही जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त्त की ही प्रतिपादन की गई है, (बादरवाउकाइयाणं पुच्छा,) बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की

होतो है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हज़ार वर्ष की होती है, (अपज्जत्तगबादरवाउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्याप्त बादर वायुकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट केवल अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति होती है, (पज्जत्तगबादरवाउकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्याप्त बादरवायु काय के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) भो गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूत्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त न्यून तोन हज़ार वष की होती है, (वणस्सइकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! बनस्पतिकाय के जीवों की स्थिति कितने काल को होती है? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हज़ार वष को होती है, और (सुहुमवणस्सइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणय तिण्हंवि जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) सूक्ष्मवनस्पतिकाय के औधिक, अपर्याप्त, और पर्याप्त इन तीनों की जघन्य और उत्कृष्ट, स्थिति केवल अतमुहूत्त की ही प्रतिपादन को गई है, तथा-(बादरवणस्सइकाइयाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं,) बादर बनस्पति काय के जीवों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हज़ार वर्ष की होती है, (अपज्जत्तगबादरवणस्सइकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्याप्त बादर बनस्पति काय के जीवोंकी स्थिति कितने काल की होती है ? गोयमा ! जहण्णेणावि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं,) भो गोतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्टसे भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है,(पज्जत्तगबादरवणस्सइकाइयाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्याप्त बादर बनस्पतिकाय के जीवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वास सहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) भो गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट से अन्तमुहूर्त न्यून दस हज़ार वर्ष तक की स्थिति प्रति पादन की गई है क्योंकि अपर्याप्त काल को पृथक् कर दिया गया है।

भावार्थ—पांच स्थावर सूक्ष्म, सभी अपर्याप्त, और औधिक इन सभी की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सिर्फ अंतर्मुहूर्त्त की है, लेकिन जो बादर पर्याप्त है उनके अपर्याप्त काल की स्थिति पृथक् करके शेष आयु निम्न लिखितानुसार जानना चाहिये—

अथ विकलेन्द्रियों की स्थिति

बेइंदियाणं भंते! केवइयं कालं ट्ठिई पन्नते? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, अपज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा? जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि अंतोमुहुत्तूणाइं। तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणपण्णासं राइंदियाणं, अपज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणपण्णासं राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। चउरिंदियाणं भंते! केवइयं कालं ट्ठिई पण्णत्ते? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा, अपज्जत्तगचउरिंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगचउरिंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणाइं।

पदार्थ—(बेइंदियाणं भंते! केवइयं कालं ट्ठिई पन्नत्ते?) हे भगवन्! द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने कालकी प्रति पादन की गई है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि,) भो गौतम! जघन्य से अंतमुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की होती है, (अपज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा,) हे भगवन्! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की की होती है? (गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अन्तोमुहुत्तं,) भो गौतम! जघन्य से भी अन्तमुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त

की होती है, (पज्जत्तगबेइंदियाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्य्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि अन्तो मुहुत्तूणाइं,) भो गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून बारह संवत्सर की होती है । (तेइंदियाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणपण्णासं राइंदियाणं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ४९ दिवस रात्रि की होती है, (अपज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा,) अपर्य्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अन्तोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है, (पज्जत्तगतेइंदियाणं पुच्छा,) पर्य्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणपण्णासं राइंदियाइं अन्तोमुहुत्तूणाइं,) भो गौतम! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून ४९ दिन रात्रि की होती है । (चउरिंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते ?) हे भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा,) हे गौतम ! जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट षट् मास की होती है, (अपज्जत्तगचउरिंदियाणंपुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्याप्त चतुरिंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा ! जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहु',) हे गौतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तगचउरिंदियाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्य्याप्त चतुरिंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं

(यह मेटर ८८ पेज के ऊपर का है, पाठक ध्यान पूर्वक पढ़ें)

पांच स्थावर	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
पृथ्वी काय	अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण	२२००० बावीसहज़ार वर्ष
अप् काय	,,	७ सात हज़ार वर्ष
तेजस्काय	,,	३ तीन दिन रात्रि
वायुकाय	,,	३ तीन हज़ार वर्ष
वनस्पतिकाय	,,	१० हज़ार वर्ष

यह सभी बादर पांच स्थावरों की स्थिति है, किन्तु सूक्ष्म पर्याप्त, अपर्याप्त, और औधिक इन तीनों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सिर्फ अंतर्मुहूर्त्त ही की होती है । अब इसके आगे विकलेन्द्रियों की स्थिति का वर्णन किया जाता है—

छम्मासा अन्तोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त न्यून षट् मास की होती है, किन्तु न्यून से अधिक और उत्कृष्ट से न्यून सभी मध्यम स्थिति जानना चाहिये।

भावार्थ—तीनों विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की जघन्य स्थिति केवल अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ही होती है, तथा पर्याप्त जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति निम्न लिखितानुसार देखिये—

विकलेन्द्रिय जीव	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
द्वीन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त प्रमाण	द्वादश वर्ष प्रमाण
त्रीन्द्रिय	,,	४९ दिन रात्रि
चतुरिन्द्रिय	,,	षट् मास ,,

उपरोक्त सभी पर्याप्त जीवों की स्थिति वर्णन की गई है। अब तिर्यक् पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति प्रतिपादन करते हैं—

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की स्थिति।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ते ? गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिरिण पलिओवमाइं, जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं० ? गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, समुच्छिमजलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, अपज्जत्तयसमुच्छिमजलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहएणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, पज्जत्तयसमुच्छिमजलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, अपज्जत्तय-

गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेण वि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, पज्जत्तग-गब्भवक्कंतियजलयर पंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अन्तोमुहुत्तूणाइं, चउप्पयथलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, संमुच्छिम-चउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतो-मुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं, अपज्ज-त्तयसमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, पज्जत्तयसमुच्छिमचउप्पयथलयर पंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीइं वाससह-स्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयर-पंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को-सेणं तिण्णि पलिओवमाइं, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिय चउ-प्पयथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणवि अन्तो मुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगगब्भवक्कं-तियचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तू-णाइं, उरपरिसप्पथलयर पंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जह-ण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, संमुच्छिम-उरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्साइं, अपज्ज त्तयसमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा !

जहएणेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तयसमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्साइं अन्तोमुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणवि अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं, भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, संमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं, अपज्जत्तगसमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बायालीसं वास सहस्साइं अंतो मुहुत्तूणाइं, गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपचिंदिय जाव गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव पुच्छा गोयमा ! जहएणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव गोयमा !

जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतो-मुहुत्तूणाइं ।

पदार्थ—(पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं० ?) हे भगवन् ! पंचेंद्रिय तिर्य्यक् योनि के जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिरिणपलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है, (जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई परणत्ता ?) हे भगवन् ! पंचेंद्रिय जलचर* तिर्य्यक् योनि के जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व क्रोडवर्ष की होती है, (संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! † सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेंद्रिय तिर्य्यक् योनिकों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व क्रोडवर्ष की होती है, (अपज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति केवल अंतर्मुहूर्त्त की ही होती है, (पज्जत्तयसंमुच्छिमजलयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्य्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून पूर्व क्रोडवर्ष की होती है, क्योंकि अपर्य्याप्त काल पृथक् कर दिया गया है। (गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! गर्भ से उत्पन्न होने वाले जलचर पंचेंद्रिय योनिकों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य से अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्व क्रोडवर्ष की होती है, (अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलचरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त गर्भ से पैदा होने वाले पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य भी अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अंतर्मुहूर्त्त की होती है। (पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! पर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले जलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहएणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त

* पानी के अन्दर चलने वाले । † वात पित्तादि या विना गर्भ से उत्पन्न होने वाले ।

की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त्त न्यून पूर्व क्रोडवर्ष की होती है। अब चतुष्पद के विषय में वर्णन करते हैं—

(चउप्पयथलयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन्! चार पैर वाले स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं) हे गौतम! *जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। (संमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदियजाव†) हे भगवन्! समूर्च्छिम चतुष्पद वाले स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं,) हे गौतम! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ८४ चौरासी हजार वर्ष की होती है, (अपज्जत्तगसंमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! अपर्य्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पद वाले स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम! जघन्य से भी अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अंतर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तगसंमुच्छिम चउप्पय-थलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! पर्य्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पद वाले स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून ८४ चौरासी हजार वर्ष की होती है। अब गर्भज विषय में कहते हैं—

(गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! गर्भ से उत्पन्न होने वाले चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं,) हे गौतम! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। (अपज्जत्त-गगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचिंदिय जाव,) हे भगवन्! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम! जघन्य से भी अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अंतर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तगगब्भवक्कं-तियथलयरपंचिंदिय जाव,) हे भगवन्! पर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले चतुष्पद स्थल-

---

* यह देवकुरु उत्तरकुर्वादि अकर्मभूमि के क्षेत्रों की अपेक्षा से है।

† 'जाव' शब्द 'यावत्' शब्द का वाची है जो कि सभी प्रश्नों का बोधक है।

चर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतो-मुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंत-र्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून तीन पल्योपम की होती है, (उरपरिसप्पथलयर-पंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन्! *उरपरिसर्प्प स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व क्रोडवर्ष की होती है। (संमुच्छिमउरपरिसप्पथलयर पंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थल० पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ५३ हजार वर्ष की होती है ? (अपज्जत्तयसंमुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव,) हे भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य से भी अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी अंतर्मुहूर्त्त की ही होती है, (पज्जत्तयसंमुच्छिमउरपरिसप्पथलयर-पंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को-सेणं तेवन्नं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून ५३ हजार वर्ष की होती है, (गब्भवक्कंतियउरपरिसप्प-थलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! गर्भ से उत्पन्न होने वाले उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट क्रोड पूर्व वर्ष की होती है, (अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, हे गौतम! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी सिर्फ अन्तर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तयगब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले उरपरि सर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवोंकी स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून क्रोड पूर्व वर्ष की होती है, (भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदिय जाव पुच्छा) हे भगवन् ! भुज परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल

---

* पेट से चलने वाले।

की प्रतिपादन की है (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट क्रोड पूर्व वर्ष की होती है, (संमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ४२ हजार वर्ष की होती है, (अपज्जत्तयसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव,) हे भगवन्! अपर्य्याप्त संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति भी अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तगसंमुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! पर्य्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरि सर्प स्थलचर पचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून ४२ हजार वर्ष की होती है, (गब्भवक्कंतिय भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! गर्भ से उत्पन्न होने वाले भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व क्रोड वर्ष की होती है, (अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अंतर्मुहूर्त्त की होती है, (पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् पर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून क्रोड पूर्व वर्ष की होती है, किन्तु सत्तर लाख क्रोड वर्ष तथा छप्पन हजार क्रोड वर्षों के एकत्व करने से एक पूर्व होता है, इस गणना से पूर्व क्रोड वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

भावार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्य्यक् योनि के जीवों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है, इसी को औघिक सूत्र कहते हैं। किन्तु सभी प्रकार के अपर्य्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति केवल अंतर्मुहूर्त्त की ही होती है। अब जलचर जीवों की स्थिति निम्नलिखितानुसार जानना चाहिये—

समूर्च्छिम जलचर	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
समूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय	अंतर्मुहूर्त्त	*पूर्व क्रोड वर्ष
गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय	,,	,,

स्थलचर जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति निम्न प्रकार से है—

चतुष्पद वाले स्थलचरों की	जघन्य	उत्कृष्ट
चार पैर वाले पशुओं की	अंतर्मुहूर्त्त	तीन पल्योपम
समूर्च्छिम चतुष्पद वालों की	अंतर्मुहूर्त्त	८४ सहस्रवर्षोंकी
गर्भज चतुष्पद वालों की	अंतर्मुहूर्त्त	तीन पल्योपम
उरपरिसर्पों की समुच्चय	अंतर्मुहूर्त्त	पूर्व क्रोड वर्ष
समूर्च्छिम उरपरिसर्पों की	अंतर्मुहूर्त्त	५३ सहस्रवर्ष
गर्भज उरपरिसर्प	अंतर्मुहूर्त्त	पूर्व क्रोड वर्ष
भुजपरिसर्प	अंतर्मुहूर्त्त	पूर्व क्रोड वर्ष
समूर्च्छिम भुजपरिसर्प	अंतर्मुहूर्त्त	४२ सहस्र वर्ष
गर्भज ,	अंतर्मुहूर्त्त	पूर्व क्रोड वर्ष

ये सभी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिएँ हैं, किन्तु विशेष इतना ही है कि सभी तरह केअपर्य्याप्तों की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त ही की होती है, तथा जघन्य काल से अधिक और उत्कृष्ट काल से न्यून ये सभी मध्यम स्थिति कहलाती है। अब इसके अनंतर खेचरों की स्थिति का वर्णन करते हैं।

खेचरों की स्थिति।

खहयरपंचिंदिय जाव, गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो, संमुच्छिमखहयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं, अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचिंदिय पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तयसंमु-

*— उत्कृष्ट स्थिति में अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्त काल न्यून कर देना चाहिये।

च्छिमखहयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहरणेणं अंतो-
मुहुत्तं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदिय जाव गोयमा ! जहरणेणं
अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो,
अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदिय जाव गोयमा !
जहरणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तग-
गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते !
केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहरणेणं अंतो-
मुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतो-
मुहुत्तूणो । एत्थ एएसि णं संगहणिगाहाओ भवन्ति,
तंजहा—

संमुच्छिमपुव्वकोडी चउरासीइं भवे सहस्साइं ।
तेवरणा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥ १ ॥
गब्भंमि पुव्वकोडी तिरिण य पलिओवमाइं परमाऊ ।
उरगभुअपुव्वकोडी पलिओवमा संखभागो अ ॥२॥

पदार्थ—(खहयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! आकाश में उड़ने वाले पंचेन्द्रिय जीवोंकी स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहरणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यात भाग प्रमाण होती है, (संमुच्छिमखहयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन् ! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहरणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट ७२ हज़ार वर्ष की होती है. (अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचिंदिय पुच्छा,) हे भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहरणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अंतर्मुहूर्त्त ही की होती है, (पज्जत्तग-

संमुच्छिमखहयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! पर्य्याप्त समूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं अन्तोमुहुत्तूणाइं,) हे भगवन्! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून ७२ हजार वर्ष की होती है, (*गब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! गर्भ से उत्पन्न होने वाले खेचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो,) हे गौतम! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यात भाग प्रमाण होती है, (अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियखहयरपंचिंदिय जाव) हे भगवन्! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले खेचर पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की होती है? (गोयमा! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है. (पज्जत्तगगब्भवक्कंतिय-खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?) हे भगवन्! पर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले खेचर पंचेन्द्रिय जीवोंकी स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है? (गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो,) हे गौतम! जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त न्यून एक पल्योपम के असँख्यात भाग प्रमाण होती है। (एत्थ एएसि णं संगहणि गाहाओ भवन्ति, जहा–) इस समास के अँतर्गत इन सर्व अधिकारों की संग्रहणी गाथाएं भी होती हैं, अर्थात् सब अधिकारों को संक्षेप से वर्णन करने वाली गाथाओं को संग्रहणी गाथा कहते हैं।

संमुच्छिमपुव्वकोडी चउरासीइं भवे सहस्साइं।
तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥ १ ॥

जलचर समूर्च्छिम जीवों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्व क्रोड वर्ष की, स्थलचर चतुष्पद समूर्च्छिमों की ८४ हजार वर्ष की, तथा समूर्च्छिम उरपरिसर्प अर्थात् रंग कर चलने वालों को ५३ हज़ार वर्ष की और समूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की ३२ हजार वर्ष की, इसी तरह समूर्च्छिम पक्षियों की ७२ हज़ार वर्ष की स्थिति होती है। इस संग्रहणी गाथा में समूर्च्छिमों की स्थिति वर्णन की गई है, अब दूसरी गाथा में गर्भ से उत्पन्न होने वाले जीवों की स्थिति वर्णन करते हैं।

गब्भंमि पुव्वकोडी तिण्णिय पलिओवमाइं परमाऊ।
उरगभुअगपुव्वकोडी पलिओवमासंखभागो अ ॥ २ ॥

गर्भ से उत्पन्न होने वाले जलचर पंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्व क्रोड वर्ष की स्थलचर चतुष्पद वाले गर्भज तिर्य्यंचों की उत्कृष्ट तीन पल्योपम की,

---

* ये सभी छप्पन अन्तर्द्वीपों की अपेक्षा से है।

उरपरि सर्प और भुजपरिसर्पों की उत्कृष्ट क्रोड २ पूर्व वर्ष की और पक्षियों की एक पल्योपम के असंख्यात भाग प्रमाण होती है ॥ २ ॥ इन को संग्रहणी गाथा कहते हैं, अर्थात् संग्रह करके सर्व आयु वर्णन की गई है।

भावार्थ--आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्त की होती है लेकिन अंतर्द्वीपों की अपेक्षा से उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम के असंख्यातभाग प्रमाण होती है, तथा सर्व प्रकार के अपर्याप्तों की आयु केवल अंतर्मुहूर्त की ही प्रति पादन की गई है। समूर्च्छिम और गर्भज पक्षियों की स्थिति निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

	जघन्यस्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
संमूर्च्छिम पक्षियों की		
,,	अन्तर्मुहूर्त्त	बहत्तर हज़ार वर्ष
गर्भज पक्षियों की	अन्तर्मुहूर्त्त	पल्यपमो का असंख्यात०

इनकी उत्कृष्ट आयु ग्रहण करते वख्त अपर्य्याप्त काल को पृथक् कर देना चाहिये। तथा उक्त संग्रहणी गाथाओं का सार संक्षेप से यह है कि समूर्च्छिम जलचरों की उत्कृष्ट आयु पूर्व क्रोड वर्ष, स्थलचर चार पैर वाले पशुओं की चौरासी हज़ार वर्ष, उरपरिसर्पों की तिरपन हज़ार वर्ष की, भुजपरिसर्प की बयालीस हज़ार वर्ष और पक्षियों की बहत्तर हज़ार वर्ष की होती है। १॥ तथा गर्भ से उत्पन्न होने वाले जलचरों की पूर्व क्रोड वर्ष, स्थलचरों की तीन पल्योपम, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्पों की पूर्व क्रोड वर्ष और पक्षियों की पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण उत्कृष्ट आयु होती है ॥२॥ इन्हीं को संग्रणी गाथाएं कहते हैं। अपितु जघन्य से अधिक, उत्कृष्ट से न्यून आयु को मध्यम आयु जानना चाहिये। इसके अनंतर मनुष्य और व्यंतरों की स्थिति प्रतिपादन करते हैं—

मनुष्य और व्यंतरों की स्थिति ।

मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पगणत्ता ? गोयमा ! जहरणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिरिण पलिओवमाइं, संमुच्छिममणुस्साणं जाव गोयमा ! जहरणेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, गब्भवक्कंतिय-

मणुस्साणं जाव गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, *अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं ! भंते केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

वाणमंतराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमं, वाणमंतरीणं देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं ।

पदार्थ—(मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! मनुष्यों की स्थिति कितने कालकी प्रति पादनकी गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतमुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन *पल्योपम की होती है, इसी को औधिक सूत्र कहते हैं। (संमुच्छिम मणुस्साणं जाव) हे भगवन् ! संमूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से भी केवल अन्तर्मुहूर्त्त ही की होती है, (गब्भवक्कंतियमणुस्साणं जाव) हे भगवन् ! गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की स्थिति कितने काल की वर्णन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती, है (अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! अपर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की स्थिति कितने कालकी प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणवि-अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी केवल अंतर्मुहूर्त्त ही की होती है, (पज्जत्तगगब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई

---

* यह स्थिति अकर्म्मक भूमि के मनुष्यों की अपेक्षा से है।

पएणत्ता ?) हे भगवन् पर्य्याप्त गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहराणेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिरिण पलिओ वमाइं अंतो मुहुत्तूणाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त न्यून तीन पल्योपम की होती है। अब व्यंतर देवों की स्थिति कहते हैं—

(वाणमंतराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पएणत्ता ?) हे भगवन् ! वान व्यंतर देवों की स्थिति कितने काल को प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहराणेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, (वाणमंतरीणं देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पएणत्ता ?) हे भगवन् ! व्यंतरिकों के देवियों को स्थिति कितने कालकी प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहराणेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं,) हे गौतम ! *जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष की और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम को होती है।

भावार्थ—मनुष्यों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। इसी को औघिक सूत्र कहते हैं, तथा सभी प्रकार के अपर्य्याप्तों की स्थिति केवल अंतर्मुहूर्त्त ही की होती है, शेष निम्न लिखितानुसार जान लीजिये—

मनुष्य	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
सम्मूर्छिम मनुष्यों की	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त्त
गर्भज मनुष्यों की	अंतर्मुहूर्त	तीन पल्योपम

इसके अतिरिक्त मध्यम स्थिति जाननी चाहिये तथा व्यंतरों की जघन्य-स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, और व्यंतरादिक देवियों की जघन्य स्थिति तो पूर्ववत् ही है, परन्तु उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की होती है, किन्तु जघन्य से अधिक और उत्कृष्टसे न्यून सर्व मध्यम स्थिति जाननी चाहिये। अब ज्योतिषी देवों की स्थिति प्रतिपादन की जाती है—

ज्योतिष् देवों की स्थिति।

जोइसिआणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पएणत्ता?

*सूत्र के लाघवार्थ व्यन्तरों के अपर्य्याप्तादि अवस्था का काल ग्रहण नहीं किया गया, क्योंकि इस में वे काल ही नह करते, इस लिये उनके प्रश्नोत्तर नहीं किये गये। तो भी अपर्य्याप्त काल अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही जानना चाहिये।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं, जोइसियदेवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंद विमाणाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयहस्समब्भहियं चंदविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, सूरविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं, सूरविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं, गहविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं, गहविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा ! जहण्णेणं चउभाग पलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणाणं भंते। देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ! गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं साइरेगं

चउभागपलिओवमं, ताराविमाणाणं भंते ! देवाणं केव-
इयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं
अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं
ताराविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं साइ-
रेगं अट्ठभागपलिओवमं ।

पदार्थ—(जोइसियाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! ज्योतिषी देवोंकी स्थिति कितने कालकी प्रतिपादन कीगई है? (गोयमा! जहण्णेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं) हेगौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक और (उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं,) उत्कृष्टसे एक पल्योपम और एक लाख वर्ष अधिक होती है (जोइसियदेवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ?) हे भवगन् ! ज्योतिषी देवियों को स्थिति कितने काल की प्रदिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्समब्भहियं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट पचास हज़ार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की होती है, इसी को औधिक सूत्र कहते हैं, (चंदविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ?) हे भगवन् चन्द्र विमानों के देवो की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन को गई है ? गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है, (चंदविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ?) हे भगवन् ! चंद्र विमानों के देवियों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम तथा पचास हज़ार वर्ष अधिक होती है, (सूरविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! सूर्य विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट एक हज़ार वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है, (सूरविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ?) हे भगवन् ! सूर्य्य विमनों के देवियों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन को गई हैं ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का

चतुर्थ भाग और (उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं,) उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की होती है, (गहविमाणाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?, हे भगवन् ग्रह विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, (गहविमाणाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! ग्रह विमानों के देवियों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की होती है, (णक्खत्तविमाणाणं भंते ! देवाणं ०) हे भगवन् ! नक्षत्र विमानों के देवों की स्थिति कितने काल प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभाग-पलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की होती है. (णक्खत्तविमाणाणं भंते ! देवीणं) हे भगवन् ! नक्षत्र विमानों के देवियों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं साइरेगं चउभागपलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के चौथे भाग से कुछ अधिक होती है, (ताराविमाणाणं भंते ! देवाणं) हे भगवन् ! तारा विमानों के देवोंकी स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभाग-पलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक और उत्कृष्ट पल्योपम का चतुर्थांश होती है, (ताराविमाणाणं देवीणं भंते !) हे भगवन् ! तारा विमानों के देवियों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभाग-पलिओवमं उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवां हिस्सा और * उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक होती है।

भावार्थ—ज्योतिषी देवों की जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवां भाग से अधिक और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है, इसी को औघिक सूत्र कहते हैं। तथा-ज्योतिषी देवोंके पांच भेद हैं-चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा इनकी निम्न लिखितानुसार जघन्य और उत्कृष्ट आयु जानना चाहिये।

ज्योतिषी	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
१ चंद्र विमानों के देवों की	पल्योपम का च०	एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की

* जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के अतिरिक्त मध्यम स्थिति जानना चाहिये।

२ चंद्र के देवियों की	,,	५० हज़ार	,,
३ सूर्य विमानोंके देवोंकी	,,	१००० हज़ार वर्ष अधिक	
४ सूर्य विमानोंके देवियोंकी	,,	५०० वर्ष अधिक	,,
५ ग्रह विमानोंके देवोंकी	,,	एक पल्य	
६ ग्रह विमानोंके देवियों की	,,	अर्द्ध पल्य की	
७ नक्षत्र विमानों के देवोंकी	,,	,,	
८ नक्षत्र विमानों के देवियों की	,,	पल्य के च०से कुछ अधिक	

९ तारा विमानोंके देवोंकी पल्यके आ० से कुछ अधिक चतुर्थांश

१० तारा० देवियों की पल्य का आ० भा० आठवें भागसे कुछ अधिक

यह सभी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति है। किन्तु जो उत्कृष्ट से न्यून और जघन्य से अधिक हो उसे मध्यम स्थिति जानना चाहिये। अब ज्योतिषी देवों के अनन्तर चौवीसवें दण्डक की स्थिति वर्णन करते हैं अर्थात् वैमानिकादि देवों की स्थिति का स्वरूप प्रतिपादन करते हैं —

वैमानिकादि देवों की स्थिति।

वेमाणियाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पराणत्ता? गोयमा! जहराणेणं पलिओवमं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, वेमाणियाणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पराणत्ता? गोयमा! जहराणेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपराणं पलिओवमाइं, सोहम्मेणं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पराणत्ता? गोयमा! जहराणेणं पलिओवमं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं, सोहम्मेणं भंते! कप्पे परिग्गहिया देवीणं जाव गोयमा! जहराणेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं, सोहम्मेणं कप्पे अपरिग्गहियादेवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पराणत्ता? गोयमा! जहराणेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पराणासं पलिओवमं, ईसाणेणं भंते! कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा! जहराणेणं साइरेगं पलिओवमं

उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, ईसाणेणं भंते ! कप्पे परिग्गहियादेवीणं जाव गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं नव पलिओवमाइं, अपरिग्गहिया-देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पं० ? गोयमा ! जह-ण्णेणं साइरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं, सणंकुमारेणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्त साग-रोवमाइं, माहिंदेणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं, बंभलोएणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं उक्कोसेणं दस सा-गरोवमाइं, एवं कप्पे२ केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! एवं भाणियव्वं-लंतए जहण्णेणं दस सागरोवमाइं उक्को-सेणं चउदस सागरोवमाइं, महासुक्के जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं, सहस्सारे जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरो-वमाइं, आणए जहण्णेणं अट्ठारससागरोवमाइं उक्को-सेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, पाणए जहण्णेणं एगूण-वीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं, आरणे जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं एक्कवीसं साग-रोवमाइं, अच्चुए जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्ज-विमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं

तीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पं० ? गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं, हेट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं * पणवीसं सागरोवमाइं, × मज्झिमहेट्ठिगेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं, मज्झिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, मज्झिमउवरिमगेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उवरिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उवरिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं, उवरिमउवरिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, विजयवेजयंतजयंत अपराजितविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वट्ठसिद्धे णं भंते !

* 'पंच०' पाठान्तरम्. † मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणेसु केव०' प्र० ।

महाविमाणे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, से तं सुहुमे अद्धापलिओवमे से तं अद्धापलिओवमे । सू० १४२

पदार्थ—(वेमाणिया णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ते ?) हे भगवन् ! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है, (वेमाणिया णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने कालकी प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं,) हे गौतम जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट ५५ पल्योपम की होती है । * अब अनुक्रम से कल्प और कल्पातीत देवों की स्थिति का वर्णन किया जाता है । जैसे कि—

(सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं के० ?) हे भगवन् ! सौधर्म देव लोकके देवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति एक पल्योपमकी और (उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं,) उत्कृष्ट दो सागरोपम की होती है, (सोहम्मेणं भंते ! कप्पे परिग्गहियादेवीणं जाव) हे भगवन् ! सौधर्म देव लोकके परिगृहीत देवियोंकी स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की होती है, (सोहम्मे णं कप्पे अपरिग्गहिय देवीणं भंते ! केवइयं ?) हे भगवन् ! सौधर्म कल्प के अपरिगृहीत देवियों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमं.) हे गौतम ! जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट ५० पल्योपम की होती है (ईसाणेणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ईशान कल्प के देवों की स्थिति कितने काल की प्रति पादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं) हेगौतम ! जघन्य स्थिति एक एक पल्योपमसे कुछ अधिक और (उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं,) उत्कृष्ट दो सागरोपम से कुछ अधिक होती है, (ईसाणेणं भंते ! कप्पे परिग्गहियादेवीणं जाव) हे भगवन् ! ईशान कल्पके परिगृहीत देवियोंकी स्थिति कितने कालकी होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं) हेगौतम ! जन्धयसे एक पल्योपमसे कुछ अधिक और (उक्कोसेणं नव पलिओवमं,) उत्कृष्ट नव पल्योपमकी होती है, (अपरिग्गहिया देवीणं भंते ! के० ?) हे भगवन् ! ईशान

---

* इन दोनों को [illegible]

कल्प के अपरिगृहीत देवियों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं) हे गौतम् जघन्य स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक और (उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं,) उत्कृष्ट ५५ पल्योपम की होती है, (सणंकुमारेणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् सनत्कुमार कल्प के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दो सागरोपमकी और (उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं) उत्कृष्ट सात सागरोपकी होती है, (माहिंदेणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् माहेन्द्र कल्प के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति दो सागरोपमसे कुछ अधिक और उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं,) उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक होती है, (बंभलोएणं भंते ! कप्पे देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! ब्रह्म कल्प के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति सात सागरोपम की और (उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं,) उत्कृष्ट दस सागरोपम की होती है, (एवं कप्पे कप्पे केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! एवं भाणियव्वं,) इसी प्रकार प्रत्येक कल्प की कितने काल की स्थिति प्रतिपादन की गई है ? हे गौतम् ! इस * प्रकार कहना—जानना चाहिये— (लंतए जहण्णेणं दस सागरोवमाइं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं,) लान्तक विमान के देवोंकी जघन्य स्थिति दश सागरोपम की और उत्कृष्ट से चतुर्दश सागरोपम की होती है, तथा (महासुक्के जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं,) महा शुक्र देवलोक के देवा की स्थिति जघन्य से १४ सागरोपम की और उत्कृष्ट १७ सागरोपम की होती है, (सहस्सारे जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं,) सहस्रार देव लोक के देवों को जघन्य स्थिति १७ सागरोपम की और उत्कृष्ट से १८ सागरोपम की होती है, तथा (आणए जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं,) आनत देव लोक के देवों को जघन्य स्थिति १८ सागरोपम की और उत्कृष्ट १९ सागरोपम की होती है, (पाणए जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं,) प्राणत देव लोक की जघन्य स्थिति १९ सागरोपम की और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की होती है, (आरणे जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं) आरण्य देव लोक की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट २१ सागरोपम की होती है, (अच्चुए जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं,) अच्युत कल्प के देवों को जघन्य स्थिति २१ सागरो-

* इत्यादि प्रश्नोत्तर पूर्ववत् ही जानना चाहिये, क्योंकि अब सामान्य रूपसे ही वर्णन किया जाता है।

पम की और उत्कृष्ट २२ सागरोपम की होती है, ये सभी बारह देव लोक के देवों की स्थिति जानना चाहिये। *अब नव ग्रैवेयक देवों में से पहिले नीचे के त्रिक की स्थिति वर्णन करते हैं।

†(हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्ज विमाणेसुणं भंते ! देवाणं केवइयं कालंठिई पण्णत्ते ?) हे भगवन् ! नीचे के त्रिक के नीचे के ग्रैवेयक विमानों के देवों को स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २२ सागरोपम को और उत्कृष्ट से २३ सागरोपम की होती है, (हेट्ठिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! नीचे के मध्यम ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २३ सागरोपम की और उत्कृष्ट से २४ सागरोपम की होती है, (हेट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणेसुणं भंते ! देवाणं पुच्छा,) नीचे के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २४ सागरोपम की और उत्कृष्ट २५ सागरोपम की होती है, (मज्झिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसुणं भंते ! देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! मध्यम के नीचे वाले विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २५ सागरोपम की और उत्कृष्ट २६ सागरोपम की होती है, (मज्झिममज्झिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! मध्यम के मध्यम ग्रैवेयक विमनों के देवोंकी स्थिति कितने काल होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २६ सागरोपम की और उत्कृष्ट २७ सागरोपम की होती है, (मज्झिमउवरिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा, हे भगवन् मध्यम के ऊपर वाले ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २७ सागरोपम की और उत्कृष्ट से २८ सागरोपम की होती है, (उवरिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! ऊपर

*— ग्रैवेयक विमानोंके तीनत्रिक हैं, जिनमें प्रथम के त्रिक में १११ विमान, द्वितीय में १०७ और तृतीय त्रिकमें १०० हैं, इस लिये प्रथम त्रिक का नाम नीचे का त्रिक दूसरे का मध्यम त्रिक और तीसरे का ऊपरला त्रिक है।

वाले नीचे के ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहरणेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम !, जघन्य स्थिति २८ सागरोपम की और उत्कृष्ट से २९ सागरोपम की होती है, (उवरिममज्झिम-गेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ! ऊपर वाले मध्यम के ग्रैवेयक विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? (गोयमा ! जहरणेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! जघन्य स्थिति २९ सागरोपम की और उत्कृष्ट ३० सागरोपम की होती है, (उवरिमउवरिम गेवेज्जविमाणेसु णं भंते ! देवाणं पुच्छा,) हे भगवन् ऊपर वाले ग्रैवेयक विमानों के देवोंको स्थिति कितने कालको होती है ?(गोयमा ! जहरणेणं तीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं.) हे गौतम ! जघन्य स्थिति तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट ३१ सागरोपम की होती है । अब अनुत्तर विमानों के विषय में कहते हैं–

(विजयवेजयन्तजयन्तअपराजितविमाणेसु णं भंते ! देवाणं केवइ: कालं ठिई पएणत्ता ?) हे भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयंत और अ राजित विमानों के देवों की स्थिति कितने काल को प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! जहरणेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं,) हे गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति ३१ सागरोपम की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है । सव्वट्ठसिद्धे णं भंते ! महाविमाणे देवाणं केवइयं कालं ठिई पएणत्ता ?) हेभगवन् ! सर्वार्थ सिद्ध महाविमान के देवोंकी स्थिति कितने काल की प्रतिपादन की गई है ? (गोयमा ! अजहरणमणुउक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।) हे गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति केवल तेतीस सागरोपम की होती है क्योंकि उक्त विमानोंमें मध्यम स्थिति नहीं होतो । (सेतं सुहुमे अद्धापलिओवमे, सेत्तं अद्धापलिओवमे) इस लिये इसी को ही सूक्ष्म अद्धा पल्योपम और इसी को अद्धापल्योपम कहते है ।

(सू० १४२)

भावार्थ—वैमानिक देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम तक होती है, तथा उनके देवियों की जघन्य तो एक पल्य की और उत्कृष्ट ५५ सागरोपम की होती है । किन्तु दूसरे कल्प से ऊपर देवियें उत्पन्न नहीं होती. इस लिये दूसरे कल्प तक देवियों की स्थिति वर्णन की गई है, इनके दो भेद हैं, परिगृहीत और अपरिगृहीत । जो परिगृहीत प्रथम देवलोक में हैं उनकी जघन्य स्थिति एक पल्य की और उत्कृष्ट सात पल्य की, तथा अप-रगृहीतों की जघन्य स्थिति एक पल्य की और उत्कृष्ट ५० पल्य की होती है ।

द्वितीय देवलोक के परिगृहीत देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक और उत्कृष्ट से ९ पल्य की, अपरिगृहीतों की जघन्य स्थिति तो प्राग्वत् ही है लेकिन उत्कृष्ट ५५ पल्य की होती है। इन वैमानिक देवों के २६ लोक हैं, जिनमें बारह देव लोक तो कल्प संज्ञक हैं। इन सभी की स्थिति सरल जानने के वास्ते नीचे कोष्टक भी दिया गया है—

वैमानिकादि	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
१ सौधर्म देव लोक	१ पल्य	२ सागर
२ ईशान	१ पल्य से कुछ अधिक	२सागरसेकुछअधिक
३ सनत्कुमार	२ सागर	७ सागर
४ माहेन्द्र देव लोक	२ सागर से कुछ अधिक	७सागरसेकुछअधिक
५ ब्रह्म	७ सागर	१० सागर
६ लान्तक ,,	१० ,,	१४ ,,
७ महाशुक्र के देवों की	१४ ,,	१७ ,,
८ सहस्रार ,,	१७ ,,	१८ ,,
९ आनत ,,	१८ ,,	१९ ,,
१० प्राणत ,,	१९ ,,	२० ,,
११ आरण्य ,,	२० ,,	२१ ,,
१२ अच्युत ,,	२१ ,,	२२ ,,
१३ भद्र ,,	२२ ,,	२३ ,,
१४ सुभद्र ,,	२३ ,,	२४ ,,
१५ सुजात ,,	२४ ,,	२५ ,,
१६ सौमनस् ,,	२५ ,,	२६ ,,
१७ प्रियदर्शन	२६ ,,	२७ ,,
१८ सुदर्शन ,,	२७ ,,	२८ ,,
१९ अमोह ,,	२८ ,,	२९ ,,
२० सुप्रति ,,	२९ ,,	३० ,,
२१ यशोधर ,,	३० ,,	३१ ,,
२२ विजय ,,	३१ ,,	३३ ,,
२३ वेजयंत ,,	३१ ,,	३३ ,,

२५ अपराजित देवों की ३१ „ ३२ „
२६ सर्वार्थ सिद्ध देवों की ३३ „ ३३ „

परन्तु सर्वार्थ सिद्ध विमान के देवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति केवल ३३ सागर की होती है। अतः इसीको सूक्ष्म अद्धा पल्योपम अथवा अद्धा पल्योपम जानना चाहिये। (सू० १४२) अब इसके पश्चात् क्षेत्र पल्योपम के प्रमाण की व्याख्या की जाती है—

क्षेत्रपल्योपम का प्रमाण।

से किं तं खेत्तपलिओवमे ? २ दुविहे पएणत्ते, तंजहा-सुहुमे य ववहारिए य, तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से ववहारिए से जहानामए पल्ले सिया जोयणं आयाम-विक्खम्भेणं जोयणं उव्वेहेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खे-वेणं, से णं पल्ले एगाहियबेआहियतेआहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना, तओ णं समए २ एगमेगं आगास-पएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव निट्ठि-ए भवइ से तं ववहारिए खेत्तपलिओवमे।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दस गुणिआ।
तं ववहारिअस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं।१।

एएहिं ववहारिएहिं खेत्तपलिओमवसागरोवमेहिं किं पओअणं ? एएहिं ववहारिएहिं खेत्तपलिओवमसागरोव-मेहिं नत्थि किंचिप्पओअणं, केवलं पएणवणा ❋ किज्जइ, से तं ववहारिए खेत्तपलिओवमे।

से किं तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे ? २ से जहाणामए पल्ले सिया जोयणं आयामविक्खंभेणं जाव परिक्खेवेणं से णं पल्ले एगाहिअबेआहियतेआहिअ जाव भरिए वालग्ग-कोडीणं, तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिज्जाइं खंडाइं कज्जइ तेणं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा, ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छि-ज्जा, जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना वा अणाफुन्ना वा तओ णं समए २ एगमेगं आगा-सपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव णिट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे। तत्थ णं चोअ-ए पण्णवगं एवं वयासी-अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासप-एसा जेणं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा ? हंता अत्थि, जहा को दिट्ठंतो ? से जहानामए कोट्ठए सिआ कोहंडाणं भरिए तत्थ णं माउलिंगा पक्खित्ता तेऽविमाया, तत्थ णं बिल्ला पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं आमलगा पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं बअरा पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं चणगा पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं मुग्गा पक्खित्ता तेऽवि माया, तत्थ णं सरिसवा पक्खित्ता तेऽवि माया तत्थ णं गंगावालूआ पक्खित्ता सावि माया, * एवामेव एएणं दिट्ठं-तेणं अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जेणं तेहिं वाल-ग्गेहिं अणाफुण्णा।

---

* 'एवमेव' प्र०।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दस गुणिश्रा
तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ॥१॥
एएहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिश्रोवमसागरोवमेहिं
किं पत्रोश्रणं ? एएहिं सुहुमपलिश्रोवमसागरो-
वमेहिं दिट्ठिवाए दव्वा मविज्जांति। (सू० १४२)

पदार्थ—(से किं तं खेत्तपलिश्रोवमे ?) हे भगवन् ! क्षेत्रपल्योपम किसको कहते हैं ? (खेत्तपलिश्रोवमे दुविहे पएणत्ते तंजहा-) भो शिष्य ! क्षेत्रपल्योपम के दो भेद हैं, जैसे कि (सुहुमेय ववहारिए श्र,) सूक्ष्म और व्यावहारिक, (तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे,) उन दोनों में जो सूक्ष्म है उसको छोड़िये, किन्तु (तत्थ णं जे से ववहारिए) उन दोनों में जो व्यवहारिक है (से जहानामए पल्ले सिया) वह ऐसा जानना यथा-धान्य के पल्य के समान पल्य हो और (जोश्रणं श्रायामविक्खंभेणं) योजन मात्र दीर्घ तथा विस्तार युक्त भी हो, पुनः (जोयणं उव्वेहेणं) एक योजन गहरा हो, तथा (तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं) उसकी परिधि तीन गुणी से कुछ अधिक हो, फिर (से णं पल्ले एगाहियवेश्राहिश्रतेश्राहिश्र जाव) उस पल्य में एक दिन, दो दिन, तीन दिनसे लगाकर सात दिन तक के वृद्धि किये हुए (भरिए वालग्ग कोडीणं,) बालाग्रों की कोटियों से घनता युक्त भर दिया जाय, फिर (तेणं वालग्गा णो श्रग्गी डहेज्जा,) उन बालाग्रों को अग्नि भी दाह न कर सके (जाव नो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा,) यहां तक कि उनमें दुर्गंध भी पैदा न हो, (जेणं तस्स पल्लस्स) जिससे कि उस पल्य के (श्रागासपएसा तेहिं वालग्गेहिं श्रप्फुन्ना,) आकाश प्रदेश उन बालाग्रों से स्पर्शित हुए हों, (तश्रो णं समए २ एगमेगं श्रागासपएसं श्रवहाय) फिर उसमें से समय २ में एक २ आकाश प्रदेश अपहरण-निकाला जाय, तो (जावइएणं कालेणं) जितने काल में (से पल्ले खीणे जाव निट्ठिए भवइ,) वह पल्य क्षीण यावत् विशुद्ध होता है, (से तं ववहारिए खेत्त पलिश्रोवमे।) वही व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम है, किन्तु

एएसिं पल्लाणं कोडा कोडी भवेज्ज दस गुणिया।
तं ववहारियस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ॥१॥

इन पल्यों को दश कोटा कोटि गुणा करने से एक व्यवहारिक क्षेत्र सागरोपम का परिमाण होता है ॥१॥ अर्थात् उक्त पल्य को दश कोटा कोटि गुणा करने से एक व्यवहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है। (एएहिं ववहारिएहिं खेत्तपलिश्रोवमसागरोवमेहिं किं पत्रोयणं ?) इन व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम और सागरोपम से क्या प्रयोजन है ?

(एएहिं ववहारिएहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं नत्थि किंचिप्पओअणं,) इन व्यवहारिक क्षेत्र पल्योपम और सागरोपम से किंचिन्मात्र भी प्रयोजन नहीं है, (केवलं पण्णवणा किज्जइ,) सिर्फ प्ररूपणा ही की गई है अर्थात् संक्षिप्त स्वरूप ही प्रतिपादन किया गया है, (से तं ववहारिए खेत्तपलिओवमे।) इसीको व्यवहारिक क्षेत्रपल्योपम कहते हैं।

(से किं तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे?) सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम किसको कहते हैं? (खेत्तप०) सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का स्वरूप निम्न प्रकार से है (से जहानामए पल्ले सिया) जैसे कि धान्य के पल्य के समान पल्य हो, जो कि (जोयणं आयामविक्खंभेणं) एक योजन दीर्घ और विस्तार युक्त होता हुआ (जाव परिक्खेवेणं,) यावत् परिधि से भी युक्त हो, (से णं पल्ले एगाहिय) फिर वह पल्य एक दिन, (बेयाहियतेयाहिय जाव) दो दिन, तीन दिन यावत् याने सात दिन तकके वृद्धि किये हुए (भरिए वालग्गाकोडीणं,) बालाग्रों की कोटियों से भर गया हो, फिर (तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखिजाइं खंडाइं किज्जइ,) एकैक बालाग्र के असंख्यात २ खंड किये जायँ जो कि–(तेणं वालग्गा दिट्ठीओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता) वे बालाग्र दृष्टि की अवगाहना से असंख्यात भाग प्रमाण हों अर्थात् दृष्टि मात्र जो सूक्ष्म पुद्गल हैं उनसे भी न्यूनतर हों, किन्तु (सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा,) *सूक्ष्म पनकजीव के शरीर की अवगाहना से असंख्यात गुणा अधिक हों, फिर (तेणं वालग्गा नो अग्गी डहेज्जा,) उन बालाग्रों को अग्नि भी दाह न करे, (जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा,) यावत् याने वायु भी न हरण करे न वे सड़ें और न उनमें दुर्गंधता प्राप्त हो, किन्तु (जेणं तस्स पल्लस्स आगासपएसा) जिससे कि उस पल्य के आकाश प्रदेश (तेहिं वालग्गेहिं अप्फुन्ना वा अणाफुन्ना वा) उन बालाग्रों से स्पर्शित हुए हों या न हुए हों, (तओणं समए २ एगमेगं आगासपएसं अवहाय पश्चात् समय २ में एक २ आकाश प्रदेश को अपहरण किया जाय तो (जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव निट्ठिए भवइ, से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे।) जितने काल में वह पल्य आकाश प्रदेशों से क्षीण यावत् शब्द से नीरज निर्लेप और विशुद्ध होता है उसी को सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम कहते हैं, अर्थात् जो आकाश प्रदेश उन बालाग्रों से स्पर्शित हुए हों या अस्पर्शित हुए हों वे सभी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम में ग्रहण किये जाते हैं। जब आकाश प्रदेश ही ग्रहण किये जाते हैं तब खंडों के वर्णन करने का क्या प्रयोजन है? दृष्टिवाद के द्रव्य, कोई तो स्पर्शित और कोई अस्पर्शित प्रदेशों से मान किये जाते हैं यही मुख्य प्रयोजन है।

* यावन्मात्र सूक्ष्म पनक जीव आकाश प्रदेशों की अवगाहना करता है उससे असंख्यात गुणाधिक आकाश प्रदेश को वह खंड अवगाहना करता है।

(तत्थ णं चोअए पण्णवगं एवं वयासी-) उक्त समास को सुन कर शिष्य ने ऐसा कहा—कि हे भगवन् ! (अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जेणं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा ?) क्या उस पल्य के आकाश प्रदेश हैं जो कि उन वालाग्रों से अस्पर्शित हैं ? (हंता अत्थि,) हाँ—हैं इसमें किंचित् भी संदेह न करना चाहिये, (जहा को दिट्ठन्तो ?) इसका कोई दृष्टान्त भी है ? क्योंकि वह कूआ घन रूप वालाग्रों से भरा गया है (से जहानामए) जैसेकि (कोट्ठए सिया कोहंडाणं भरिए,) एक कोई कोष्ठक—कोठा हो जो कि कुष्मांडों के फलों से भरा हुआ हो (तत्थ णं माउलिंगा पक्खित्ता) फिर उसमें मातुलिंग-बीज पूरक डाले अर्थात् उसे स्थूल दृष्टि से निश्चय हुआ कि—कुष्मांडों के भरने से यह कोष्ठक ठीक तो भर गया है किन्तु उसमें छिद्र देखने से मालूम हुआ कि फल और भी प्रवेश हो सकते हैं, तो उसने मातुलिंग याने बीज पूरक नामक फल डाले, (तेऽवि माया,) वे भी उसमें प्रविष्ट होगये, इसी प्रकार (तत्थ णं बिल्ला पक्खित्ता, तेऽवि माया,) फिर उसमें बिल्व डाले वे भी समा गये (तत्थ णं आमलगा पक्खित्ता तेऽवि माया,) फिर आंवले डाले वे भी समा गये (तत्थ णं बयरा पक्खित्ता तेऽवि माया) फिर वदरी फल डाले वे भी प्रविष्ट होगये, पश्चात् (तत्थ णं चणगा पक्खित्ता तेऽवि माया,) चने-छोले डाले वे भी समा गये (तत्थ णं मुग्गा पक्खित्ता तेऽवि माया,) तदनन्तर मूंग प्रक्षेप किये वे भी प्रविष्ट हो गये, (तत्थ णं सरिसवा पक्खित्ता तेऽवि माया,) फिर सर्षप सरसों डाले वे भी समा गये, (तत्थ णं गंगावालुया पक्खित्ता साऽवि माया,) फिर उसमें गंगा नदी की वालुका डाली वह भी समा गई (एवामेव एएणं दिट्ठंतेणं) इसी प्रकार इस दृष्टान्त से (अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा) उस पल्य के आकाश प्रदेश हैं (जेणं तेहिं वालग्गेहिं अणाफुण्णा,) जिससे कि वे वालाग्र अस्पर्शित हैं क्योंकि वे अतीव सूक्ष्म हैं, इसलिये असंख्यात आकाश प्रदेश भी अस्पृष्ट हैं, जैसे अतीव घन रूप स्तम्भ में कीलक समा जाता है उसी प्रकार उस पल्य में भी अस्पृष्ट आकाश प्रदेश विद्यमान हैं ।

(एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी भवेज्ज दसगुणिया ।)
तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं ।१।

इन पल्यों को दश कोटा कोटि गुणा करने से एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है ॥ १ ॥ (एएहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिओवमसागरोवमेहिं किं पओयणं ?) हे भगवन् ! इन सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम और सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम के प्रतिपादन करने का क्या प्रयोजन है ? (एएहिं सुहुमेहिं पलिओवमसागरोवमेहिं दिट्ठिवाए दव्वा मविज्जंति ।) इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से दृष्टि वाद में जो द्रव्य वर्णन किये गये हैं उनकी गणना इनसे की जाती है अर्थात् इनसे दृष्टि वाद के द्रव्य गिने जाते हैं ।

भावार्थ—क्षेत्र पल्योपम के दो भेद हैं, एक सूक्ष्म और दूसरा व्यावहारिक इनमें सूक्ष्म का स्वरूप तो इस समय प्रतिपादन नहीं किया जाता है क्योंकि उसका वर्णन फिर करेंगे, लेकिन व्यावहारिक का स्वरूप निम्न प्रकार से है, जैसे-कि एक पल्य हो जो कि एक योजन मात्र गहरा दीर्घ और विस्तीर्ण युक्त हो और जिसकी, कुछ अधिक त्रिगुणी परिधिभी हो, फिर उसमें एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् सात दिन तक वृद्धि किये हुए वालाग्रों की कोटियों से ऐसा भर दिया जाय कि जिस को अग्नि भी दाह न कर सके, वायु भी न उड़ा ले जाय, नष्ट भी न हों यहां तक उसमें दुर्गंध भी उत्पन्न न हो, फिर उस पल्य को, जो आकाश प्रदेश स्पर्शित किये हुये हैं उनको समय २ में निकाला जाय तो जितने काल में वह पल्य खाली और निर्लेप हो जाय उसी को व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम कहते हैं, तथा दश कोटा कोटि पल्यों का एक व्यावहारिक सागरोपम होता है, किन्तु यहां पर इसके वर्णन करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है, सिर्फ प्ररूपणा ही की गई है। तो भी सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम को जाननेके लिये अत्युपयोगी है सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप पूर्ववत् ही है लेकिन एक २ वालाग्रके असंख्यात २ खंड कल्पित कर लेने चाहियें जो कि दृष्टि की अवगाहना से असंख्यातवें भाग में हों, और सूक्ष्म पनक जीव के शरीर की अवगहना से असंख्यात गुणा हों, तथा जिनको अग्नि भी दाह न कर सके यावत् दुर्गंध भी उत्पन्न न हो, फिर उस पल्य में से उन वालाग्रोंको जो आकाश प्रदेश स्पर्शित और अस्पर्शित हों, सभी को समय २ में अपहरण किया जाय तो जितने कालमें वह पल्य क्षीण, नीरज और निर्लेप हो जाय उसी को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते हैं। ऐसा वर्णन सुनकर पृच्छक ने प्रश्न किया कि—हे भगवन्! क्या उस पल्य में ऐसे प्रदेश भी हैं जो बालाग्रों से अस्पृष्ट हैं? गुरु ने उत्तर दिया कि—हां—ऐसे आकाश प्रदेश भी उस पल्य में हैं जिन को वालाग्रों ने स्पर्श नहीं किया। जैसे कि—एक कोष्ठक—कोठा को किसी ने कुष्मांडों से भर दिया, जब उसमें देखा कि अब एक भी कुष्मांड प्रवेश नहीं हो सकता परन्तु छिद्र हैं तो उसने मातुलिंग प्रक्षिप्त किये इसी प्रकार बिल्व, आंवले, बद्री बेर फल, चने, मूंग, सर्षप और गंगा की रेत इत्यादि प्रक्षेप करने पर सभी प्रविष्ट हो गये, इसी प्रकार उस पल्य में भी ऐसे आकाश प्रदेश विद्यमान हैं जो उन वालाग्रों से स्पर्श मान भी नहीं हुए, क्योंकि उनकी अपेक्षा आकाश प्रदेश अतीव सूक्ष्म होते हैं, जैसे किसी स्तम्भ में कीलिका प्रवेश हो जाती है, इसी प्रकार आकाश प्रदेश भी अवकाश देते हैं। तथा—दश कोटा कोटि सूक्ष्म क्षेत्र पल्यों का एक सूक्ष्म सागरोपम होता है। इन दोनों से केवल दृष्टिवाद के द्रव्य मान

अथ द्रव्य ।

कइविहा णं भंते ! दव्वा पएणत्ता ? गोयमा ! दव्वा दुविहा पएणत्ता, तंजहा-जीवदव्वा य अजीवदव्वा य । अजीवदव्वा णं भंते ! कइविहा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-रूवीअजीवदव्वा य अरूवीअजीवदव्वा य अरूवीअजीवदव्वा णं भंते ! कइविहा पएणत्ता ? गोयमा ! दसविहा पएणत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसा धम्मत्थिकायस्स पएसा अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसा अधम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसा आगासत्थिकायस्स पएसा, अद्धा समए । रूवीअजीवदव्वाणं भंते ! कइविहा पएणत्ता ? गोयमा ! चउव्विहा पएणत्ता, तंजहा-खंधा खंधदेसा खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, तेणं भंते ! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता ? गोयमा ! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नो संखिज्जा नो असंखेज्जा अणंता ? गोयमा ! अणंता परमाणुपोग्गला अणंता दुपएसिया खंधा जाव [दस पएसिआ खंधा संखेज्जपएसिया] अणंता अणंतपएसिया खंधा से * तेणऽट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता । जीव दव्वाणं भंते ! किं संखेज्जा असंखिज्जा अणंता ? गोयमा ! नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नो संखिज्जा नो

* 'एएणं०' पाठान्तरम् ।

असंखिज्जा अणंता? गोयमा ! असंखेज्जा नेरइया असंखेज्जा असुरकुमारा जाव असंखेज्जा थणियकुमारा असंखेज्जा पुढवीकाइया जाव असंखेज्जा वाउकाइया अणंता वणस्सइकाइया असंखेज्जा बेइंदिया असंखेज्जा तेइंदिया असंखेज्जा चउरिंदिया असंखेज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जा मणुस्सा असंखेज्जा वाणमंतरा असंखिज्जा जोइसिया असंखेज्जा वेमाणिया अणंता सिद्धा, से * तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता । (सू० १४४)

पदार्थ—(कइविहाणं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! द्रव्य कितने प्रकार के प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(जीवदव्वा य अजीवदव्वा य,) जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य । (अजीवदव्वाणं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! अजीव द्रव्य कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से वर्णन किया गया है, जैसे कि-(रूवीअजीवदव्वा य अरूवीअजीवदव्वा य ।) रूपी अजीव द्रव्य और अरूपी अजीव द्रव्य । (अरूवीअजीवदव्वाणं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! अरूवी अजीव द्रव्य कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दस प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-(धम्मत्थिकाए) ‡ संग्रह नय के अभिप्राय से धर्म्मास्तिकाय एक द्रव्य है, किन्तु व्यवहार नय से (धम्मत्थिकायस्स देसा) धर्म्मास्तिकाय के देश और (धम्मत्थिकायस्स पएसा) धर्म्मास्तिकाय के प्रदेश भी हैं, लेकिन ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ये सभी पृथक् २ हैं ।

---

* 'एणट्ठेणं' प्र० ।

‡ 'एकोऽपि धर्मास्तिकायो नयमतभेदात्त्रिधा भिद्यते, तच्चसंग्रह नयाभिप्रायादेक एव धर्मास्तिकायः—पूर्वोक्तपदार्थः, व्यवहारनयाभिप्रायात्तु बुद्धिपरिकल्पितो द्विभागत्रिभागादिकस्तस्यैव देशाः, यथा सम्पूर्णो धर्मास्तिकायो जीवादिगत्युपष्टम्भकं द्रव्यमिष्यते, एवं तद्देशा अपितदुपष्टम्भकानि पृथगेव द्रव्याणीति भावः, ऋजुसूत्राभिप्रायतस्तु स्वकीयस्वकीयसामर्थ्येन जीवादिगत्युपष्टम्भे व्याप्रियमाणास्तस्य प्रदेशा बुद्धिपरिकल्पिता निर्विभागा भागाः पृथगेव द्रव्याणि ।'

इसी तरह (अधम्मत्थिकाए) अधर्मास्तिकाय में (अधम्मत्थिकायस्स देसा) अधर्मास्तिकाय के देश और (अधम्मत्थिकायस्स पएसा) अधर्मास्तिकाय के निर्विभाग प्रदेश, फिर (आगासत्थिकाए) आकाशास्तिकाय में (आगासत्थिकायस्स देसा) आकाशास्तिकाय के देश और (आगासत्थिकायस्स पएसा,) आकाशास्ति काय के प्रदेश, तथा— (अद्धा समए।) दसवां काल द्रव्य, यह † निश्चय नय मत के अभिप्राय से एक ही है, क्योंकि वर्त्तमान समय की अपेक्षा यह नय भूत और भविष्यत् काल के समय को अंगीकार नहीं करता, क्योंकि भूत काल के समय विनष्ट हैं और भविष्यत् काल के अनुत्पन्न हैं इसलिये वर्त्तमान के ही समय सद्रूप हैं। अतः इसकी अपेक्षा काल द्रव्य एक है, इस तरह अरूपी जीव द्रव्य के कुल दस भेद हुए, अब रूपी अजीव द्रव्य का वर्णन करते हैं-(रूवीअजीवदव्वाणं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! रूपी अजीव द्रव्य कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-(खंधा खंधदेसा) अनन्त परमाणु रूप स्कन्ध और उसके विभाग रूप देश, तथा—(पएसा परमाणुपोग्गला,) देश का विभाग रूप प्रदेश और केवल निरंश भाग रूप परमाणु पुद्गल होते हैं, (तेणं भंते ! किं संखिज्जा) हे भगवन् ! क्या वे रूपी अजीव द्रव्य संख्यात हैं या (असंखेज्जा) असंख्यात हैं या (अणंता ?) अनंत हैं ? (गोयमा ! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता,) हे गौतम न वे संख्यात हैं न वे असंख्यात हैं किन्तु अनंत हैं, (से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-) हे भगवन् ! ऐसा कहने का क्या अर्थ है कि-(नो संखिज्जा) न तो वे संख्यात हैं, (नो असंखिज्जा) न असंख्यात हैं, किन्तु (अणंता ?) अनंत हैं ? (गोयमा ! अणंता परमाणुपोग्गला) हे गौतम ! परमाणु पुद्गल अनंत हैं तथा (अणंता दु पएसिया खंधा) द्विप्रादेशिक स्कंध अनंत हैं (जाव [दस पएसिया खंधा,, यावत् [दश प्रादेशिक स्कंध भी अनंत हैं] और (संखिज्ज पएसिया) संख्यात प्रादेशिक स्कंध भी अनंत हैं (असंखेज्ज पएसिया)] असंख्यात प्रादेशिक स्कंध भी अनंत हैं] और (अणंता अणंतपएसिया खंधा,) अनंत प्रादेशिक स्कंध भी अनंत हैं, (से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-) इसलिये हे गौतम ! वह ऐसा कहा जाता है कि-(नो संखिज्जा नो असंखिज्जा) न वे संख्यात हैं न वे असंख्यात हैं, किन्तु (अणंता ।) अनंत हैं। (जीवदव्वाणं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?) हे भगवन् ! क्या जीव द्रव्य संख्यात हैं अथवा असंख्यात हैं वा अनंत हैं ? (गोयमा ! नो संखेज्जा नो असंखिज्जा अणंता,) हे गौतम ! वे न तो संख्यात हैं और न

---

† 'वर्त्तमानकालसमयस्यैव एकस्य सत्त्वादतीतानागतयोस्तु निश्चयनयमतेन विनष्टत्वानुत्पन्नत्वाभ्यामसत्त्वाद् ।'

असंख्यात हैं केवल अनंत हैं, (से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुचइ-) हे भगवन् वे किस अर्थ से ऐसे कहे जाते हैं कि-(नो संखिज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?) संख्यात नहीं हैं असंख्यात भी नहीं हैं सिर्फ अनंत ही हैं ? (गोयमा ! असंखेज्जा नेरइया) भो गौतम ! नारकीय असंख्यात हैं (असंखेज्जा असुरकुमारा) असुरकुमार देव असंख्यात हैं (जाव असंखिज्जा थणिय-कुमारा,) यावत् असंख्यात स्तनितकुमार देव हैं, और (असंखिज्जा पुढवीकाइया) असंख्यात पृथ्वीकाय के जीव हैं (जाव असंखेज्जा वाउकाइया) यावत् असंख्यात २ वायुकायादि के जीव हैं, किन्तु (अणंता वणस्सइकाइया,) वनस्पति काय के अनंत जीव हैं, तथा (असंखेज्जा बेइंदिया) असंख्यात द्वीन्द्रिय (असंखेज्जा तेइंदिया) असंख्यात त्रीन्द्रिय, हैं (असंखेज्जा चउरिंदिया) असंख्यात चतुरिन्द्रिय, (असंखेज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया) असंख्यात पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिवाले, (असंखेज्जा मणुस्सा) * असंख्यात मनुष्य, (असंखेज्जा वाणमंतरा) वान व्यंतर असंख्यात, (असंखेज्जा जोइसिया) ज्योतिषी देव असंख्यात हैं, (असंखेज्जा वेमाणिया) वैमानिक असंख्यात हैं और (अणंता सिद्धा,) सिद्ध अनंत हैं. (से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ—) इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि— (नो संखेज्जा) न संख्यात हैं नो असंखेज्जा) न असंख्यात हैं (अणंता ।) केवल अनंत हैं। (सूत्र १४४)

भावार्थ— द्रव्य के दो भेद हैं, जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य, जीव द्रव्य संख्यात असंख्यात नहीं हैं केवल अनंत हैं. क्योंकि असंख्यात नारकीय हैं, असंख्यात दस प्रकार के भवनपति देव हैं, असंख्यात पृथिवीकाय के जीव हैं इसी प्रकार असंख्यात अपकाय, असंख्यात अग्निकाय, असंख्यात वायुकायादि के जीव हैं, और वनस्पतिकायिक अनंत हैं। असंख्यात २ द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियादि हैं, और असंख्यात तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव हैं, मनुष्य असंख्यात हैं, असंख्यात व्यन्तर देव हैं, असंख्यात ज्योतिषी देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं, लेकिन सिद्ध अनंत हैं, इसी लिये जीव द्रव्य संख्यात असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनंत द्रव्य हैं। तथा-अजीव द्रव्य भी दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है-जैसे कि-अरूवी अजीव द्रव्य, रूपी अजीव द्रव्य। अरूपी अजीव द्रव्य के दस भेद हैं, जैसे कि—धर्मास्तिकाय १ धर्मास्तिकाय देश २ धर्मास्तिकाय प्रदेश ३, अधर्मास्तिकाय ४ अधर्मास्तिकाय देश ५ अधर्मास्तिकाय प्रदेश ६, आकाशास्तिकाय ७ आकाशास्तिकाय देश ८ आकाशास्तिकाय प्रदेश ९ और समय १०। किन्तु धर्मास्तिकाय शब्द संग्रह नय से कहा गया है तथा देश प्रदेश शब्द व्यवहार नय

---

* सम्मूर्च्छिम और गर्भज ए कत्र करने से मनुष्य संख्या असंख्यात होती है।

से प्रतिपादन किये गये हैं। तथा—रूपी अजीव द्रव्य चार प्रकार का है, जैसे कि—स्कन्ध १ स्कंध देश २ स्कंध प्रदेश ३ परमाणु पुद्गल ४, इनमें रूपी अजीव द्रव्य भी संख्यात असंख्यात नहीं हैं, केवल अनंत द्रव्य हैं, क्योंकि पुद्गल अनंत परमणु हैं। द्वीप्रदेशी से लेकर अनंत प्रादेशिक द्रव्य भी अनंत हैं, इसीलिये रूपी अजीव द्रव्य भी अनन्त हैं। यह सभी विचार औदारिकादि शरीर धारी में सिद्ध होते हैं, अतः अब शरीरों का विषय प्रतिपादन किया जाता है—

पांच प्रकार के शरीर।

कइविहा णं भंते ! सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! पंच सरीरा पगणत्ता, तंजहा ओरालिए वेउव्विए आहारए तेअए कम्मए, णेरइआणं भंते ! कइ सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरा पगणत्ता, तंजहा—वेउव्विए तेअए कम्मए, असुरकुमाराणं भंते ! कइ सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरा पगणत्ता, तंजहा-वेउव्विए तेअए कम्मए, एवं तिगिण २, एए चेव सरीरा जाव थणियकुमाराणं भाणिअव्वा। पुढवीकाइयाणं भंते ! कइ सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरा पगणत्ता, तंजहा-ओरालिए तेअए कम्मए, एवं आउतेउवणस्सइकाइयाणवि एए चेव तिगिण सरीरा भाणियव्वा. वाउकाइयाणं *भंते ! कइ सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! चत्तारि सरीरा पगणत्ता, तंजहा--ओरालिए वेउव्विए तेअए कम्मए। बेइंदिअतेइंदियचउरिंदियाणं जहा पुढवीकाइयाणं, पंचिंदयतिरिक्खजोणियाणं जहा वाउकाइयाणं। मणुस्साणं भंते † ! कई सरीरा पगणत्ता ? गोयमा ! पंच सरीरा पगणत्ता, तंजहा-

* जाव गो० प्र०।

† जाव गो० प्र०।

ओरालिए वेउव्विए आहारए तेअए कम्मए । वाणमंतराणं जोतिसिआणं वेमाणिआणं जहा नेरइआणं ।

पदार्थ—(कइविहा णं भंते ! सरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! पांच प्रकार के शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(ओरालिए) देव तथा नारकीय जीवों को छोड़कर इसी शरीर को तीर्थंकर तथा गणधरों के धारण करने से अथवा शेष शरीरों को अपेक्षा इसकी एक सहस्र योजन से कुछ अधिक प्रमाण अवगाहना होने से इसको औदारिक शरीर कहते हैं, तथा-(वेउव्विए) वैक्रिय शरीर उसे कहते हैं-जो नाना प्रकार की विशिष्ट क्रिया वा विक्रिया के द्वारा नाना प्रकार के रूप धारण करे । (आहारए) किसी बात की शंका होने पर केवली भगवान् के पास निर्णय के लिये भेजने के वास्ते चतुर्दश पूर्वविद् मुनि जिस शरीर को रचते हैं और लौटने पर उसके द्वारा अर्थों को धारण करते हैं उसे आहारक शरीर कहते हैं, (तेअए) रसादि आहार को पाचन करने वाला पुनः तेजोलेश्या की उत्पत्ति का कारण भूत, ऊष्ण रूप पुद्गलों का विकार तैजस शरीर होता है, पुनः (कम्मए) जो आठ प्रकार कर्मों के समूह से जनित औदारिकादि शरीरों का कारण भूत तथा भवान्तर में नाना प्रकार के फलों का दाता उसे कार्मण शरीर कहते हैं । इस तरह अनुक्रम से पांचों शरीर का वर्णन किया गया है, किन्तु विशेष इतना ही है कि औदारिक शरीर ह्रस्व से ह्रस्वतर तथा दीर्घ से दीर्घ तर भी होता है, क्योंकि निगोदके जीवों का शरीर ह्रस्वतर और समुद्र के कमल नाल का शरीर दीर्घतर होता है, इसी कारण प्रथम उसका ग्रहण किया गया है । अब चौवीस दण्डकों के शरीरों का विषय कहते हैं-(णेरइआ णं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! नारकियों के कितने शरीर प्रतिपादन किये गये हैं (गोयमा ! तओ सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! तीन शरीर प्रतिपादन कियेगये हैं जैसेकि-(वेउव्विए) वैक्रिय (तेअए) तैजस और (कम्मए,) कार्मण, (असुरकुमाराणं भंते ! कइसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! असुरकुमार देवों के कितने शरीर कथन किये गये हैं ? (गोयमा ! तओ सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! तीन शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(वेउव्विए तेअए कम्मए,) वैक्रिय तैजस और कार्मण, (एवं तिण्णि २ एए चेव सरीरा) इसी प्रकार ये तीन २ शरीरजो पूर्व कहे गये हैं वे (जाव थणियकुमाराणं भाणियव्वा ।) यावत् स्तनितकुमारों के भी जानना चाहिये, अर्थात् स्तनितकुमार तक ये तीन शरीर होते हैं । (पुढविकाइयाणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! पृथिवी

कायके कितने शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! तओ सरीरा पण्णत्ता, तंजहा- हे गौतम! तीन शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, जैसेकि-(ओरालिए) औदारिक (तेअए) तैजस और (कम्मए,) कार्मण्य, (एवं आउतेउवणस्सइकाइयाण ऽवि) इसी प्रकार अप्‌काय तैजस काय और वनस्पति काय के भी (एए चेव तिण्णि सरीरा भाणियव्वा,) ये तीनों शरीर कहना चाहिये. (वाउकाइयाणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! वायुकायिक जीवोंके कितने शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, (गोयमा ! चत्तारि सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! चार प्रकार के शरीर प्रपिादन किये गये हैं, जैसे कि—(ओरालिए वेउव्विए तेअए कम्मए।) औदारिक वैक्रिय तैजस और कार्मण्य, तथा (बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं जहा पुढवीकाइयाणं,) पृथ्वी काय के जितने शरीर होते हैं उतने ही द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के जानना (पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा वाउकाइयाणं।) पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनियों के शरीर वायु काय के समान हैं अर्थात् इनके भी चार शरीर होते हैं। (मणुस्साणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! मनुष्यों के कितने शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! पांच ही शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि—(ओरालिए वेउव्विए आहारए तेअए कम्मए।) औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण्य. किन्तु (वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं) व्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक देवों के शरीर (जहा नेरइयाणं।) जैसे नारकियों के वर्णन किये गये हैं उसी प्रकार इनके भी जानना चाहिये, अर्थात् इन तीनों के तीन २ शरीर होते हैं।

भावार्थ--शरीर पांच प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-औदारिक शरीर १ वैक्रिय शरीर २ आहारक शरीर ३ तैजस शरीर ४ और कार्मण्य शरीर ५, औदारिक शरीर उसे कहते हैं जो सर्व से प्रधान और स्थूल तथा जिस की अवगाहना एक योजन से कुछ अधिक हो १, वैक्रिय शरीर उसे कहते हैं जो नाना प्रकार की क्रिया के द्वारा नाना प्रकार के रूप धारण करे २। इसकी उत्तर वैक्रिय अवस्था एक लाख योजन की और भवधारणीय शरीर की ५०० धनुष तक होती है। चतुर्दश पूर्वधारी अपनी शंका के दूर करने के वास्ते एक नया शरीर रच कर श्री केवली भगवान् के पास भेजते हैं, उसको आहारक शरीर कहते हैं ३, तथा-रसादि आहार को पाचन करने वाला तैजस शरीर कहलाता है ४, और अष्ट कर्मों से जनित भवान्तर में विपाक रस का देने वाले कार्मण्य शरीर होता है, अर्थात् कर्मों का कोष रूप है, विशेष इतना ही है कि-इन पांचों में औदारिक शरीर ह्रस्व से ह्रस्वतर और दीर्घ से दीर्घतर होता है, क्योंकि

निगोद के जीवों का शरीर ह्रस्वतर और समुद्र के नाल के जीवों का शरीर दीर्घतर होता है ५। ये पांच प्रकार के शरीर चतुर्विंशति दंडकों में भी पाये जाते हैं—जैसे कि चारों नरकों के नारिकियों के और दश प्रकार के भवन पतिदेवों के केवल वैक्रिय तैजस और कार्मण्य, ये तीन शरीर होते हैं, तथा पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजसकाय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय इनके औदारिक तैजस और कार्मण्य ये तीन शरीर होते हैं, अपितु वायुकाय और पंचें० तिर्यञ्चों के औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण्य ये चार शरीर होते हैं, तथा—मनुष्यों के औदारिक, वैक्रिय आहारक तेजस् और कार्मण्य ये पांच शरीर होते हैं, और व्यन्तर ज्योतिषी वैमानिक देवों के वैक्रिय, तैजस और कार्मण्य ये तीन शरीर होते हैं। अब प्रत्येक २ शरीर के बद्ध और मुक्त भेद सविस्तर निम्न लिखित जानना चाहिये—

बद्ध और मुक्त के भेद।

* केवइयाणं भंते ! ओरालियसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा तेणं असंखेज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा तेणं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ, अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागो। केवइयाणं भंते ! वेउव्वियसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा तेणं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तत्थ णं जे ते मुक्केलया तेणं अणंता

* 'कइ विहाणं' प०।

अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ सेसं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा एएवि भाणियव्वा । केवइयाणं भंते ! आहारगसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तं जहा-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिअ अत्थि सिअ नत्थि, जइ अत्थि जहएणेणं ऐगो वा दो वा तिरिण वा उक्कोसेणं सहस्स पुहतं, मुक्केल्लया जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा । केवइयाणं भंते ! तेअगसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तं जहा-बद्धेल्लयाय मुक्केल्लया, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ अणंता लोगा दव्व ओ सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वजीवाणं अणंतभागूणा, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ अणंतालोगा दव्वओ सव्वजीवेहिं अणंतगुणा सव्वजीववग्गस्स अणंतभागो । केवइयाणं भंते ! कम्मगसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तं जहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, जहा तेअगसरीरा तहा कम्मगसरीरावि भाणियव्वा ५ ।

पदार्थ—(केवइयाणं भंते ! ओरालिअसरीरा पएणत्ता ?) हे भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-) हे गोतम ! दोकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-(बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य) बद्ध और मुक्त, बद्ध उसे कहते हैं जो तथा विध कर्मों के द्वारा औदारिक शरीर ग्रहण किया गया हो, और मुक्त उसे कहते हैं जिस समय जीव औदारिक शरीर को छोड़ कर भवान्तर होता है अथवा मोक्ष में जाता है

में छोड़ा था उसे† मुक्त औदारिक शरीर कहते हैं। अब इनकी संख्या का प्रमाण कहते हैं, जैसे कि-(तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) इन दोनों में जो बद्ध औदारिक शरीर हैं (तेणं असंखिज्जा) वे असंख्येय हैं, क्योंकि इसका प्रमाण यह है कि-(असंखिज्जाहिं) यदि प्रति समय एक २ शरीर अपहरण किया जाय तो वे असंख्येय‡ (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (अवहीरंति कालओ) काल से अपहरण किये जाते हैं, अर्थात् बद्ध औदारिक शरीर जितने असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के समय हैं उतने हैं, क्योंकि नारकीय और देवों को छोड़ कर शेष जीव औदारिक शरीर से बद्ध हैं, परन्तु सिद्ध अशरीरी हैं। (खेतओ असंखेज्जा लोगा,) क्षेत्र से असंख्यात लोग प्रमाण, अर्थात् असत्कल्पना के द्वारा यदि एक २ औदारिक शरीर एक २ आकाश प्रदेश पर स्थापन किया जाय तो असंख्यात लोकाकाश के समान, अलोक में से आकाश प्रदेश ग्रहण किये जायँ तो उतने ही औदारिक शरीर हैं, अत एव क्षेत्र से भी सिद्ध हुआ कि असंख्यात लोकाकाश के तुल्य बद्ध औदारिक शरीर हैं।

जब औदारिक शरीरों में रहने वाले जीव अनन्त हैं तब औदारिक शरीर अनन्त क्यों नहीं है ?

साधारण काय की अपेक्षा प्रत्येक शरीर वालों को छोड़ कर जो साधारण शरीरी हैं, उनके एक एक शरीर में अनन्तानन्त जीव निवास करते हैं, अर्थात् अनन्त जीवों के समुदाय से एक ही औदारिक शरीर होता है, और जो प्रत्येक शरीरी हैं वे असंख्यात ही होते हैं, इसलिये बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात हैं।

अब मुक्त औदारिक शरीर का वर्णन करते हैं—(तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा) उन दोनों में जो मुक्त औदारिक शरीर हैं (ते णं अणंता) वे अनन्त हैं, क्योंकि इनका प्रमाण यह है कि-(अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ) अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के कालसे अपहरण किये जाते हैं अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणिओं के काल क राशियों के समय के तुल्य मुक्त औदारिक शरीर

---

† इनका प्रमाण द्रव्य क्षेत्र और काल से किया जायगा इसीलिये यह संख्येय पद है, तथा भाव द्रव्यान्तर्गत होने से पृथक् वर्णन नहीं किया गया।

‡ अनेन सूत्रेण उत्सर्पिणीअवसर्पिणी शब्दं सिद्धं भवति, तथा च,-क-ग-ड-ड-त-द-प-श-व-स-) क) पा पूर्वं लुक् प्रा० । व्या० । अ० । ८ पा० । २ सूत्र । ७७ स्नादौर्घ्य-दशयोर्हस्वम् । ८६ । अवापोते । अ० । ८ । पा० । १ । सू० । १७२ ।

होते हैं और (खेत्तओ अणंता लोगा,) क्षेत्र से अनन्त लोक के समान, अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण प्रदेशों के खण्ड की राशि के तुल्य मुक्त औदारिक शरीर हैं इसी लिये 'अनन्ता लोगा' सूत्र रक्खा गया है। अब द्रव्य से प्रमाण कहते हैं— (दव्वओ) द्रव्य से (अभवसिद्धिएहिं) अभव्य सिद्धिक जीवों से (अणंतगुणा,) अनन्त गुणे और (सिद्धाणं अणंतभागो।) सिद्धों के अनन्तवें भाग में हैं, अर्थात् सिद्ध जीवों की अपेक्षा औदारिक शरीर न्यून हैं।

प्रज्ञापना सूत्र के तृतीय पद के महादण्डक में अभव्य जीवों से सम्यक्त्व पतित अनन्त गुणे माने हैं तो फिर इस अंक को छोड़ कर मुक्त औदारिक शरीरों के लिये अभव्य से अधिक सिद्धों से न्यून ऐसा प्रमाण क्यों दिया? महादण्डक में ७४ वां अंक अभव्य जीवों का, पचहत्तरवां सम्यक्त्व से पतितों का और ७६ वां सिद्धों का है, अतः मुक्त औदारिक शरीर कभी तो सम्यक्त्व पतितों से अधिक हो जाते हैं और कभी न्यून होते हैं, किन्तु सिद्धों के अनन्त भाग में ही रहते हैं, इसलिये सिद्धों का अंक ग्रहण किया गया है।

हे भगवन्! मुक्त औदारिक शरीर का अनन्त काल पर्यन्त स्थिर रहना किस प्रकार से मानते हो? क्या मुक्त शरीर सम्पूर्ण अनन्त काल पर्यन्त रह सकता है वा उसके खंड २ किये हुए परमाणु ग्रहण किये जाते हैं? आदि पक्ष स्वीकृत नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर धारी तो अनन्त काल नहीं रहता, यदि द्वितीय पक्ष ग्रहण किया जाय तो अतीत काल में ऐसा कोई परमाणु पुद्गल नहीं रहा जो जीव को अनन्त २ वार औदारिक भाव में परिणमित न हुआ हो?

ये दोनों ही प्रश्न अग्राह्य हैं, क्योंकि मुक्त औदारिक शरीर उसे कहते हैं जो औदारिक शरीर के अनन्त खंड होने पर भी वे अन्यभाव में परिणमित न हों वहां तक उसको शरीर कहते हैं, जैसे उपचारक नय से "एक देश दाहेपि ग्रामो दग्धः पटो दग्धः" इत्यादि, एक देश मात्र गांव के जलने पर गांव जल गया या पट जल गया ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार जितने खंड औदारिक शरीर के अन्य भावमें परिणमित नहीं हुए वे औदारिक शरीर के पुद्गल कहे जाते हैं, और एक २ औदारिक शरीर के अनन्त २ खंड होने पर अनन्त भेद होते हैं, अतः अनन्त मुक्त औदारिक शरीर हैं, जो कि अभव्यों से अनन्त गुणे और सिद्धों से अनन्त भाग न्यून हैं।

इस से सिद्ध हुआ कि जिन पुद्गलों ने औदारिक भाव को छोड़ दिया वे पुद्गल अन्यभाव में परिणमित हो गये तब औदारिक शरीर का व्यवच्छेद होना यह

वर्णन औधिक भाव से कहा गया है, किन्तु विभाग से वर्णन आगे कहा जायगा। वैक्रिय शरीर का विस्तार से वर्णन करते हैं

(केवइयाणं भंते ! वेउव्विदसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार से प्रतिवादन किया गया हैं ? क्योंकि नारकीय और दवता सदैव ही बद्ध वैक्रिय शरीर युक्त होते हैं, और मनुष्य तिर्यक् उत्तर वैक्रिय करते समय वैक्रिय शरीर युक्त होते हैं, इसलिये चारों गतियों के जीवों के वैक्रिय शरीर कितने होते हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-(बद्धेल्लया य) बद्ध वैक्रिय शरीर और (मुक्केल्लया य) मुक्त वैक्रिय शरीर (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन दोनोंमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं (तेणं असंखिज्जा) वे असंख्येय हैं, अब काल से प्रमाण कहते हैं, जैसे-(असंखेजाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं) उत्सर्पीणी और अवसर्पिणीयों से (अवहीरंति) अपहरण किये जाते हैं (कालओ) काल से अर्थात् असंख्येय काल चक्रों के समय की राशि के तुल्य बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, और (खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखिज्जाओ सेढीओ) प्रमाणांगुल के अधिकार में उन असंख्येय प्रदेशों को श्रेणी से जो घन प्रतर वर्णन किया गया है, (पयरस्स असंखेज्जइभागो.) उस प्रतर के असंख्येय भाग में जितने आकाशास्तिकाय के श्रेणियों के प्रदेश हैं, उतने बद्ध वैक्रिय शरीर हैं। फिर (तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया) उन दोनों में जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं (तेणं अणंता अणंताहिं) वे अनन्त हैं और अनन्त (उस्सप्पिणी) उत्सर्पिणियों और (ओसप्पिणीहिं) अवसर्पिणियों के (अवहीरंति कालओ) काल से अपहरण कियेजाते हैं (सेसं) शेष (जहा) जैसे (ओरालियस्स) औदारिक शरीर की (मुक्केल्लया) मुक्तता वर्णन की गई है (तहा) उसी प्रकार (एएऽवि भाणियव्वा २ ।) इनकी भी कहनाचाहिये, अर्थात् अनन्त हैं, (केवइयाणं भंते ! आहारगसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! आहारक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है. (तंजहा-) जैसे कि-(बद्धेल्लया यते बद्ध आहारक शरीर और (मुक्केल्लया य,) मुक्त आहारक शरीर, (तत्थ णं जे ते) बद्धेल्लया) इन दोनों में जो बद्ध आहारक शरीर है (ते णं सिय अत्थि) वे कदाचित् होते हैं (सिय नत्थि-) कदाचित् नहीं होते, सूत्रमें बहु वचन की क्रिया के स्थानमें एक वचन की क्रिया दी गई है। इसमें कदाचित् शब्द इस लिये दिया गया है कि इसका अंतर काल भी होता है, अब उनके प्रमाण की संख्या कहते हैं-(जइ अत्थि जहण्णेणं) यदि हों तो जघन्य से (एगो वा दो वा तिण्णि वा) एक अथवा दो या तीन और (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (सहस्स पुहत्तं) पृथक् सहस्र हों, याने दो हजार से नव हजार पर्यन्त होते हैं, इसीका नाम पृथक् संज्ञा है,(मुक्केल्लया) मुक्त आहारक शरीर (जहा) जैसे (ओरालि-

यस्स) औदारिक शरीर का वर्णन किया गया है (तहा भाणियव्वा ३ ।) उसी प्रकार जानना चाहिये ३ । (केवइयाणं भंते ! तेयगसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् तैजस शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया, है, (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तंजहा-) जैसे कि–(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य) बद्ध तैजस शरीर और मुक्त तैजस शरीर, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उनमें जो बद्ध शरीर हैं (तेणं अणंता) वे अनन्त हैं, अब अनन्त का प्रमाण कहते हैं-(अणंताहिं) अनन्त (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीयों के (अवहीरंति कालओ) काल से अपहरण किये जाते हैं, और (खेत्तओ) क्षेत्र से (अणंता लोगा) अनंत लोकाकाश के प्रदेशों की राशि के तुल्य हैं, और (दव्वाओ सिद्धेहिं अणंतगुणा) द्रव्य से सिद्धों से अनन्त गुणे हैं, (सव्वजीवाणं) सब जीवों की अपेक्षा (अणंत भागूणा) अनन्त भाग न्यून हैं, क्योंकि–सर्व जीवों के अनंत भाग प्रमाण सिद्ध हैं,इनके के तैजस शरीर नहीं होता इस लिये सभी जीव वर्ग से तैजस शरीर अनंत भाग न्यून हैं, तथापि यह प्रश्न यहां पर उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि "औदारिक असंख्यात" हैं फिर तैजस शरीर अनन्त क्यों हुए ?, क्योंकि एक औदारिक शरीर में अनन्त जीव निवास करते हैं, और प्रत्येक २ जीव के साथ पृथक् २ तैजस शरीर होते हैं, इसलिये यहाँ पर कोई भी शंका उत्पन्न नहीं हो सकती। संसारी जीव सिद्धों से अनन्त गुणे हैं इसलिये तैजस शरीर भी सिद्धों से अनंत गुणे हैं, क्योंकि उनके तैजस शरीर नहीं होता इस लिये तैजस शरीर सभी जीव वर्ग से अनन्त भाग न्यून हैं, तथा–(तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया) उन दोनों में जो मुक्त तैजस शरीर हैं (तेणं अणंता) वे अन्नत हैं, अनंत का प्रमाण यह है कि (अणंताहिं) अनंत (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (अवहीरंति कालओ) काल से अपहरण किये जाते हैं (खेत्तओ) क्षेत्र से (अणंता लोगा) अनंत लोकाकाश के प्रदेशों की राशि के तुल्य, और (दव्वओ) द्रव्य से (सव्वजीवेहिं अणंतगुणा) सभी जीवों से अनन्त गुणे हैं, क्योंकि एक २ जीव के अनंत २ मुक्त तैजस शरीर होते हैं, लेकिन (सव्वजीववग्गस्स अणंतभागो) सभी जीवों के वर्ग का अनंतवाँ भाग हैं, क्योंकि—वर्ग उसे कहते हैं, जैसे कि चार ४ को चार सेगुणा किया जाय तो १६ हुए, इसलिये सोलह का वर्ग कहा जाता है। इसी तरह दस सहस्र को १० सहस्र गुणा किया जाय तो दस क्रोड होते हैं, इसी का नाम वर्ग है। इसी प्रकार सद्भाव से जीव राशि अनंत है, इस राशि को तद् गुणा किया जाय तो उसे वर्ग कहते हैं इसलिये सभी जीवों के साथ २ सिद्ध भी ग्रहण किये गये। परन्तुसिद्धों के मुक्त और तैजस शरीर नही होते, इस लिये सभी जीव वर्ग से मुक्त तैजस शरीर अन्तत भाग न्यून हैं, क्योंकि सिद्ध भगवान् सर्व जीवों के अनंतव भाग में हैं, इस लिये

तैजस शरीर भी सभी जीवों के अनंतवें भाग में है। तुल्य का वर्णन इस लिये नहीं किया गया कि असंख्यात काल के पश्चात् तैजस शरीर के पुद्गल अपने २ परिणाम को छोड़ कर अन्य भाव में परिणमित होते हैं, इसलिये अनन्तों के अनंत भेद होते हैं ४। (केवइयाणं भंते ! कम्मगसरीरा पएणत्ता ?) हे भगवन् ! कार्मण्य शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया हैं, (तंजहा-) जैसे कि-(बद्धेल्लया य) बद्ध कार्मण्य शरीर और (मुक्केल्लया य) मुक्त कार्मण्य शरीर, (जहा) जैसे (तेयगसरीरा, तैजस शरीर होते हैं (तहा कम्मगसरीराणि भाणियव्वा।) उसी प्रकार कार्मण्य शरीर के भी भेद कहने चाहिये, अर्थात् तैजसशरीर के तुल्य ही कार्मण्य शरीर होता है ।५।

भावार्थ—शरीर के पाँच भेद हैं, जैसे कि—औदारिक १ वैक्रिय २ आहारक ३ तैजस ४ और कार्मण्य ५ इन पाँच शरीरों में से नारकीय, दस भवनपति व्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देवों के वैक्रिय तैजस और कार्मण्य ये तीन शरीर होते हैं, तथा-चार स्थावर और विकलेन्द्रिय के तीन, पंचेन्द्रिय तिर्यंके और वायु काय के चार, तथा मनुष्यों के पांच शरीर होते हैं। औदारिक शरीर के दो भेद हैं, जैसे कि बद्ध और मुक्त। औदारिक शरीर यदि असत्कल्पना के द्वारा प्रति समय एक २ अपहरण किया जाय तो असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल से अपहरण किये जाते हैं, यह काल प्रमाण बताया गया है, लेकिन क्षेत्र से असंख्यात लोकों के प्रदेशों के तुल्य हैं, तथा-जो मुक्त औदारिक शरीर हैं, वे अनंत हैं, काल से जितने अनन्त काल चक्रों के समय हैं उतने मुक्त औदारिक शरीर हैं, तथा क्षेत्र से अनन्त लोक के जितने देश हैं उतने उक्त शरीर हैं जो कि अभव्यों से अनन्त गुणे और सिद्धों के अनंतवें भाग में हैं १। वैक्रिय शरीर के भी दो भेद हैं, बद्ध और मुक्त, बद्ध तो असंख्येय हैं जो कि प्रतर के असंख्यातवें भाग के प्रदेशों के तुल्य हैं, और काल से असंख्येय काल चक्रों के समयों के समान हैं। तथा—मुक्त वैक्रिय शरीर मुक्त औदारिक शरीर के सदृश है २। तथा-बद्ध आहारक शरीर कदाचित् होते हैं कदाचित् नहीं होते, यदि हों तो जघन्य से एक या दो या तीन और उत्कृष्ट से पृथक् सहस्र तक होते हैं। और मुक्त आहारक शरीर मुक्त औदारिक शरीरवत् जानना चाहिये ३। तैजस

---

* बद्ध आहारक शरीर चतुर्दश पूर्वविद को ही होता है, इसका अन्तर काल जघन्य से एक समय का और उत्कृष्टसे छः मास तक होता है।

शरीर के भी दो भेद हैं-बद्ध और मुक्त, उनमें बद्ध और मुक्त दोनों ही अनन्त हैं, अत एव काल से बद्ध अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के समयों के तुल्य, और क्षेत्र से अनंत लोकके प्रदेशों के समान पुनः द्रव्य से सिद्धों से अनन्त गुणे और सभी जीवों की अपेक्षा अनंतवें भाग न्यून हैं तथा क्षेत्र और काल से मुक्त तैजस शरीर अनन्त हैं किन्तु द्रव्य से सभी जीवों से अनंत गुणे और जीव वर्ग के अनन्तवें भाग में हैं। इसी तरह जिस प्रकार तैजस शरीर का वर्णन किया गया है उसी प्रकार कार्मण्य शरीर का भी जानना, क्योंकि-ये दोनों शरीर युगपत् साथ रहने वाले हैं। इस प्रकार औधिकसे पांच शरीरोंका वर्णन किया गया है, अब विशेषतया वर्णन करते हैं—

पांच शरीरों का विशेष वर्णन।

नेरइआणं भंते ! केवइया ओरालिअसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य. तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया तेणं नत्थि, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिआ ओरालिअसरीरा तहा भाणियव्वा, नेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा तेणं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइ भागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलं बिइअवग्गमूलपडुप्पराणं अहवणं अंगुलबिइअवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं जहा ओहिया ओरालिअसरीरा तहा भाणियव्वा, नेरइआणं भंते ! केवइआ आहारगसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया

य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं नत्थि, तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा, तेअगकम्मसरीरा जहा एएसि चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा ।

असुरकुमाराणं भंते ! केवइया ओरालिअसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहा नेरइयाणं ओरालिअसरीरा तहा भाणियव्वा, असुरकुमाराणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासिणं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो, मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा असुरकुमाराणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा--बद्धेल्लया य, मुक्केल्लया य-जहा एएसिं चेव ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा, तेयगकम्मसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा, जहा असुरकुमाराणं तहा जाव थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वा ।

पदार्थ—(नेरइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! नारकियों के औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(बद्धेल्या य मुक्केल्लया य,) बद्ध औदारिक शरीर और मुक्त औदारिक शरीर (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन दोनों में जो बद्ध औदारिक शरीर हैं (ते णं नत्थि,) वह वर्त्तमान समय में वैक्रिय के सद्भाव होने से नहीं हैं, (तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया) तथा उन दोनों में जो मुक्त

औदारिक शरीर हैं (ते जहा ओहिया ओरालियसरीरा) वे जैसे औधिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहने चाहिये, अर्थात् मुक्त औदारिक शरीर पिछले भावों की अपेक्षा जानने चाहिये। (नेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! नारकियों के वैक्रिय शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध वैक्रिय शरीर और मुक्त वैक्रिय शरीर, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) फिर उन दोनों में जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं. (तेणं असंखिज्जा) वे असंख्येय हैं क्योंकि-(असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी) असंख्येय उत्सर्पिणियों और (ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ) अवसर्पिणियों के काल से अपहरण किये जा सकते हैं, लेकिन (खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखेज्जाओ) असंख्येय (सेढीओ) श्रेणियें, जो (पयरस्स) प्रतर के (असंखेज्जइ भागो,) असंख्येय भाग में हों तो जितने उनके आकाश प्रदेश हैं उतने ही बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, इसका प्रमाण यह है (तासिणं सेढीणं विक्खंभसूई उन श्रेणियों की विष्कुंभ सूची (अंगुलपढमवग्गमूलं) अंगुल प्रमाण प्रतर में श्रेणियां की जो राशि हैं उसमें असंख्येय वर्ग मूल हैं, किन्तु यहांपर प्रथम वर्ग को (बिइयवग्गमूलं पडुप्पण्णं) द्वितीय वर्ग मूल के साथ गुणा करने से जितनी श्रेणियें उपलब्ध हो उतनी ही श्रेणियों को विष्कम्भ सुचि होती है, अर्थात् इतनी ही श्रेणियें ग्रहण करना चाहिये । अब असत्कल्पना के द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि अंगुल प्रमाण प्रतर में २५६ श्रेणियें हैं, इसका प्रथय वर्ग मूल १६, और द्वितीय वर्ग मूल ४ हुआ, यदि प्रथम वर्ग मूल को दूसरे से गुणा किया जाय तो ६४ हुए, क्योंकि-१६ × ४ = ६४ याने जितनी श्रेणियें हैं उतनी ही विस्तार सूचि जानना चाहिये । यह सिर्फ असत्कल्पना के द्वारासिद्ध किया गया है, लेकिन निश्चय से तो उसमें असंख्येय श्रेणियें हैं, (*अहव ण) अथवा (अंगुलबिइयवग्गमूलघणप्पमाणमित्ताओ सेढीओ) अंगुल प्रमाण प्रतर क्षेत्र वर्ती श्रेणी राशि का द्वितोय वर्ग मूल,—जो चतुष्पद रूप पहिले दिखलाया गया है—६४ जिसका घन है, उतनी ही असंख्य श्रेणियें यहाँ ग्रहण की जाती हैं, अर्थात् द्वितोय वर्ग मूल को गुणा करने से चौसठ होते हैं, क्योंकि द्वितीय वर्ग मूल षोडश का है। इस लिए घनमात्र में जितनी श्रेणियां हैं तथा–उनमें जितने असंख्येय प्रदेश हैं उतने ही बद्ध वैक्रिय शरीर † नारकियों के हैं, (तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया) उन दोनों में जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं, (तेणं जहा ओहिया) वे जैसे औधिक (ओरालियसरीरा तहा

* 'णं' इति वाक्यालङ्कारे 'णं' यह वाक्य के अलङ्कार अर्थ में है।

† घनरूप श्रेणियों में असंख्येय श्रेणियें होती हैं। इस कारण नारकियो के भी उतने ही बद्ध शरीर होते हैं।

भाणियव्वा,) औदारिक शरीर होते हैं उसी प्रकार वर्णन कहना चाहिये, (नेरइयाणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! नारकियोंके आहारक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध आहारक शरीर और मुक्त आहारक शरीर, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन दोनों में जो बद्ध शरीर हैं (तेणं नत्थि,) वे *वर्तमान में नही हैं, (तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया) तथा–उन दोनों में जो मुक्त आहारक शरीर हैं (ते जहा ओहिया ओरालिया) वे जैसे औधिक औदारिक शरीर होते हैं, (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना—जानना चाहिये। (तेयगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण्य शरीर (जहा एएसिं चेव) जैसे इनके (वेउव्वियसरीरा) वैक्रिय शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा ।) उसी प्रकार ‡जानना चाहिये,

(असुरकुमाराणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! असुरकुमार देवों के कितने औदारिक शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! जहा नेरइयाणं) हे गौतम ! जैसे नारकियों के (ओरालियसरीरा) औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार असुर कुमारों के शरीरों का वर्णन कहना चाहिये, (असुरकुमाराणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! असुरकुमार देवों के वैक्रिय शरीर कितने प्रकारसे प्रतिपादन किये गये हैं? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि–(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध वैक्रिय शरीर और मुक्त वैक्रिय शरीर, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन दोनों में जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं (ते णं असंखेज्जा) वे असंख्येय हैं, लेकिन नारकियों से स्तोक हैं। इस लिये इनका प्रमाण निम्न प्रकार से है—(असंखेज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियोंके (अवहीरंति कालओ) कालसे अपहरण किये जा सकते हैं, अपितु (खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखेज्जाओ) असंख्येय (सेढीओ) श्रेणिओं के (पयरस्स) प्रतर का (असंखेज्जइभागो,) असंख्यातवां भाग, फिर (तासिणं सेढीणं) उन श्रेणियों की (विक्खम्भसुई) †विष्कम्भ सूचि अर्थात् विस्तार श्रेणि (अंगुलपढमवग्गमूलस्स) अंगुल प्रमाण वर्ग मूल का (असंखेज्जइभागो,) असंख्यातवां भाग है, और

---

* क्योंकि यह शरीर चतुर्दश पूर्व धारी को ही होता है।

‡ पहिले वैक्रिय शरीरोंका वर्णन किया गया है उसी प्रकार तैजस और कार्मण्य शरीरों का भी वर्णन जानना चाहिये, जैसे कि बद्ध असंख्येय और मुक्त अनन्त हैं।

† इनमें से प्रतर के अङ्गुल प्रमाण क्षेत्र में प्रथम वर्ग मूल के असंख्येय भाग में जितनी आकाश प्रदेशकी श्रेणियां हैं उसी प्रमाण की विस्तार सूचि यहां पर ग्रहण करनी चाहिये और वह नारकोक्त सूचि के असंख्यातवें भाग में सिद्ध होती है, इस लिये असुरकुमार नारकियों के असंख्येय भाग में सिद्ध होते हैं।

(मुक्केल्लया) मुक्त वैक्रिय शरीर (जहा ओहिया ओरालियसरीरा) जैसे औघिक औदारिक शरीर होते हैं उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये। (असुरकुमाराणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! असुरकुमारों के आहारक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि—(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध आहारक शरीर और मुक्त आहारक शरीर, (जहा एएसिं चेव) जैसे इनके (ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा,) †औदारिक शरीर होते हैं, उसी प्रकार आहारक शरीरों का भी वर्णन जानना चाहिये, तथा—(तेयगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा) जैसे इनके वैक्रिय शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरोंका वर्णन जानना चाहिये। (जहा असुरकुमाराणं) जैसा असुरकुमारों का वर्णन है, (तहा जाव) उसी प्रकार यावत् (थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वा,) स्तनितकुमारों तक की व्याख्या कहनी चाहिये, अर्थात् असुरकुमार वत् नव निकायके देवों का वर्णन है।

भावार्थ—नारकियों के औदारिक शरीर दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि-बद्ध और मुक्त, बद्ध तो होते ही नहीं, किन्तु मुक्त जैसे औधिक औदारिक शरीर होते हैं उसी प्रकार जानने चाहिये, इसी प्रकार वैक्रिय शरीर भी होते हैं, लेकिन बद्ध वैक्रिय शरीर काल से असंख्येय काल चक्रों के समय प्रमाण हैं, और क्षेत्र से जो असंख्येय योजनों की श्रेणियें हैं उन श्रेणियों के प्रतर से असंख्येय भाग प्रमाण, फिर उस अंगुल प्रमाण प्रतर के श्रेणियों की विष्कंभ सूचि करने से प्रथम वर्ग मूल को द्वितीय वर्ग मूल के साथ गुणा किया जाय तो जितने उसमें आकाश प्रदेश हैं उतने ही बद्ध वैक्रिय शरीर होते हैं। अथवा एक अंगुल मात्र प्रतर के प्रथम वर्ग को घन रूप करें तो जितनी उसमें श्रेणियाँ हैं उतने ही उसमें आकाश प्रदेश हैं तो इतने ही नारकियों के बद्ध वैक्रिय शरीर होते हैं, जैसे कि–असत्कल्पना के द्वारा प्रथम वर्ग मूल के १६ अंक हैं इनको चार गुणा करने से घन रूप ६४ होजाते हैं, इसी को घन प्रमाण कहते हैं। मुक्त वैक्रिय शरीर औधिक औदारिक शरीर वत् होते हैं। तथा नारकियोंके बद्ध आहारक शरीर तो होते ही नहीं, किन्तु मुक्त आहारक शरीर मुक्त औधिक औदारिक

---

† प्रज्ञापना सूत्र के महादण्डक में कहा है कि—"भवनपत्यादि सिर्फ रत्नप्रभानारकी से असंख्यातवें भाग में हैं, तो फिर असुरकुमारों की तो बात ही क्या।"

शरीर वत् जानना चाहिये। तैजस और कार्मण शरीर बद्ध वैक्रिय शरीर वत् होते हैं।

असुरकुमार देवों के औदारिक शरीर नारकियों के ही समान जानने चाहिये, लेकिन जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं वे कालसे असंख्येय काल चक्रोंके समय प्रमाण प्रतिपादन किये गये हैं, तथा क्षेत्र से असंख्येय योजनों की श्रेणियों के प्रतरका असंख्यातवाँ भाग है, किन्तु उन श्रेणियोंकी विष्कम्भ सूचि सिर्फ अंगुल प्रमाण ही प्रतिपादन की गई है, इस लिये उसके प्रथम वर्ग के असंख्येय भाग में जितनी आकाश की श्रेणियां हों उतने ही असुर कुमारों के बद्ध वैक्रिय शरीर होते हैं, तथा-मुक्त वैक्रिय शरीर मुक्त औविक औदारिक शरीर वत् जानना। और आहारक शरीर औदारिक वत् होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर वैक्रिय शरीरवत् हैं।

जिस प्रकार असुरकुमारों के शरीरों का वर्णन किया गया है उसी प्रकार स्तनितकुमारादि देवोंका भी जानना चाहिये। अब पांच स्थावरोंके बद्ध और मुक्त शरीरों का वर्णन किया जाता है—

स्थावरों के बद्ध और मुक्त शरीर।

पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, एवं जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा, पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य, मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि, मुक्केल्लया जहा ओहिआणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा, आहारगसरीरावि एवं चेव भाणियव्वा, तेअगकम्मसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिअसरीरा तहा भाणियव्वा, जहा पुढविकाइयाणं एवं आउकाइयाणं तेउकाइयाण य सव्वसरीरा भाणियव्वा। वाउकाइयाणं भंते! केवइया

ओरालियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा–बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, जहा पुढविकाइयाणं ओरालियसरीरा तहा भाणियव्वा, वाउकाइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा समए २ अवहीरमाणा २ खेत्तपलिओवमस्स असंखिज्जइभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया, मुक्केल्लया वेउव्वियसरीरा आहारगसरीरा य जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा, तेअगकम्मगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा । वणस्सइकाइयाणं ओरालियवेउव्वियआहारगसरीरा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा, वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइया *तेअगसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, जहा ओहिआ तेअगकम्मसरीरा तहा वणस्सइकाइयाण वि तेअगकम्मगसरीरा भाणियव्वा ।

पदार्थ—(पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पराणत्ता ?) हे भगवन् ! पृथिवीकायके औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि–(बद्धेल्लया य) बद्ध शरीर और (मुक्केल्लया य,) मुक्त शरीर, (एवं जहा ओहिया ओरालियसरीरा) इसी प्रकार जैसे औघिक औदारिक शरीरों का वर्णन किया गया है (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये । (पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया वेउ० प० ?) हे भगवन्! पृथिवी कायिक जीवों के वैक्रिय शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि–(बद्धेल्लया य) बद्ध वैक्रिय शरीर और (मुक्केल्लया य,) मुक्त वैक्रिय शरीर, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन दोनों में जो बद्ध शरीर हैं, (ते णं नत्थि,) वे तो नहीं होते,

* 'तेअगकम्मसरीरा' पा० ।

और (मुक्केल्लया) मुक्त वैक्रिय शरीर, (जहा ओहियाणं ओरालियसरीरा) जैसे औधिक औदारिक शरीर होते हैं, (तहा) उसी प्रकार (भाणियव्वा) कहना चाहिये, (आहारगसरीरावि) आहारक शरीर भी (एवं चेव) इसी प्रकार (भाणियव्वा ।) कहना चाहिये। (तेअगकम्मसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा एएसिं चेव) जैसे इनके (ओरालियसरीरा) औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये। (जहा पुढविकाइयाणं) जैसे पृथिवीकाय के शरीर होते हैं, (एवं) इसी प्रकार (आउकाइयाणं तेउकाइयाण य) अप्काय और अग्निकाय के (सव्वसरीरा भाणियव्वा ।) सभी शरीर कहने चाहिये। (वाउकाइयाणं भंते !) हे भगवन्! वायु कायके (केवइया) कितने (ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?) प्रकार से औदारिक शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !) हे गौतम ! (दुविहा पण्णत्ता,) दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, (तंजहा -) जैसे कि–(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध और मुक्त, (जहा पुढविकाइयाणं) जैसे पृथिवीकायिकों के (ओरालिअसरीरा) औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये, (वाउकाइयाणं भंते !) हेभगवन् ! † वायुकायिकों के (केवइया) कितने (वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?) वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !) हे गौतम !

---

†अन्य प्रकार से भी वायुकायके बद्ध वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि—

चतुर्विधा वायवः—सूक्ष्मा अपर्याप्ताःपर्याप्ताश्च बादरा अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च, तत्राद्यराशित्रये प्रत्येकं ते असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणवैक्रियलब्धिशून्याश्च, बादरपर्याप्तास्तु सर्वेऽपि प्रतरासंख्येयभागवर्तिन एव न शेषाः येषामपि च वैक्रियलब्धिस्तेष्वपि मध्येऽसंख्यातभागवर्तिन एव बद्धवैक्रियशरीराः पृच्छासमये प्राप्यन्ते नापरे, अतो यथोक्तप्रमाणान्येवैषां बद्धवैक्रियशरीराणि भवन्ति नाधिकानीति, अत्र केचिन्मन्यन्ते ।

ये केचन वान्ति वायवस्ते सर्वेऽपि वैक्रियशरीरे वर्त्तन्ते, तदन्तरेण तेषां चेष्टाया एवाभावात, तच्च न घटते, यतः सर्वस्मिन्नपि लोके यत्र क्वचित् शुषिरं तत्र सर्वत्र चला वायवो नियमात् सन्त्येव, यदि च ते सर्वेऽपि वैक्रियशरीरिणः स्युस्तदा बद्धवैक्रियशरीराणि प्रभूतानि प्राप्नुवन्ति, न तु यथोक्तमानान्येवेति, तस्मादवैक्रियशरीरिणोऽपि वान्ति वायवः, उक्तं च—

"अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरे वाया पच्छावाया मन्दवाया महावाया वायंति ? हंता अत्थि, कया णं भंते ! जाव वायन्ति ? गोयमा ! जया णं वाउयाए आहारियं रीयइ, जयाणं जाव वाउयाए उत्तरकिरियं रीयई, जयाणं वाउकुमारा वाउकुमारीओ वा अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउयायं उदीरंति, तया णं ईसिं जाव वायंति ।"

'आहारियं रीयइ' त्ति रीतं रीतिः स्वभाव इत्यर्थः, तस्यानतिक्रमेण यथा रीतं रीयते—गच्छति, यदा स्वाभाविकौदारिकशरीरगत्या गच्छतीत्यर्थः, 'उत्तरकिरियं' ति-उत्तरा—उत्तर-

(दुविहा पएणत्ता,) दो प्रकारसे प्रतिपादन किया गया है, (तंजहा-) जैसे क-(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) और मुक्त, (तत्थ णं जे ते) उन दोनों में जो वे (बद्धेल्लया) बद्ध शरीर हैं (ते णं असंखिज्जा) वे असंख्येय हैं, (समए २ समय २ में (अवहीरमाणा २) अपहरण करते हुए (खेत्तपलिओवमस्स) क्षेत्र पल्योपम के (असंखिज्जइभागमेत्तेणं कालेणं) * असंख्येय भाग मात्र काल से (अवहीरंति) अपहरण होते हैं, लेकिन (नो चेव णं अवहिआ सिया,) शायद ही किसी ने अपहरण किये हों, और (मुक्केल्लया वेउव्वियसरीरा आहारगसरीरा य) मुक्त वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर (जहा पुढविकाइयाणं) जैसे पृथिवीकायिकों के होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार जानना चाहिये, तथा (तेयगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा पुढविकाइयाणं) जैसे पृथिवीकायिकों के होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार इनके भी जानना चाहिये। तथा (वणस्सइकाइयाणं) वनस्पतिकायिकों के (ओरलियवेउव्वियआहारगसरीरा) औदारिक वैक्रिय और आहारक शरीर ये तीनों (जहा पुढविकाइयाणं) जैसे पृथिवीकायिक जीवों के होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये, फिर (वणस्सइकाइयाणं भंते !) हे भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों के (केवइया तेयगसरीरा पएणत्ता ?) कितने तैजस शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, जैसे कि—(बद्धेल्लया य) बद्ध तैजस शरीर और (मुक्केल्लया य,) मुक्त तैजस शरीर, किन्तु (जहा ओहिया) जैसे औघिक (तेयगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर होते हैं (तहा वणस्सइकाइयाणवि) उसी प्रकार वनस्पति कायिक जीवों के (तेयगकम्मगसरीरा भाणियव्वा,) तैजस और कार्मण शरीर कहना चाहिये।

भावार्थ—पृथिवीकाय अप्काय और तैजसकायादि के जो औदारिक शरीर हैं वे औघिक औदारिक शरीरोंके समान जानना चाहिये। तथा इनके बद्ध वैक्रिय और आहारक शरीर तो होते ही नहीं, मुक्त प्राग्वत् ही हैं, तथा तैजस और

वैक्रियशरीरारच या गतिलक्षणा क्रिया यत्र गमने तदुत्तरक्रियां तयथा भवतीत्येवं यदा रीयते तदेवमत्र वातानां वाने प्रकारत्रयं प्रतिपादयता स्वाभाविकमपि गमनमुक्तम्। अतो वैक्रियशरीरिण एव ते वान्तीति न नियम इति।

* क्षेत्रपल्योपम के असंख्येय भाग में जितने आकाशास्तिकायके प्रदेश होते हैं, उतने समयों से अपहरण होते हैं, अर्थात् क्षेत्रपल्योपम के असंख्येय भागके प्रदेशों की राशि के तुल्य बद्ध शरीर हैं।

कार्मण शरीर भी पूर्ववत् जानना। अतः वायुकायके औदारिक शरीर तो पृथ्वी-कायके तुल्य ही हैं, लेकिन वैक्रिय शरीर क्षेत्र पल्योपम के असंख्येय भाग में होते हैं, मुक्त पूर्ववत् ही है। आहारक शरीरोंका, जैसे पृथ्वीकायके वैक्रिय शरीरों का स्वरूप है उसी प्रकार जानना चाहिये। तैजस और कार्मण शरीरों का वर्णन पृथ्वीकाय के शरीरोंके सदृश जानना चाहिये। तथा वनस्पतिकाय के औदारिक, वैक्रिय, और आहारक शरीर पृथ्वीकायके जीवों के शरीरों के तुल्य हैं, और तैजस कार्मण शरीरों का स्वरूप औधिक के अनुसार जानना चाहिये, इस प्रकार पांच स्थावरों के शरीरों की व्याख्या सम्पूर्ण हुई। अब विकलेन्द्रिय जीवों के शरीरों का वर्णन किया जाता है —

विकलेन्द्रियादि के शरीर।

बेइंदियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असं-खेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ असं-खिज्जाइं सेढीवग्गमूलाइं बेइंदियाणं ओरालियबद्धेल्लएहिं पयरं अवहीरइ असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ खेत्तओ अंगुलपयरस्स आवलियाए असंखेज्जइ-भागपडिभागेणं, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरलिअ-सरीरा तहा भाणियव्वा, वेउव्वियआहारगसरीरा बद्धे-ल्लया नत्थि, मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालियसरीरा तहा भाणिअव्वा, तेयगकम्मसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिअसरीरा तहा भाणियव्वा, जहा बेइंदियाणं तहा तेइंदियचउरिंदियाणवि भाणियव्वा। पंचेंदियतिरिक्ख-

जोणियाणवि ओरालियसरीरा एवं चेव भाणियव्वा, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पएणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पएणत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया तेणं असंखिज्जा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खिंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिया तहा भाणियव्वा, आहारगसरीरा जहा बेइंदियाणं तेअगकम्मगसरीरा जहा ओरालिया।

पदार्थ—(बेइंदियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पएणत्ता ?) हे भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो *प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, (तंजहा-) जैसे कि—(बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य,) बद्ध और मुक्त, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उनमें जो वे बद्ध औदारिक शरीर हैं (ते णं असंखिज्जा) वे असंख्येय हैं, कालसे इसका प्रमाण यह है कि (असंखिज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के (अवहीरंति कालओ,) कालसे—अपहरण होते—निकाले जाते हैं, तथा क्षेत्र से प्रमाण यह है कि—(खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखेज्जाओ सेढीओ) असंख्येय श्रेणियों के तुल्य हैं, जो कि (पयरस्स असंखेज्जइ भागो,) † प्रतर के असंख्यातवें भाग में हों। (तासिणं सेढीणं)

---

* उन श्रेणियोंके जितने आकाश प्रदेश हैं उतनेही द्वीन्द्रिय जीवोंके बद्ध औदारिक शरीर होते हैं।

† श्रेणियों की जो राशि हैं उसमें सत्कल्पनया असंख्येय वर्ग मूल हैं, लेकिन असत्कल्पना से यदि ६५५३६ प्रदेश मान लिये जायँ तो इसका प्रथम वर्ग मूल २५६ होता है, क्यों कि २५६ × २५६ = ६५५३६ होते हैं। इसी प्रकार द्वितीय वर्ग मूल १६, तृतीय ४ और चतुर्थ २ ये चारों ही सत्कल्पना से असंख्येय प्रदेश रूप हैं। तथा—इन सब का योग करने से २५६ + १६ + ४ + २ = २७८ हुए, अर्थात् इतने प्रदेशों की एक विष्कम्भ सूचि होती है।

उन श्रेणियों को (विक्खंभसूई) विष्कम्भसूचि (असंखेज्जाओ) असंख्येय (जोअणकोडाकोडीओ) क्रोडाक्रोड योजन के प्रमाण है, जो कि (असंखेज्जाइं) असंख्येय (सेढीवग्गमूलाइं,) श्रेणियों के वर्गमूल के समान है।

(*बेइंदियाणं) द्वीन्द्रिय जीवों के (ओरालियबद्धेल्लएहिं) बद्ध औदारिक शरीरों से (पयरं अवहीरइ) †प्रतर अपहरण किया जाता है (असंखिज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ) उत्सर्प्पिणी और अवर्प्पिणियों के काल से, (खेत्तओ) क्षेत्र से (अंगुलपयरस्स) प्रमाणांगुल प्रतर का (आवलियाए) आवलिका के (असंखिज्जइभागपडिभागेणं,) असंख्यातवें ‡भाग के अंश से (मुक्केल्लया) मुक्त औदारिक शरीर (जहा) जैसे (ओहिआ ओरालियसरीरा) औधिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा) उसी प्रकार (भाणियव्वा) कहना चाहिये। तथा—(वेउव्वियआहारगसरीरा बद्धेल्लया) बद्ध वैक्रिय और आहारक शरीर (नत्थि) नहीं होते। (मुक्केल्लया) मुक्त (जहा) जिस प्रकार (ओहिआ ओरालिअसरीरा) औधिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणिअव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये, और (तेअगकम्मगसरीरा) तैजस तथा कार्मण शरीर (जहा) जिस प्रकार (एएसिं चेव) निश्चय ही इनके (ओरालिअसरीरा) औदारिक शरीर होते हैं (तहा) उसी प्रकार (भाणियव्वा।) कहना चाहिये।

---

*—इदानीं प्रस्तुतशरीरमानमेव प्रकारान्तरेणाह'—बेइंदियाणं ओरालियसरीरेहिं बद्धेल्लएहि, मित्यादि, द्वीन्द्रियाणां यानि बद्धान्यौदारिकशरीराणि तैः प्रतरः सर्वोऽप्यपह्रियते, कियता कालेनेत्याह असंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः, केन पुनः ? क्षेत्रप्रविभागेन कालप्रविभागेन च, एतावता कालेनायमपह्रियत इत्याह—अंगुलप्रतरलक्षणस्य क्षेत्रस्य आवलिकालक्षणस्य च कालस्य योऽसंख्येयभागरूपः प्रविभागः—अंशस्तेन। इदमुक्तं भवति—यद्येकैकेन द्वीन्द्रियशरीरेण प्रतरस्यैकैकोऽङ्गुलासंख्येयभाग एकैकेनावलिकाऽसंख्येयभागेन क्रमशोऽपह्रियते तदाऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वोऽपि प्रतरो निष्ठां याति, एवं प्रतरस्यैकैकस्मिन्नङ्गुलासंख्येयभागे एकैकेनावलिकाऽसंख्येयभागेन प्रत्येकं क्रमेण स्थाप्यमानानि द्वीन्द्रियशरीराण्यसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिः सर्वं प्रतरं पूरयन्तीत्यपि द्रष्टव्यम्, वस्तुत एकार्थत्वादिति।—इसका भावार्थ पदार्थ में आगया है।

† अर्थात् असंख्येय काल चक्रों से उस प्रतर के आकाश—प्रदेश अपहरण किये जाते हैं।

‡ क्षेत्र से प्रमाणांगुल के असंख्येय भाग के और काल से आवलिका के असंख्येय भाग के अंश से अपहरण करें तो असंख्येय कालचक्रों से वे प्रतर निर्लेप होते हैं अर्थात् इतने द्वीन्द्रिय जीव हैं। अथवा उक्त प्रमाण से यदि उसी प्रतर में द्वीन्द्रिय जीवों को स्थापन करें तो भी पूर्वोक्त कल्पित समय लगता है।

दियाणं) जिस प्रकार द्वीन्द्रियों के बद्ध औदारिक शरीर होते हैं (तेइंदियचउरिंदियाण वि) त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रय के भी (भाणियव्वा)



ारिक्खजोणियाण वि) पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों के भी (ओरालिअ-
शरीर (एवं चेव) निश्चय ही इसी प्रकार (भाणियव्वा) कहना
अतिरिक्खजोणियाणं भंते !) हे भगवन् ! तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों
सरीरा पण्णत्ता ?) कितने प्रकार से वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये
दुविहा पण्णत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं,
—(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त। (तत्थ णं जे ते)
ल्लया) बद्ध हैं (ते णं) वे (असंखिज्जा) असंख्येय हैं, क्यों कि—
संख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के
) काल से अपहरण होते हैं, तथा-(खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखिज्जाओ)
श्रेणियां हैं, जो कि (पयरस्स असंखिज्जइभागो,) प्रतर के असंख्यातवें
सेढीणं) उन श्रेणियों की (विक्खंभसूई) विष्कम्भसूचि (अंगुलपढमव-
ल के (असंखिज्जइभागो,) *असंख्यातवें भाग की होती है, (मुक्केल्लया)
प्रकार (ओहिआ ओरालिआ) औघिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा
प्रकार कहना चाहिये (आहारयसरीरा) आहारक शरीर (जहा
के समान जानना, (तेअगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर
औदारिक जैसे होते हैं।

ेनासंख्येयतामात्राव्यभिचारतस्त्रीन्द्रियादीनामतिदेशो मन्तव्यो न पुनः सर्वथा
षाम्—"सामान्यातिदेशो विशेषानतिदेश" इति न्यायात्। अतः उक्तम्—
ते ! एइंदियबेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचिंदियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा
ेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वथोवा पंचिंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइं-
या विसेसाहिया एगिंदिया अणंतगुणा"

एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाणां कतरे कतरेभ्यः अल्पा वा
षाधिका वा ? गौतम ! सर्वस्तोका पञ्चेन्द्रियाः चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः
ेन्द्रिया विशेषाधिका एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः।

ेणीनां विष्कम्भसूचिरङ्गुलप्रथमवर्गमूलस्यासंख्येयभागः' इति वचनात्।

ी विष्कम्भसूचि प्रमाणाङ्गुल के असंख्यातवें भाग में होती है।

भावार्थ—विकलेन्द्रियों के औदारिक शरीर दो तरह के होते हैं, जैसे कि बद्ध और मुक्त। इनके बद्ध शरीर असंख्येय काल चक्रों की समय की राशि के तुल्य तथा क्षेत्र से प्रतर के असंख्यातवें भाग में आकाश प्रदेश की जितनी असंख्येय श्रेणियां हैं, उनकी विष्कम्भसूचि के तुल्य हैं, जो कि असंख्येय योजन कोटाकोटि प्रमाण हों।

सत्कल्पनया असंख्येय आकाश प्रदेशों की एक श्रेणि होती है, लेकिन असत्कल्पना से यदि ६५५३६ प्रदेश कल्पित कर लिये जायं तो इसका प्रथम वर्गमूल २५६, द्वितीय १६, तृतीय ४, और चतुर्थ २ है। इनका योग करनेसे २७८ होते हैं। सत्कल्पना से असंख्येय आकाश प्रदेश होते हैं। इस लिये इतने आकाश प्रदेशों की एक विष्कम्भसूचि जानना चाहिये।

अथवा बद्ध औदारिक शरीरों से यदि प्रतर के प्रदेश अपहरण किये जायं तो असंख्येय उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के काल से अपहरण होते हैं, परन्तु क्षेत्र से प्रमाणांगुल प्रतर का आवलिका के असंख्येय भाग के अंश से यदि उस के प्रदेश अपहरण करें तो असंख्येय काल चक्र लग जाते हैं। इसी तरह यदि उक्त प्रमाण से प्रतर में स्थापन करें तब वह पूर्ण होती है, अतः इतने ही बद्ध शरीर होते हैं। मुक्त शरीर पूर्ववत् जानना। वैक्रिय और आहारक शरीर तो इनके होते ही नहीं, लेकिन मुक्त पूर्ववत् जानना चाहिये। तैजस और कार्मण शरीरों का वर्णन, जैसे औदारिक शरीरों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार जानना चाहिये।

पञ्चेन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर तो प्राग्वत् हैं, लेकिन बद्ध वैक्रिय शरीर असंख्येय काल चक्रों से अपहरण किये जाते हैं। क्षेत्र से प्रतर के असंख्येय भाग में जितनी आकाश की असंख्येय श्रेणियां हैं, उनकी विष्कम्भसूचि करने से प्रथम वर्गमूल के असंख्येय भाग मात्र में होते हैं, अर्थात् प्रथम वर्ग मूल के असंख्यातवें में भाग में होते हैं। मुक्त पूर्ववत् हैं। पुनः आहारक शरीर जैसे द्वीन्द्रियों के वर्णन किये गये हैं, उसी प्रकार जानना चाहिये। तैजस और कार्मण शरीरों की व्याख्या जैसे पूर्व औदारिक शरीरों की प्रतिपादन की गई है, उसी प्रकार जानना चाहिये।

अब इसके अनन्तर मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के शरीरों के विषय में कहते हैं—

मनुष्यादि शेष दण्डकों के शरीर ।

मणुस्साणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया तेणं सिअ संखिज्जा सिय असंखिज्जा जहण्णपए संखेज्जा, संखिज्जाओ कोडाकोडीओ एगुणतीसं ठाणाइं तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हेट्ठा, अहव णं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो, अहव णं छण्णउइछेअणगदायिरासी, उक्कोसपए असंखिज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ *उक्कोसेणं रूवपक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरइ [×तासिणं सेढीए कालखेत्तेहिं अवहारो मग्गिज्जइ] कालओ असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं. मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा, मणुस्साणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता तंजहा—बद्धेल्लया य, मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं संखिज्जा समए२ अवहीरमाणा २ संखेज्जेणं कालेणं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिआ सिआ, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालियाणं मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा, मणुस्साणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया तेणं

---

* इत्यत्र 'उक्कोसपए' इत्यन्यत्र ।

× एतद्वाक्यं क्वचिन्नोपलभ्यते, तथापि पाठान्तरत्वादत्र योजितः ।

सिअ अत्थि सिअ नत्थि, जइ अत्थि जहराणेणं एक्को वा दो वा तिरिण वा उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं, मुक्केल्लया जहा ओहिया, तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव ओरालिया तहा भाणियव्वा ।

वाणमंतराणं ओरालियसरीरा जहा नेरइयाणं, वाणमंतराणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो तासि णं सेढीणं विक्खम्भसूई संखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो पयरस्स. मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिआ तहा भाणियव्वा, आहारगसरीरा दुविहा वि जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वा, वाणमंतराणं भंते ! केवइया तेयगकम्मगसरीरा पराणत्ता? गोयमा! जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा तेयगकम्मगसरीरा भाणियव्वा, [*जोइसियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा-जहा नेरयाणं तहा भाणियव्वा] जोइसिआणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पराणत्ता ? गोयमा ! दुविहा पराणत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया [*ते णं असंखेज्जा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो] तासि णं

---

* इत्यधिकम् ।

सेढीणं विक्खम्भसूई बेछप्पणंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स, मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया तहा भाणियव्वा, आहारगसरीरा जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा, तेयगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा, वेमाणियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा, वेमाणिआणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो तासिणं सेढीणं विक्खम्भसूई अंगुलबीयवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पणं अहव णं अंगुलतइयवग्गमूलं घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ, मुक्केल्लया जहा ओहिआ ओरालिआणं तहा भाणियव्वा, आहारगसरीरा जहा नेरइयाणं, तेअगकम्मगसरीरा जहा एएसिं चेव वेउव्वियसरीरा तहा भाणियव्वा, से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे, से तं खेत्तपलिओवमे, से तं विभागनिप्फण्णे, से तं कालप्पमाणे। (सू०१४५)

पदार्थ—(मणुस्साणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?) हे भगवन् ! * मनुष्यों के औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !

---

* मनुष्यों के दो भेद हैं, संमूर्च्छिम और गर्भज। स्त्री आदि के गर्भ से उत्पन्न होने वाले को 'गर्भज' और वातपित्तादि से उत्पन्न होने वाले को 'संमूर्च्छिम' कहते हैं। गर्भज संख्येय और संमूर्च्छिम उत्कृष्ट से असंख्येय होते हैं।

दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तंजहा-) जैसे कि-(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त, (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) फिर उन में जो वे बद्ध शरीर हैं, (तेणं सिय संखेज्जा) वे कदाचित् संख्येय हों और (सिय असंखेज्जा,) कदाचित् †असंख्येय भी हों, इसका प्रमाण यह है कि (जहन्नपए संखेज्जा,) जघन्य पद से वे संख्येय हैं, क्योंकि—(संखेज्जाओ) संख्येय (कोडाकोडीओ) ‡कोटाकोटि प्रमाण है, अथवा (एगुणतीसं ठाणाइं) २९ अंक स्थान प्रमाण जघन्य पद वाले मनुष्य होते हैं (तिजमलपयस्स उवरिं) तीन ÷ यमल पद के ऊपर और (चउजमलपयस्स हेट्ठा,) चार यमल पद के नीचे, (अहव णं) अथवा (छण्णउइछेत्रणगदायिरासी) ९६ छेदनकदायी राशि, (उक्कोसपए) उत्कृष्ट पद से (असंखेज्जा,) असंख्येय हैं, (असंखेज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के (अवहीरंति कालओ) काल से अपहरण किये जाते हैं, (खेत्तओ) क्षेत्र से (उक्कोसेणं रूवपक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं) उत्कृष्ट एक मनुष्य के रूप प्रक्षेप करने से (सेढी अवहीरइ) श्रेणि अपहरण हो जाती है [तासिणं सेढीए) उन श्रेणियों का (कालखेत्तेहिं काल और क्षेत्र से (अवहारो मग्गिज्जइ,) अपहरण किया जाया जाता है,] जैसे कि— कालओ) काल से (असंखिज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों से, (खेत्तओ) क्षेत्र से (अंगुलपढमवग्गमूलं) अंगुल प्रमाण क्षेत्र के प्रथम वर्ग मूल को (तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं,) तीसरे वर्ग मूल के साथ ×गुणा करने से, तथा (मुक्केल्लया) मुक्त औदारिक शरीर (जहा) जैसे (ओहिया ओरालिआ) औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये। (मणुस्साणं भंते !) हे भगवन् ! मनुष्यों के (केवइया वेउव्वियसरीरा पएणत्ता ?) कितनी तरह के वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये गयें है ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, (तंजहा) जैसे कि–(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त, (तत्थ णं जे ते) उन में वे (बद्धेल्लया) बद्ध वैक्रिय शरीर हैं (ते णं संखिज्जा) वे संख्येय हैं और उनका (समए २ अवहीरमाणा २) समय २ में अपहरण करने से (संखेज्जेणं कालेणं) संख्येय कालसे (अवहीरंति) अपहरण

---

† जिस समय संमूर्च्छिमों का अन्तर काल होता है उसी समय मनुष्य संख्येयक पद वाले होते हैं, अन्य काल में नहीं होते।

‡ क्रोड की संख्या को क्रोड से गुणा करने पर कोटाकोटि होते हैं।

÷ आठ २ अंकों का एक यमल पद होता है।

× पहिले और तीसरे वर्ग के साथ गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त हो उतनी ही बद्ध

होते हैं, परन्तु (नो चेव णं अवहिया सिया) किसी ने *अपहरण नहीं किये, (मुक्केल्लया) मुक्त वैक्रिय शरीर (जहा ओहिया) जैसे औघिक (ओरालियाणं) औदारिकों के (मुक्केल्लया) मुक्त शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये। (मणुस्साणं भंते!) हे भगवन्! मनुष्यों के (केवइया) कितने प्रकार से (आहारगसरीरा पण्णत्ता?) आहारक शरीर प्रतिपादन किये गये हैं? (गोयमा! दुविहा पण्णत्ता,) हे गौतम! दो प्रकारसे प्रतिपादन किये गये हैं (तंजहा) जैसे कि–(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उनमें जो वे †बद्ध आहारक शरीर हैं (ते णं सिअ अत्थि) वे कदाचित् होते हैं (सिअ नत्थि,) कदाचित् नहीं भी होते हैं, (जइ अत्थि) यदि हों तो (जहन्नेणं) जघन्य से (एक्को वा) एक अथवा (दो वा तिण्णि वा) दो या तीन या (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (सहस्सपुहत्तं,) सहस्रपृथक्त्व हों, (मुक्केल्लया) मुक्त (जहा ओहिया,) औघिकों के समान होते हैं, (तेअगकम्मगसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा) जैसे (एएसिं चेव) इनके (ओरालिआ) औदारिक शरीर होते हैं, (तहा भाणिअव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये।

(वाणमंतराणं ओरालिअसरीरा) वानव्यन्तरों के औदारिक शरीर (जहा नेरइयाणं,) नारकियों के समान होते हैं। (वाणमन्तराणं भंते!) हे भगवन्! वानव्यन्तरों के (केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता?) वैक्रिय शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं (गोयमा!) हे गौतम! (दुविहा पण्णत्ता,) दो प्रकारसे प्रतिपादन किये गये हैं (तंजहा-) जैसे कि—(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य) मुक्त, (तत्थ णं जे ते) उन में जो वे (बद्धेल्लया) बद्ध शरीर हैं (तेणं असंखेज्जा,) वे असंख्येय हैं, क्योंकि (असंखिज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के (अवहीरंति कालओ,) काल से अपहरण होते हैं, (खेत्तओ) क्षेत्र से (असंखिज्जाओ सेढीओ) असंख्येय श्रेणियां जो कि (पयरस्स असंखिज्जइभागो) प्रतर के असंख्यातवें भाग में हों, (तासिणं सेढीणं) उन श्रेणियों की (विक्खम्भसूई) विष्कम्भसूचि (संखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो‡ पयरस्स,) प्रतर के संख्येय योजन शत वर्गों की ÷ अंश रूप हो। (मुक्केल्लया) मुक्त वैक्रिय शरीर (जहा ओहिआ ओरालिआ) जैसे औघिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये। तथा (आहारगसरीरा दुविहा वि) दोनों

---

* सिर्फ उपमालंकार दिया गया है।

† क्योंकि इनका अन्तर काल होता है

‡ पलिभागो—प्रतिभागः—अंशः।

प्रकार के आहारक शरीर (जहा असुरकुमाराणं) जैसे असुर कुमारों के होते हैं (तहा भाणियव्वा ।) उसी प्रकार कहना चाहिये । (वाणमंतराणं भंते !) हे भगवन् ! बानव्यन्तर देवों के (केवइया तेअगकम्मसरीरा पएणत्ता ?) कितने प्रकार से तैजस और कार्मण शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !) हे गौतम ! (जहा एएसिं चेव वेउव्विय सरीरा) जैसे इनके वैक्रिय शरीर होते हैं (तहा) उसी प्रकार (तेअगकम्मसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (भाणिअव्वा ।, कहना चाहिये ।

[(जोइसियाणं भंते !) हे भगवन् ! ज्योतिषियों के (केवइया ओरालिअसरीरा पएणत्ता ?) औदारिक शरीर कितने प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं (तंजहा-) जैसे कि—(जहा नेरइयाणं) जिस प्रकार नारकियों के होते हैं (तहा भाणियव्वा ।) उसी प्रकार कहना चाहिये ।]

(जोइसियाणं भंते !) हे भगवन ! ज्योतिषियों के (केवइया वेउव्वियसरीरा पएणत्ता ?) कितने प्रकार से वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा ! दुविहा पएणत्ता,) हे गौतम ! दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, (तंजहा-) जैसे कि– (बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त । (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया य) उनमें जो वे बद्ध शरीर हैं (जाव) यावत् (तासि णं सेढीणं) उन श्रेणियों की (विक्खंभसूई) विष्कम्भसूचि (बेछप्पएणंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स) *प्रतर के अंश के २५६ अंगुल वर्ग प्रमाण, (मुक्केल्लया) मुक्त (जहा ओहिआ ओरालिआ) जैसे औघिक औदारिक शरीर होते हैं,(तहा भाणिअव्वा ।) उसी प्रकार कहना चाहिये । (आहरयसरीरा) आहारक शरीर (जहा नेरइयाणं) जैसे नारकियों के होते हैं (तहा भाणिअव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये (तेअगकम्मसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा एएसिं चेव) जैसे इनके (वेउव्वियसरीरा) वैक्रिय शरीर होते हैं (तहा भाणिअव्वा ।) उसी प्रकार कहना चाहिये ।

(वेमाणियाणं भंते !) हे भगवन् ! वैमानिक देवों के (केवइआ ओरालिअसरीरा पएणत्ता ?) कितने प्रकार से औदारिक शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !) हे गौतम ! (जहा नेरइयाणं) जिस प्रकार नारकियों के होते हैं (तहा भाणिअव्वा,) उसी प्रकार कहना चाहिये, (तेअगकम्मसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा एएसिं

---

* यथोक्तरीत्या प्रतर के एक २ अंशको ज्योतिषी देव अपहरण करें तो वह सम्पूर्ण अपहरण हो सकता है, अथवा एक २ ज्योतिषी देव उक्त प्रमाण से स्थापन किया जाय तो प्रतर पूरा हो सकती है । और व्यन्तरों से ज्योतिषी देव संख्यातगुणे अधिक होते हैं ।

चेव) जैसे इनके (वेउव्वियसरीरा) वैक्रिय शरीर होते हैं, (तहा भाणिअव्वा।) उसी प्रकार कहना चाहिये।

(वेमाणियाणं भंते !) हे भगवन् ! वैमानिक देवों के (केवइया ओरालिअसरीरा पएणत्ता ?) कितने प्रकार से औदारिक शरीर प्रतिपादन किये गये हैं ? (गोयमा !) हे गौतम ! (जहा नेरइयाणं) जिस प्रकार नारकियों के होते हैं (तहा भाणियव्वा।) उसी प्रकार कहना चाहिये। (वेमाणियाणं भंते !) हे भगवन् ! वैमानिक देवों के (केवइया वेउव्वियसरीरा पएणत्ता?) कितने प्रकार से वैक्रिय शरीर प्रतिपादन किये गये हैं? (गोयमा !) हे गौतम ! (दुविहा पएणत्ता.) दो प्रकार से प्रतिपादन किये गये हैं, (तंजहा-) जैसे कि—(बद्धेल्लया य) बद्ध और (मुक्केल्लया य,) मुक्त। (तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया) उन में जो वे बद्ध शरीर हैं (ते णं असंखिज्जा,) वे असंख्येय हैं, क्योंकि-(असंखिज्जाहिं) असंख्येय (उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं) उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के (अवहीरंति कालओ,) काल से अपहरण होते हैं। (खेतओ) क्षेत्र से (असंखिज्जाओ सेढीओ) असंख्येय श्रेणियां, जो कि (पयरस्स असंखेज्जइभागो,) प्रतर के असंख्यातवें भाग में हो, (तासि णं सेढीणं) उन श्रेणियों की (विक्खंभसूई) विष्कम्भसूचि (अंगुलबीयवग्गमूलं) प्रमाणांगुल के द्वितीय वर्ग मूल को (तइयवग्गमूलपडुप्पएणं) * तृतीय वर्ग मूल के साथ गुणा करने से होती है (अहव णं) अथवा (अंगुलतइयवग्गमूलं) प्रमाणांगुल के तृतीय वर्ग मूल के (घणप्पमाण-मेत्ताओ) सिर्फ †घन प्रमाण (सेढीओ,) श्रेणियां हों, (मुक्केल्लया य) मुक्त वैक्रिय शरीर (जहा ओहिया ओरालियाणं) जैसे औधिक औदारिक शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा।) उसी प्रकार कहना चाहिये। (आहारयसरीरा) आहारक शरीर (जहा नेरइयाणं) नारकियों के समान होते हैं, (तेअगकम्मसरीरा) तैजस और कार्मण शरीर (जहा एएसिं चेव) जैसे इनके (वेउव्वियसरीरा) वैक्रिय शरीर होते हैं (तहा भाणियव्वा।) उसी प्रकार कहना चाहिये। (से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे,) यही सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम है, (से तं खेत्तपलिओवमे,) और यही क्षेत्र पल्योपम है तथा (से तं पलिओवमे,)यही पल्योपम है और (से तं विभागणिप्फएणे) यही विभागनिष्पन्न और (से तं कालप्पमाणे) यही काल प्रमाण है (सू० १४५)

---

* प्रमाणाङ्गुल प्रतर क्षेत्र की अपेक्षा सत्कल्पना से असंख्येय श्रेणियां होती हैं, लेकिन असत्कल्पना के द्वारा यदि २५६ श्रेणियां मान ली जायें तो इसका प्रथम वर्गमूल १६, द्वितीय ४, और तृतीय २ है। अतः द्वितीय वर्ग मूल ४ को तृतीय वर्ग मूल २ के साथ गुणा करने पर ४ × २ = ८ होते हैं। यही प्रमाण विष्कम्भसूचि का जानना चाहिये।

† अर्थात् तीसरे वर्ग मूल को घन रूप करने से २ × २ × २ = ८ ही होते हैं। इसलिये यही विष्कम्भसूचि यहां पर ग्रहण करना चाहिये।

भावार्थ—मनुष्यों के दो भेद हैं, संमूर्छिम और गर्भज। वात पित्तादि से उत्पन्न होने वाले को संमूर्च्छिम और स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होने वाले को गर्भज कहते हैं। उनमें से संमूर्च्छिम तो कदाचिद् नहीं भी होते। क्योंकि इनकी जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर काल–चौवीस मुहूर्त्त की होता है। कदाचित् वे उत्पन्न हो जांय तो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त स्थिति के पश्चात् सब का नाश होना संभव है। यदि होवें भी तो जघन्य से एक या दो अथवा तीन, और उत्कृष्ट से असंख्यात तक हो सकते हैं। परन्तु गर्भज तो सदा संख्येय ही होते हैं। असंख्येय नहीं होते। जब सम्मूर्च्छिम नहीं होते तब जघन्य पदसे गर्भज ही ग्रहण किये जाते हैं, नहीं तो जघन्य पदवर्तित्व ही न होता। तथा वे स्वभाव से संख्येय ही होते हैं। इसी कारण उनके बद्ध शरीर भी *संख्येय हैं। पुनः इस का विशेष वर्णन करते हैं।

आठ २ अंक के रूपकों का एक २ यमल पद होता है। इसीको सामयिकी संज्ञा जाननी चाहिये। इन्हीं तीन यमल पदों के समाहार को त्रियमल पद कहते हैं। अर्थात् ८×३=२४ चौवीस अंकोंके स्थान रूपको अथवा सौलह अंक की अपेक्षा ऊपर के आठ अंकों को त्रियमल पद कहते हैं। इनका भावार्थ एक ही है। इस लिये यमल पद के ऊपर उक्त गर्भज मनुष्य होते हैं। तात्पर्य यह है कि चोवीस अंकों के बाद जघन्य पद वाले गर्भज मनुष्यों की संख्या होती है।

क्या चार से आदि लेकर पांच यमल पद भी होते हैं?

नहीं होते। क्योंकि चार यमल पदों के समाहार समूह को चतुर्थ यमल पद कहते हैं। इसलिये बत्तीस अंक रूप अथवा चतुर्थ यमल अर्थात् चौवीस अंक स्थानकों के ऊपर वाले जो अंक रूप हैं उसी को चतुर्थ यमल पद कहना चाहिये। इनका भावार्थ एक ही है। तात्पर्य यह है कि उस चतुर्थ यमल पद के नीचे उनतीस अंक स्थान के, जो आगे कहे जायेंगे, उनमें गर्भज मनुष्यों की संख्या होती है।

अथवा दो वर्ग जिनका स्वरूप अब कहा जायगा, उन (यमल पदों) की सामयिकी संज्ञा होती है। इसी तरह तीन यमल पदों के समाहार को त्रियमल पद अर्थात् षट् वर्ग कहते हैं। इसलिये उसके ऊपर तथा चतुर्थ यमल पद अर्थात् आठवें वर्ग के नीचे यह मनुष्य संज्ञा होती है याने छठे वर्ग के ऊपर

* 'संख्येया कोटीकोट्यः' कोडाकोड की संख्या को 'संख्येय' कहते हैं।

और सातवें वर्ग के नीचे इन गर्भज मनुष्यों की संख्या प्राप्त होती है। यहां भी रूप के उनतीस अंक जानने चाहिये।

तथा अब छठे वर्ग को पंचम वर्ग से गुणित करें तो प्रस्तुत मनुष्य संख्या लब्ध होती है।

छठा वर्ग और पांचवां वर्ग किसको कहते हैं ?

किसी विवक्षित राशि को उसी राशि के द्वारा गुणा करने से जो गुणन-फल आवे, उसको उस राशि का 'वर्ग' कहते हैं।

जैसे कि—एक का वर्ग एक ही होता है, क्योंकि एक को एक से गुणा करने पर १×१=१ एक ही होता है। किन्तु वृद्धिका रहितपना होने से इस को वर्ग नहीं कह सकते। इस कारण एक को छोड़ कर दो से गिनती प्रारंभ की जाती है। जैसे कि—दो को दो से गुणा करने पर २×२=४ चार होते हैं। यही प्रथम वर्ग है। इसी प्रकार ४ का वर्ग ४×४=१६, यह द्वितीय वर्ग है। तथा १६ का वर्ग १६×१६=२५६, यह तृतीय वर्ग है। तथा-२५६ को इसी राशि से गुणा करने पर चतुर्थ वर्ग का रूप २५६×२५६=६५५३६ निकलता है। जिस का यंत्र यह है—

	२	५	६	
२	२ / १	० / ३	६ / ३	६
५	० / १	२ / ५	० / ३	३
६	४ / ०	० / १	२ / १	५
		६	५	

फिर इसी राशि को इसी के साथ गुणा किया जाय। जैसे कि—

६५५३६×६५५३६=४२९४९६७२९६, चार अरब, उनतीस करोड़, उनंचास लाख, सरसठ हजार, दो सौ छयानवे। यथा—

"चत्तारि य कोडिसया, अउणत्तीसं च हुंत्ति कोडीओ।

अउणावन्नं लक्खा, सत्तट्ठिं चेव य सहस्सा ॥ १ ॥

दो य सया छन्नउया, पंचमवग्गो इमो विणिद्दिट्ठो।"

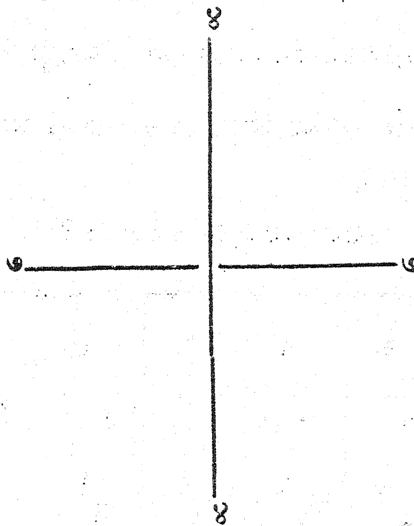
अर्थात् चार सौ उनतीस क्रोड़, उनचा सलाख सणसठ हज़ार दो सौ छयानवे, वह पंचम वर्ग है

इसका *यंत्र निम्न लिखित है:—

	६	५	५	३	६	
६	६/३	०/३	०/३	८/१	६/३	६
५	८/१	५/१	५/१	९/०	८/१	७
५	०/३	५/२	५/२	५/१	०/३	२
३	०/३	५/२	५/२	५/१	०/३	९
६	६/३	०/३	०/३	८/१	६/३	६
	४	२	९	४	९	

* यह गणना और यन्त्रावलि इसलिये दिखलाई गई है कि पाठकों को मनुष्य संख्या भली प्रकार से ज्ञात हो जाय।

इस यंत्र की शुद्धि के लिये नीचे का कोष्टक देखना चाहिये।



इसी राशि को इसी राशिके साथ अर्थात् ४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६ गुणा करने से छठा वर्ग निकलता है। जैसे कि–१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६। इसकी गिनती निम्नलिखित तीन गा थाओं द्वारा की जाती है। जैसे कि—

"लक्खं कोडाकोडी, चउरासीयं भवे सहस्साइं।

चत्तारि अ सत्तट्ठा, हुंति सया कोडीकोडीणं ॥ १ ॥

चउयालं लक्खाइं, कोडीणं सत्त चेव य सहस्सा।

तिन्नि य सया य सत्तरि, कोडीणं हुंति नायव्वा ॥ २ ॥

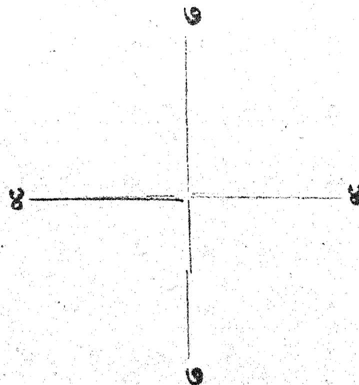
पंचाणउइ लक्खा, एगावन्नं भवे सहस्साइं।

छस्सोलसोत्तरसया, एसो छट्ठो हवइ वग्गो ॥ ३ ॥"

भावार्थ—एक लाख चौरासी हज़ार चार छः सौ सरसठ क्रोडाकोडा, चौवालीस लाख सात हज़ार तीन सौ सत्तर कोड, पंचानवे लाख इक्यावन हज़ार छः सौ सोलह, यह छठा वर्ग होता है।

	४	२	९	४	९	६	७	२	९	६	
४	२४	१२	५४	२४	५४	३६	४२	१२	५४	३६	६
२	३६	१८	८१	३६	८१	५४	६३	१८	८१	५४	१
९	०८	०४	१८	०८	१८	१२	१४	०४	१८	१२	६
४	२८	१४	६३	२८	६३	४२	४९	१४	६३	४२	१
९	२४	१२	५४	२४	५४	३६	४२	१२	५४	३६	५
६	३६	१८	८१	३६	८१	५४	६३	१८	८१	५४	५
७	१६	०८	३६	१६	३६	२४	२८	०८	३६	२४	९
२	३६	१८	८१	३६	८१	५४	६३	१८	८१	५४	०
९	०८	०४	१८	०८	१८	१२	१४	०४	१८	१२	७
६	१६	०८	३६	१६	३६	२४	२८	०८	३६	२४	३
	१	८	४	४	६	७	४	४	०	७	

इस यंत्र की शुद्धि के लिये निम्न लिखित यंत्र है——

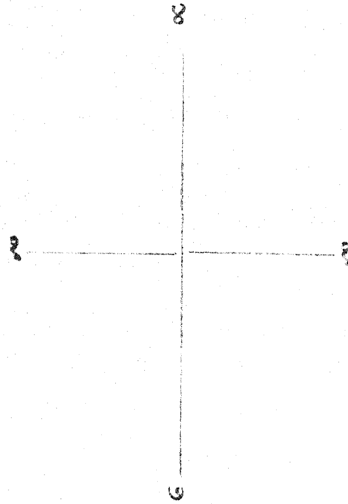


इस छठे वर्ग को पूर्वोक्त पंचम वर्ग के साथ गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, उसमें जघन्य पद वाले गर्भज मनुष्य होते हैं। जैसे—

४२९४९६७२९६ × १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ = ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६। यह संख्या नीचे के यंत्र से जानना चाहिये—

	१	८	४	४	६	७	४	४	०	७	३	७	०	९	५	५	१	६	१	६	
४	०६	४८	२४	२४	३६	४२	२४	२४	००	४२	१८	४२	००	५४	३०	३०	०६	३६	०६	३६	६
२	०९	७२	३६	३६	५४	६३	३६	३६	००	६३	२७	६३	००	८१	४५	४५	०९	५४	०९	५४	३
९	०२	१६	०८	०८	१२	१४	०८	०८	००	१४	०६	१४	००	१८	१०	१०	०२	१२	०२	१२	३
४	०७	५६	२८	२८	४२	४९	२८	२८	००	४९	२१	४९	००	६३	३५	३५	०७	४२	०७	४२	०
९	०६	४८	२४	२४	३६	४२	२४	२४	००	४२	१८	४२	००	५४	३०	३०	०६	३६	०६	३६	५
६	०९	७२	३६	३६	५४	६३	३६	३६	००	६३	२७	६३	००	८१	४५	४५	०९	५४	०९	५४	९
७	०४	३२	१६	१६	२४	२८	१६	१६	००	२८	१२	२८	००	३६	२०	२०	०४	२४	०४	२४	३
२	०९	७२	३६	३६	५४	६३	३६	३६	००	६३	२७	६३	००	८१	४५	४५	०९	५४	०९	५४	४
९	०२	१६	०८	०८	१२	१४	०८	०८	००	१४	०६	१४	००	१८	१०	१०	०२	१२	०२	१२	५
६	०४	३२	१६	१६	२४	२८	१६	१६	००	२८	१२	२८	००	३६	२०	२०	०४	२४	०४	२४	३
	७	९	२	२	८	१	६	२	५	१	४	२	६	४	३	३	७	५	९		

इस यंत्र की शुद्धि के लिये नीचे का यंत्र देखिये—



ऊपर दी हुई संख्या को कोडाकोड अथवा और किसी उपाय से नहीं गिन सकते। इस लिये अन्तिम अंक से प्रारम्भ कर शुरू के अंक तक बतलाने के लिये ये दो गाथायें दी जाती हैं—

"छत्तिन्नि तिन्नि सुन्नं, पंचेव य नव य तिन्नि चत्तारि।
पंचेव तिरिण नव पंच सत्त तिन्नेव तिन्नेव ॥ १ ॥
चउ छ दो चउ एक्को, पण दो छक्केक्कगो य अट्ठेव।
दो दो नव सत्तेव य, अंकट्ठाणा पराहुत्ता ॥ २ ॥"

भावार्थ सरल है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि इन उनतीस अंक वाले रूप में जघन्य पद वाले गर्भज मनुष्य होते हैं।

अब अन्य प्रकार से इसका वर्णन किया जाता है—

सब से प्रथम राशि को अर्द्ध करना चाहिये। पश्चात् उस अर्द्ध का भी अर्द्ध करना चाहिये। फिर इसका भी अर्द्ध करना चाहिये। इस अनुक्रम से करते करते यहां तक करना कि जिससे उसके छयानवे हिस्से हो जायँ, और अन्त में परिपूर्ण एक रूप रहे, खंडित रूप न हो। उस राशि से गर्भज मनुष्यों की संख्या जाननी चाहिये। वह राशि यही है, अर्थात् जिसके पूर्व उनतीस अंक स्थानक निष्पन्न हुए हों, अन्य कोई राशि नहीं है। इस राशि को छेदन करते हुए-आधी

आधी करते हुए छयानवे छेदन हो जाते हैं और अन्त में परिपूर्ण शेष एक रह जाता है। इसी को छयानवे छेदनक राशि कहते हैं।

'छेदनक' किस प्रकार से होता है ?

जैसे कि—प्रथम वर्ग के ४ रूप पहिले दिखा चुके हैं। उसी प्रकार छेदन करने के लिये पहिले इसका आधा किया, तब २ हुआ। तदनन्तर इसी का अर्द्ध १ हुआ। तात्पर्य यह है कि—प्रथम वर्ग चार रूप के दो छेदनक होते हैं, अर्थात् वही वर्ग दो वार आधे से आधा किया जा सकता है, इस से अधिक वार नहीं। इस लिये इसके दो ही छेदनक हैं। इसी प्रकार द्वितीय वर्ग षोडश रूप में चार छेदनक हैं। यथा $\frac{16}{2}$ = ८ आठ, यह पहिला छेदनक है। फिर $\frac{8}{2}$ = ४ चार, यह दूसरा छेदनक है तथा $\frac{4}{2}$ = २ दो, यह तीसरा; और $\frac{2}{2}$ = १ एक, यह चौथा छेदनक है। इसी प्रकार तृतीय वर्ग २५६ रूप के आठ छेदनक होते हैं। यथा—$\frac{256}{2}$ = १२८ पहिला, $\frac{128}{2}$ = ६४ दूसरा, $\frac{64}{2}$ = ३२ तीसरा, $\frac{32}{2}$ = १६ चौथा, $\frac{16}{2}$ = ८ पांचवां, $\frac{8}{2}$ = ४ छठा, $\frac{4}{2}$ = २ सातवां; और $\frac{2}{2}$ = १ यह आठवां छेदनक है।

इसी प्रकार पांचवें वर्ग को छठे वर्ग से गुणित करने पर ७९२२८१६२५१ ४२६४३३७५९३५४३९५०३३६, यह राशि होती है। तथा पांचवें और छठे वर्ग के छेदन योग करने से इस राशि के छेदनक निकलेंगे। अर्थात् पंचम वर्ग ३२ और छठा ६४, इनका योग करने से ३२ + ६४ = ९६ छेदनक होते हैं। इसलिये स्वयमेव भाजित करके सावधानी से देखना चाहिये। यही जघन्य पद का स्वरूप है। इसके अनन्तर उत्कृष्ट पद का वर्णन किया जाता है—

उत्कृष्ट से मनुष्यों के बद्धौदारिक शरीर अनेक हैं। इसका प्रमाण यह है कि काल से वे असंख्येय उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों की राशि के तुल्य हैं। क्षेत्र से यदि एक मनुष्य का रूप प्रक्षिप्त कर दिया जाय और फिर उसके शरीर से एक २ आकाश श्रेणि अपहरण की जाय तो असंख्येय उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जितना काल लगता है।

अथवा प्रमाणांगुल श्रेणि की जो प्रदेश राशि है उसके प्रथम वर्ग मूल को तृतीय वर्ग मूल की प्रदेश राशि के साथ गुणित करने पर जो फल आवे उस क्षेत्रप्रमाण में से एक २ मनुष्य शरीर अपहरण किया जाय। तात्पर्य यह कि यदि एक मनुष्य का शरीर हो तो यथोक्त प्रमाण क्षेत्र की श्रेणि में से प्रतिसमय एक २ को अनुक्रम से निकाला जाय तो वह असंख्येय उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहरण होती है, लेकिन ऐसा नहीं, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट गर्भज तथा

संमूर्छिम मनुष्य योजित करने से इतने ही होते हैं, अधिक नहीं। इस प्रकार मनुष्य के बद्धौदारिक शरीर होते हैं।

मुक्तौदारिक शरीर तो औधिकों के सदृश जानना चाहिये।

बद्ध वैक्रिय शरीर संख्येय हैं, क्योंकि ये सिर्फ वैक्रियलब्धि वाले गर्भज मनुष्यों के ही होते हैं, तो भी पृच्छा के समय कितने ही संभव हैं। तथा प्रतिसमय एक २ अपहरण करने से संख्येय काल व्यतीत हो जाते हैं। यह प्ररूपणा केवल कल्पना मात्र ही है।

तथा मुक्त वैक्रिय शरीर औधिक के समान जानना चाहिये।

बद्ध तथा मुक्त आहारक शरीर जैसे इनके औधिक होते हैं उसी प्रकार जानना चाहिये।

तैजस और कार्मण शरीर इनके औदारिकों के सदृश होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यों के पांच शरीर होते हैं। इसके पश्चात् व्यन्तरों के शरीरों का वर्णन किया जाता है।

व्यन्तरों के सब शरीर नारकियों के समान जानना चाहिये। लेकिन विशेष इतना ही है कि * व्यन्तर नारकियों से असंख्येय गुणे हैं।

व्यन्तर कितने अंश से सब प्रतर को अपहरण कर सकते हैं?

संख्येय † योजन शत वर्गों का जो अंश है उससे अपहरण हो सकते हैं।

ज्योतिषियों का सभी वर्णन सुगम ही है, लेकिन विशेष इतना ही है कि इनकी विष्कम्भसूचि व्यन्तरों की ‡ विष्कम्भसूचि से संख्येय गुणी अधिक होती है।

---

* इनके असंख्येय श्रेणियों की विष्कम्भसूचि का प्रमाण प्रज्ञापना सूत्र के महादण्डक पदानुसार स्वयमेव जानना चाहिये। क्योंकि वे पूर्वोक्त तिर्यञ्च पञ्चेंद्रियों की विष्कम्भ सूचि की अपेक्षा असंख्येय गुणे हीन होते हैं। अर्थात् प्रज्ञापना सूत्र महादण्डक पद में इनकी अपेक्षा व्यन्तरों का असंख्येय गुण हीन पाठ प्रतिपादन किया गया है।

† यदि एक २ व्यन्तर संख्येय योजन शत वर्ग रूप प्रतर के भाग को अपहरण करें तो सब प्रतर अपहरण हो सकते हैं। अथवा यदि एक व्यन्तर उतने भाग मात्र में स्थापन किया जाय तो सभी प्रतर पूर्ण हो जाते हैं।

‡ प्रज्ञापना महादण्डक में व्यन्तरों से संख्येय गुणे अधिक औधिक ज्योतिषी प्रतिपादन किये गये हैं। और यहां पर भी प्रतरापहार क्षेत्र उनके क्षेत्र से संख्येय गुणे हीन होते हैं।

यदि एक २ ज्योतिषी २५६ प्रमाणांगुल के वर्ग रूप प्रतर के प्रतिभाग को अपहरण करें तो समस्त प्रतर अपहरण हो सकता है। अथवा इतने ही अंश में यदि एक २ ज्योतिषी स्थापन किया जाय तो समग्र प्रतर पूर्ण हो सकता है। इस लिये व्यन्तरों से ज्योतिषी संख्येय गुणे अधिक हैं।

वैमानिकों ÷ के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिये। विशेष इतना ही है कि—उन श्रेणियों की विष्कम्भसूचि प्रमाणांगुल के द्वितीय वर्गमूल को तृतीय वर्गमूल से गुणा करना चाहिये। इसका भावार्थ यह है कि प्रमाणांगुल प्रतर क्षेत्र में सद्रूप असंख्येय श्रेणियाँ होती हैं तो भी कल्पना से २५६ मान ली जायँ तो इसका प्रथम वर्गमूल १६, द्वितीय ४, तृतीय २ होता है। पश्चात् द्वितीय वर्गमूल ४ को तृतीय वर्गमूल २ के साथ गुणा करने पर—४ × २ = ८ निष्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार यहां पर सद्रूप से असंख्येय श्रेणियां तथा कल्पना से ८ श्रेणि रूप विस्तार सूचि ग्रहण करना चाहिये।

अथवा तृतीय वर्गमूल द्विक रूप का जो घन २ × २ × २ = ८ होता है, उन्हीं श्रेणियों की विष्कम्भसूचि होती है। दोनों का भावार्थ एक ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि भवनपत्योदिकों की सूचि से यह असंख्येय गुणी हीन होती है।

शेष भावार्थ क्षेत्र पल्योपम तक सरल ही है।

इस प्रकार दोनों भेद तथा उपलक्षण से अन्य उच्छ्वासादिक कालविभाग भी वर्णन किये गये हैं।

यहां पर काल प्रमाण का स्वरूप पूरा हुआ। (सू० १४५)

इसके अनन्तर भाव प्रमाण का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है—

भाव प्रमाण।

से किं तं भावप्पमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—गुणप्पमाणे नयप्पमाणे संखप्पमाणे (सू० १४६)

÷ विशेष इतना ही है कि प्रज्ञापना सूत्र में भवनपति, व्यन्तर और नारकी, ये ज्योतिषियों की अपेक्षा प्रत्येक २ सब से असंख्येय गुणे हीन वर्णन किये गये हैं।

से किं तं गुणप्पमाणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—जीवगुणप्पमाणे अजीवगुणप्पमाणे य ।

से किं तं अजीवगुणप्पमाणे ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णगुणप्पमाणे गंधगुणप्पमाणे रसगुणप्पमाणे फासगुणप्पमाणे संठाणगुणप्पमाणे ।

से किं तं वण्णगुणप्पमाणे ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णगुणप्पमाणे जाव सुक्किल्लवण्णगुणप्पमाणे, से तं वण्णगुणप्पमाणे ।

से किं तं गंधगुणप्पमाणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुरभिगंधगुणप्पमाणे दुरभिगंधगुणप्पमाणे, से तं गंधगुणप्पमाणे ।

से किं तं रसगुणप्पमाणे ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—तित्तरसगुणप्पमाणे जाव महुररसगुणप्पमाणे, से तं रसगुणप्पमाणे ।

से किं तं फासगुणप्पमाणे ? अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—कक्खडफासगुणप्पमाणे जाव लुक्खफासगुणप्पमाणे, से तं फासगुणप्पमाणे ।

से किं तं संठाणगुणप्पमाणे ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिमंडलसंठाणगुणप्पमाणे वट्टसंठाणगुणप्पमाणे तंस-संठाणगुणप्पमाणे चउरंससंठाणगुणप्पमाणे आययसंठाणगुणप्पमाणे, से तं संठाणगुणप्पमाणे, से तं अजीवगुणप्पमाणे ।

पदार्थ—विद्यमान पदार्थों के और वर्णादिकों के ज्ञानादि परिणाम का बोध होना उसे *भाव कहते हैं, और जिसके द्वारा पदार्थों का स्वरूप जाना जाय अथवा उनका निर्णय किया जाय वही † प्रमाण है, और वह (तिविहे पएणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(गुणप्पमाणे) जिन गुणों से द्रव्यादिकों का ज्ञान हो उसे गुण प्रमाण कहते हैं, (नयप्पमाणे) जिन अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं का एक ही अंश द्वारा निर्णय किया जाय उसे ‡ नय प्रमाण कहते हैं, और (संखप्पमाणे) जिसके द्वारा संख्या की जाय उसे ÷ संख्या प्रमाण कहते हैं।

(से किं तं गुणप्पमाणे ?) गुण प्रमाण किसे कहते हैं ? (गुणप्पमाणे) जिन गुणों से द्रव्यादिकों का ज्ञान हो उसे गुण प्रमाण कहते हैं। और वह (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(जीवगुणप्पमाणे) जीव गुण प्रमाण (अजीवगुणप्पमाणे।) और अजीव गुण प्रमाण।

(से किं तं अजीवगुणप्पमाणे ?) × अजीव गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (अजीवगुणप्पमाणे) जिन गुणों के द्वारा अजीव पदार्थों की सिद्धि हो उसे अजीव गुण प्रमाण कहते हैं। और वह (पंचविहे पएणत्ते) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(वएणगुणप्पमाणे) वर्ण गुण प्रमाण (गंधगुणप्पमाणे) गन्ध गुण प्रमाण (रसगुणप्पमाणे) रस गुण प्रमाण (फासगुणप्पमाणे) स्पर्श गुण प्रमाण और (संठाणगुणप्पमाणे) संस्थान गुण प्रमाण।

(से किं तं वएणगुणप्पमाणे ?) वर्ण गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (वएणगुणप्पमाणे) जिन वर्णों के द्वारा द्रव्यों का ज्ञान हो उसे वर्ण गुण प्रमाण कहते हैं, और वह पंचविहे पएणत्ते,) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(कालवएणगुणप्पमाणे,)

---

* भवनं भावो—वस्तुनः परिणामो ज्ञानादिः वर्णादिश्च।

† प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्।

‡ नीतयो नयाः—अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन एकांशपरिच्छित्तयः त एव प्रमाणं नय-प्रमाणम्।

÷ संख्यानं संख्या सैव प्रमाणं संख्याप्रमाणम्।

× अजीव गुण प्रमाण के विषय मे अल्पवक्तव्य होने से प्रथम इसी का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है।

कृष्णादि वर्णों के द्वारा जिन पदार्थों का ज्ञान हो उसे कृष्णवर्ण कहते हैं, इसी प्रकार (जाव सुक्किल्लगुणप्पमाणे ।) शुक्ल वर्ण गुण प्रमाण तक जानना चाहिये (से तं वण्णगुणप्पमाणे ।) इस लिये वही वर्ण गुण प्रमाण है ।

(से किं तं गंधगुणप्पमाणे?) गंध गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (गंधगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का गन्ध द्वारा ज्ञान हो उसे गंध गुण प्रमाण कहते हैं और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(सुरभिगंधगुणप्पमाणे,) सुरभिगन्ध-सुगन्ध गुण प्रमाण और (दुरभिगंधगुणप्पमाणे,) दुरभिगन्ध-दुर्गन्ध गुण प्रमाण, (से तं गंधगुणप्पमाणे ।) यही गन्ध गुण प्रमाण है ।

(से किं तं रसगुणप्पमाणे ?) रस गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (रसगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का बोध रसों के द्वारा हो उसे रस गुण प्रमाण कहते हैं, और वह (पंचविहे पण्णत्ते,) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(तित्तरसगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का तिक्त-तीक्ष्ण रसों के द्वारा ज्ञान हो उसे तिक्त रस गुण प्रमाण कहते हैं । इसी प्रकार (जाव महुररसगुणप्पमाणे,) मधुर रस गुण प्रमाण तक जानना ।

(से किं तं फासगुणप्पमाणे ?) स्पर्श गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (फासगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का स्पर्शों के द्वारा बोध हो उसे स्पर्श गुण प्रमाण कहते हैं, और वह (अट्ठविहे पण्णत्ते.) आठ प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(कक्खडफासगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का कर्कश-कठिन स्पर्शों द्वारा ज्ञान हो उसे कर्कश स्पर्श गुण प्रमाण कहते हैं । इसी प्रकार (जाव * लुक्खफासगुणप्पमाणे,) रूक्ष स्पर्श गुण प्रमाण तक जानना चाहिये, (से तं फासगुणप्पमाणे ।) यही स्पर्श गुण प्रमाण है ।

(से किं तं संठाणगुणप्पमाणे?) संस्थान गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (संठाणगुणप्पमाणे) जिन पदार्थों का बोध संस्थानों से हो उसे संस्थान गुण प्रमाण कहते हैं और वह (पंचविहे पण्णत्ते,) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा) जैसे कि—(परिमण्डलसंठाणगुणप्पमाणे) जो † वलयादि के समान हो उसे परिमंडल संस्थान जानना चाहिये,

---

* यावत् शब्द—मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्धादिकों का सूचक है ।

† चूड़ी ।

(वट्टसंठाणगुणप्पमाणे) जो लोहेके गोलक सदृश हो उसे वृत्त संस्थान गुण प्रमाण कहते हैं, (तंससंठाणगुणप्पमाणे) जो सिंघाड़े के फल के समान त्रिकोण हो उसे त्र्यंश संस्थान गुण प्रमाण कहते हैं, (चउरंससंठाणगुणप्पमाणे) चतुरस्र संस्थान गुण प्रमाण जो चारों ओर से समकोण हो और (आययसंठाणगुणप्पमाणे,) दीर्घ संस्थान गुणप्रमाण, (से तं संठाणगुणप्पमाणे,) यही संस्थान गुण प्रमाण है, और (से तं अजीवगुणप्पमाणे ।) यही अजीव गुण प्रमाण है।

भावार्थ—भाव प्रमाण उसे कहते हैं जिसके द्वारा पदार्थों का भली भांति ज्ञान हो। उसके तीन भेद हैं, जैसे कि-गुण प्रमाण १, नय प्रमाण २ और संख्या प्रमाण ३।

जिन गुणों से द्रव्यों का बोध हो उसे गुण प्रमाण कहते हैं, अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं का एक ही अंश के द्वारा वर्णन करना उसे नय प्रमाण कहते हैं और तीसरा संख्या प्रमाण है (सू० १४६)

गुण प्रमाण के दो भेद हैं, जैसे कि-जीव गुण प्रमाण और अजीव गुण प्रमाण।

अजीव गुण प्रमाण पांच प्रकार का है, जैसे कि-१ वर्ण गुण प्रमाण, २ गंध गुण प्रमाण, ३ रस गुण प्रमाण, ४ स्पर्श गुण प्रमाण और ५ संस्थान गुण प्रमाण।

वर्ण गुण प्रमाण पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि— कृष्णवर्ण गुण प्रमाण से लेकर शुक्लवर्ण गुण प्रमाण तक।

गंध गुण प्रमाण के दो भेद हैं, सुरभिगंध गुण प्रमाण और दुरभिगंध गुण प्रमाण।

रस गुण प्रमाण पांच प्रकार का है, जैसे कि—१ तिक्तरस गुण प्रमाण, २ कटुकरस गुण प्रमाण, ३ कषायरस गुण प्रमाण, ४ आचाम्लरस गुण प्रमाण और मधुररस गुण प्रमाण ५।

स्पर्श गुण प्रमाण के आठ भेद हैं। जैसे कि—कर्कशस्पर्श गुण प्रमाण, इसी प्रकार मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, ये स्पर्श गुण प्रमाण होते हैं

संस्थान गुण प्रमाण के पाँच भेद हैं जैसे कि-१ परिमण्डल संस्थान गुण प्रमाण, २ वृत्त संस्थान गुण प्रमाण, ३ त्र्यंस संस्थान गुण प्रमाण, ४ चतुरस्र संस्थान गुण प्रमाण और ५ दीर्घ संस्थान गुण प्रमाण।

इस प्रकार ये सभी अजीव गुण प्रमाण के भेद हैं। इसके अनन्तर जीव गुण प्रमाण का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिये—

जीव गुण प्रमाण।

से किं तं जीवगुणप्पमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा णाणगुणप्पमाणे दंसणगुणप्पमाणे चरित्तगुणप्पमाणे।

से किं तं णाणगुणप्पमाणे ? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे।

से किं तं पच्चक्खे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इंदिय पच्चक्खे अ णोइंदियपच्चक्खे अ।

से किं तं इंदियपच्चक्खे ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा सोइंदियपच्चक्खे चक्खुरिंदियपच्चक्खे घाणिंदियपच्चक्खे जिब्भिंदियपच्चक्खे फासिंदियपच्चक्खे, से तं इंदिय-पच्चक्खे।

से किं तं णोइंदियपच्चक्खे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-ओहिणाणपच्चक्खे मणपज्जवणाणपच्चक्खे केवलणाण पच्चक्खे, से तं णोइंदियपच्चक्खे, से तं पच्चक्खे।

पदार्थ—(से किं तं जीवगुणप्पमाणे ?) जीव गुण प्रमाण किसे कहते हैं, और वह कितने प्रकार का है ? (जीवगुणप्पमाणे) ज्ञानादि गुणों के द्वारा जिसकी सिद्धि हो उसे जीव गुण प्रमाण कहते हैं और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(णाणगुणप्पमाणे) ज्ञान गुण प्रमाण (दंसणगुणप्प-माणे) दर्शन गुण प्रमाण और (चरित्तगुणप्पमाणे।) चारित्र गुण प्रमाण।

(से किं तं णाणगुणप्पमाणे ?) ज्ञान गुण प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (णाणगुणप्पमाणे) जिसके द्वारा जीव की सिद्धि हो उसे ज्ञान गुण प्रमाण कहते हैं, और वह (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रति-

पादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(पच्चक्खे) *प्रत्यक्ष (अणुमाणे) अनुमान (ओवम्मे) औपम्य-उपमान और (आगमे ।) आगम ।

---

* अशेर्देवने । उ० । पा० ३ । सू० ६५ । 'अशुङ् व्याप्तौ' धातु से स प्रत्यय करने पर 'अक्ष' शब्द सिद्ध होता है । उज्ज्वलदत्तटीकायाम्—'अशोङ् याप्तौ' अतो देवनः वाच्ये सः । व्रश्चभ्रस्जेत्यादिना षत्वादि कार्यम् । 'अक्षोरथावयवे निमित्तके च' 'अक्षाणि पण्डितजना विदुरिन्द्रियाणि' 'अक्षः कर्षे तुषे चक्रे शकटव्यवहारयोः । आत्मज्ञे पाशके चाक्षं तुत्थेऽसौ वर्चलेन्द्रिये ॥१॥' 'क्षान्तेर' इति सः ।

तथा अश भोजने धातु से भिस् प्रत्यय करने पर भी अक्ष शब्द सिद्ध होता है । पश्चात् 'इको यणचि ।' पाणिनीय सूत्र से प्रति उपसर्ग के इक् मात्रको यण् हुआ : तब प्रत्यक्ष शब्द बन जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि जो ज्ञानरूपतया पदार्थों में व्याप्त होता है उसे अक्ष कहते है । वह कौन है ? जीव ।

और 'अश भोजने' धातु से जो अक्ष शब्द निष्पन्न होता है, उसका भावार्थ यह है कि जो सब अर्थोंको भोगता है या पालता है, वह अक्ष है । उसका भी मतलब जीव ही होता है ।

'गतादिषु प्रादयः ।' शाकटायन: ।२।१।२१। इस सूत्र से यहां पर द्वितीयातत्पुरुष समास हुआ है । 'प्रत्ययोऽव्ययीभावात् ।' २।१।१५०। इस सूत्र से जो अव्ययीभाव समास किया जाता है, वह इस स्थान पर उपादेय नहीं होता । क्योंकि अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्गीय है, और प्रत्यक्ष शब्द त्रिलिङ्गीय है । यथा—प्रत्यक्षा बुद्धिः, प्रत्यक्षो बोधः, प्रत्यक्षं ज्ञानम् । इस लिये सारांश यह हुआ कि जो ज्ञान जीवके साथ साक्षात्कारी करने वाला होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

तथाह न्यायदीपिकायां—"कश्चिदाह अक्षं नाम चक्षुरादिकमिन्द्रियं तत्प्रतीत्य यदुत्पद्यते तदेव प्रत्यक्षमुचितं नान्यत्" इति तदप्यसत् । आत्ममात्रसापेक्षाणामवधिमनःपर्ययकेवलानामिन्द्रियनिरपेक्षाणामपि प्रत्यक्षत्वविरोधात् । स्पष्टत्वमेव हि प्रत्यक्षत्वप्रयोजकं नेन्द्रियजन्यत्वम् । अत एव हि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ज्ञानत्वेन प्रतिपन्नानां मध्ये "आद्ये परोक्षम्" "प्रत्यक्षमन्यत्" इत्याद्ययोर्मतिश्रुतयोः परोक्षत्वकथनमन्येषां त्ववधिमनःपर्ययकेवलानां प्रत्यक्षत्ववाचो युक्तिः । कथं पुनरेतेषां प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वमिति चेत् रूढित इति ब्रूमः । अक्ष्णोति—व्याप्नोति अथवा जानातीत्यक्ष आत्मा, तन्मात्रापेक्षोत्पत्तिकं प्रत्यक्षमिति किमनुपपन्नम् ? इन्द्रियजन्यमप्रत्यक्षं तर्हि प्राप्तमिति चेत् हन्त विस्मरणशीलत्वं वत्सस्य । अवोचाम: खल्वौपचारिकं प्रत्यक्षत्वमक्षजज्ञानस्य । ततस्तस्याप्रत्यक्षत्वं कामं प्राप्नोतु, का नो हानिः । एतेनाक्षेभ्यः परावृत्तं परोक्षमित्यपि प्रतिविहितम् । अवैशद्यस्यैव परोक्षलक्षणत्वात् ।"

परीक्षामुखसूत्राणि प्रभृतिषु न्यायग्रन्थेष्वपि प्राग्वदुल्लेखः । यथा—"आद्ये परोक्षे", "प्रत्यक्षमन्यत्" इति । व्यवहारनयात् इन्द्रियजन्यज्ञानं प्रत्यक्षमिति नन्दीसूत्रादपि दृष्टव्यः । यथा—'इंदिअपच्चक्खे णोइंदिय०' इत्यादि ।

(से किं तं पच्चक्खे ?) प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। (पच्चक्खे) जिन पदार्थों का बोध प्रत्यक्ष प्रमाण से जाना जाय उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, और वह (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि (इंदिअपच्चक्खे अ) इन्द्रिय प्रत्यक्ष और (णोइंदिअपच्चक्खे) नोइन्द्रियप्रत्यक्ष।

(से किं तं इंदिअपच्चक्खे ?) इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (इंदिअपच्चक्खे †) जिन पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न हो उसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं और वह (पंचविहे पएणत्ते,) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। (तं जहा-) जैसे कि-(सोइंदिअपच्चक्खे) ‡श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष (चक्खुरिंदिअपच्चक्खे) चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष (घाणिंदिअपच्चक्खे) घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष (जिब्भिदिअपच्चक्खे) जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष (फासिंदिअपच्चक्खे,) स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष (से तं इंदिअपच्चक्खे।) यही इन्द्रिय प्रत्यक्ष है ।

(से किं तं णोइंदिअपच्चक्खे ?) ×नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (णोइंदिअपच्चक्खे) जो ज्ञान इन्द्रियजन्य न हो उसे नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं, और वह (तिविहे पएणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(ओहिणाणपच्चक्खे) अवधिज्ञान प्रत्यक्ष (मणपज्जवणाणपच्चक्खे) मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष और (केवलणाणपच्चक्खे) केवलज्ञान प्रत्यक्ष, (से तं णोइंदिअपच्चक्खे,) यही नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष है, (से तं पच्चक्खे।) यही प्रत्यक्ष है।

भावार्थ—जीव गुण प्रमाण तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-ज्ञान गुण प्रमाण, दर्शन गुण प्रमाण, और चरित्र गुण प्रमाण। ज्ञानगुण प्रमाण के चार भेद हैं, जैसे कि—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और आगम।

---

† इदं चेन्द्रलक्षणजीवादपरं व्यतिरिक्तनिमित्तमाश्रित्योत्पद्यते इति धूमादग्निज्ञानमिव, वस्तुतोऽर्थसाक्षात्कारित्वाभावात् परोक्षमेव, केवलं लोकेऽस्य प्रत्यक्षतया रूढत्वात् संव्यवहारतोऽत्रापि तथोच्यत इति। भावार्थ-यद्यपि इन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान एवंभूत नयानुसार परोक्ष माना गया है, तथापि व्यवहार नय से यह प्रत्यक्ष भी है।

‡ जो ज्ञान श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हो उसे श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष और स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष जानना चाहिये।

× 'नो' शब्द निषेध वाचक भी है, और ईषत् वाचक भी है। यहां पर इसे निषेध वाचक जानना चाहिये।

प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार का है, जैसे कि—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष। जो ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न हो उसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं। उस के पाँच भेद हैं, जैसे कि—शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श; इनका ज्ञान होना उसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् साक्षादात्मा ही जिस अर्थ को देखती है उसे नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं। इसके तीन भेद हैं, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। इनमें केवल जीव के उपयोग रूप शक्ति की ही प्रबलता होती है, न कि उनके सहकारी भाव की। इस लिये यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके बाद अनुमान प्रमाण का वर्णन किया जाता है—

अनुमान प्रमाण।

से किं तं अणुमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा- पुव्ववं सेसवं दिट्ठसाहम्मवं।

से किं तं पुव्ववं ?

माया पुत्तं जहा नट्ठं, जुवाणं पुणरागयं।
काई पच्चभिजाणेज्जा, पुव्वलिंगेण केणई ॥१॥

तं जहा-खत्तेण वा वण्णेण वा लंछणेण वा मसेण वा तिलएण वा, से तं पुव्ववं।

से किं तं सेसवं ? पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसएणं।

से किं तं कज्जेणं ? संखं सद्देणं भेरिं ताडिएणं वसभं ढक्किएणं मोरं किंकाइएणं हयं हेसिएणं *गयं गुलगुलाइएणं रहं घणघणाइएणं, से तं कज्जेणं।

से किं तं कारणेणं ? तंतवो पडस्स कारणं ण पडो

* 'गयं' पाठान्तरम्।

तंतुकारणं एवं वीरणा× कडस्स कारणं ण कडो वीरणा-कारणं, मिप्पिंडो घडस्स कारणं ण घडो मिप्पिंडकारणं, से तं कारणेणं ।

से किं तं गुणेणं ? सुवराणं निकसेणं पुप्फं गंधेणं लवणं रसेणं मइरं आसायएणं वत्थं फासेणं, से तं गुणेणं ।

से किं तं अवयवेणं ? महिसं सिंगेणं कुक्कुडं सिहाएणं हत्थिं विसाणेणं वराहं दाढाए मोरं पिच्छेणं आसं खुरेणं वग्घं नहेणं चमरिं वालग्गेणं वाणरं लंगुलेणं दुपयं मणुस्सादि चउपयं गवमादि बहुपयं गोमियादि सीहं केसरेणं वसहं कुक्कुहेणं महिलं वलयबाहाए । गाहा—

परिअरबंधेण भडं, जाणेज्जा महिलियं निवसणेणं ।
सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए ॥१॥

से तं अवयवेणं ।

से किं तं आसएणं ? अग्गिं धूमेणं सलिलं बलागेणं वुट्ठिं अब्भविकारेणं कुलपुत्तं सीलसमायारेणं ।

[इंगिताकारितैर्ज्ञेयैः, क्रियाभिर्भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥१॥]

से तं आसएणं, से तं सेसवं ।

से किं तं दिट्ठसाहम्मवं ? दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-सामन्नदिट्ठं च विसेसदिट्ठं च ।

× एतदन्यत्र नोपलभ्यते ।

से किं तं सामन्नदिट्ठं ? जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो, जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो, से तं सामन्नदिट्ठं ।

से किं तं विसेसदिट्ठं ? से जहाणामए केई पुरुसे कंचि पुरिसं बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पच्चभिजाणेज्जा—अयं से पुरिसे, बहूणं करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणिज्जा, अयं से करिसावणे ।

पदार्थ—(से किं तं अणुमाणे ?) अनुमान प्रमाण किसे कहते हैं ? और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (अणुमाणे*) साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं, और वह (तिविहे पएणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(पुव्ववं) पूर्ववत् (सेसवं) शेषवत् और (दिट्ठसाहम्मवं ।) दृष्ट साधर्म्यवत् ।

(से किं तं पुव्ववं ?) पूर्ववत् किसे कहते हैं ? (पुव्ववं†) पहिले देखे हुए लक्षणों से जो निश्चय किया जाय उसे पूर्ववत् कहते हैं, जैसे कि—(माया पुत्तं जहा नट्ठं, जुवाणं पुण रागयं ।) जैसे कि—माता देशान्तर को गये हुए और वहां से युवा होकर वापिस आये हुए पुत्र का (काई पच्चभिजाणेज्जा, पुव्वलिंगेण केणई ॥१॥) किसी पूर्वाङ्कित चिन्ह के द्वारा निश्चय करती है कि वह मेरा ही पुत्र है ॥ १ ॥ जैसे कि—

(खत्तेण वा) अपने देह से उत्पन्न हुये क्षत से अथवा (वएणेण वा) श्वानादि के किये हुये व्रण से या (लंछणेण वा) स्वस्तिकादिकों के लाञ्छनों- चिन्हों से या (मसेण) मसे से या (तिलएण वा) ‡तिल से, (से तं पुव्ववं ।) यह पूर्ववत् अनुमान है ।

---

* साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । तथा च, अनु—लिङ्गग्रहणसम्बन्धस्मरणस्य पश्चात् मीयते-परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति अनुमानम् ।

† विशिष्टं पूर्वोपलब्धं चिह्नमिह पूर्वमुच्यते, तदेव निमित्तरूपतया यस्यानुमानस्यास्ति तत्पूर्ववत् ।

‡ तिल मसादि के देखने से माता अपने मन में निश्चय करती है कि यह मेरा ही पुत्र है, क्यों कि इसके अमुक लक्षण अमुक समय में उत्पन्न हुए थे अथवा जन्म काल से ही थे ।

(से किं तं सेसवं ÷ ?) शेषवदनुमान कितने प्रकार से प्रतिपादन किया गया है ? (सेसवं) शेषवदनुमान (पंचविहं पण्णत्ते,) पांच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(कज्जेणं) कार्य से (कारणेणं) कारण से (गुणेणं) गुण से (अवयवेणं) अवयव से और (आसएणं।) आश्रय* से।

(से किं तं कज्जेणं ?) कार्यानुमान किसे कहते हैं ? (कज्जेणं) कार्य के द्वारा जिसका अनुमान किया जाता है उसे कार्यानुमान कहते हैं, जैसे कि—(संखं सद्देणं)

÷ तथा चाह न्यायवादी पुरुषचन्द्रः—

"अन्यथाऽनुपपन्नत्व-मात्रं हेतोः स्वलक्षणम्।

सत्त्वासत्त्वे हि तद्धर्मौ, दृष्टान्तद्वयलक्षणे ॥१॥

तद्धर्माविति—अन्यथानुपपन्नत्वधर्मो, कथम्भूते सत्त्वासत्त्वे इत्याह—साधर्म्यवैधर्म्यरूपे दृष्टान्तद्वये लक्ष्यते—निश्चीयते। अथ यदि दृष्टान्तद्वयलक्षणेन च धर्मिसत्तायां सर्वेऽपि धर्माः सर्वदा भवन्त्येव, पटादेः शुक्लत्वादिधर्मेऽव्यभिचारात्। ततो दृष्टान्तयोः सत्त्वासत्त्वधर्मौ यद्यपि क्वचिद्धेतो न दृश्यते तथापि धर्मस्वरूपमन्यथानुपपन्नत्वं भविष्यतीति न कश्चिद्विरोधः, इति भावः। यत्रापि धूमादौ दृष्टान्तयोः सत्त्वासत्त्वे हेतोर्दृश्यते, तत्रापि साध्यान्यथानुपपन्नत्वस्यैव प्राधान्यात्तस्यैवैकस्य हेतुलक्षणताऽवसेया। तथा चाह—

धूमादेर्यद्यपि स्यातां, सत्त्वासत्त्वे च लक्षणे।

अन्यथानुपपन्नत्व-प्राधान्याल्लक्षणैकता ॥१॥

किं च यदि दृष्टान्ते सत्त्वासत्त्वदर्शनाद्धेतुर्गमक इष्यते तदा लोहलेख्यं वज्रं पार्थिवत्वात् काष्ठादिवदित्यादेरपि गमकत्वं स्याद्। अभ्यधायि च—

दृष्टान्ते सदसत्त्वाभ्यां, हेतुः सम्यग् यदीष्यते।

लोहलेख्यं भवेद्वज्रं, पार्थिवत्वाद् द्रुमादिवत् ॥१॥

यदि पक्षधर्मत्वसपक्षसत्त्वविपक्षासत्त्वलक्षणं हेतोस्त्रैरूप्यमभ्युपगम्यापि यथोक्तदोषभयात् साध्येन सहान्यथानुपपन्नत्वमन्वेषणीयं तर्हि तदेवैकं लक्षणतया वक्तुमुचितम्, किं रूपत्रयेणेति। आह च—

अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्?

नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥१॥"

* अनुमान का अध्याहार सर्वत्र जान लेना चाहिये।

†शङ्ख का शब्द से (भेरिं ताडिएणं) भेरि का बजाने से (वसभं ढकिएणं) वृषभ–बैल–सांड का डकारने से (मोरं किंकाइएणं) मयूर–मोर का किंकारव–शब्द से (हयं हेसिएणं) घोड़े का हिनहिनाने से (हत्थिं गुलगुलाइएणं) हाथीका गुलगुलाहट शब्द से (रहं घणघणाइएणं,) रथ का घनघनाहट शब्द से अनुमान होता है,(से तं कज्जेणं।) यही ÷ कार्यानुमान है।

(से किं तं कारणेणं ?) कारणानुमान किसे कहते हैं ? (कारणेणं) जिन हेतुओं के द्वारा कार्य का ज्ञान हो उसे कारणानुमान कहते हैं। जैसे (तंतवो पडस्स कारणं) तन्तु वस्त्र के कारण रूप हैं, लेकिन (न पडो तंतुकारणं) पट तन्तुओं का कारण नहीं है + (एवं) इसी प्रकार (वीरणा कडस्स कारणं) वीरण–तृण कट–मंचा का कारण है, लेकिन (न कडो वीरणाकारणं) कट वीरण का कारण नहीं है, (मिप्पिंडो घडस्स कारणं) मिट्टीका पिण्ड घड़े का कारण है परन्तु (ण घणो मिप्पिंड-कारणं) घट मिट्टी के पिंड का कारण नहीं है, (से तं कारणेणं।) यही *कारणानुमान है।

(से किं तं गुणेणं ?) गुण से अनुमान किस प्रकार होता है ? (गुणेणं) जिन पदार्थों का गुण के द्वारा निश्चय किया जाय उसे गुणानुमान कहते हैं। जैसे कि— (सुवण्णं निकसेणं) सोने का † कसौटी से, (पुप्फं गंधेणं) पुष्प का गन्ध से (लवणं रसेणं) निमक का रस से (मइरं आसाइएणं) मदिरा का स्वाद लेने से, (वत्थं फासेणं) वस्त्र का स्पर्श करने से, (से तं गुणेणं।) यही गुणानुमान है।

---

† शंख का शब्द होना कार्य है। इस कार्य के होने पर यह अनुमान होना कि यहां पर शंख है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

÷ उक्त उदाहरणों से निश्चय होता है कि जब कार्य हो जाय तब उसका ज्ञान होना कि यहां पर अमुक पदार्थ है, इसी को कार्यानुमान कहते हैं।

* चन्द्रमा के उदय से समुद्र की वृद्धि का अनुमान किया जाता है, क्यों कि वह वृद्धि का कारण भूत है और जलवृद्धिरूप उसका कार्य है। इसी प्रकार सूर्य के उदय से कमलों के विकाश का, अतीव वर्षा से नाज की उत्पत्ति और कृषकों के मन-आल्हाद का अनुमान होता है। इत्यादि हेतुओं से सिद्ध होता है कि कारण से कार्य का अनुमान अच्छी तरह हो जाता है।

+ क्यों कि तन्तुओं के समुदाय से पट की उत्पत्ति है, लेकिन पट से तन्तुओं की उत्पत्ति नहीं होती, इस लिये तंतु ही कारणभूत हैं।

†सोने को कसौटी पर घिसने से उसके रूप गुण द्वारा सोने का यथार्थ ज्ञान होता है।

(से किं तं अवयवेणं ?) अवयवानुमान किसे कहते हैं ? (अवयवेणं) जिस अवयव से अवयवी का ज्ञान हो उसे अवयवानुमान कहते हैं, जैसे कि (माहिसं सिंगेणं) ‡ महिष का शृंग—सींग से (कुक्कुडं सिहाएणं) मुर्गे का शिखा से (हत्थिं ÷ विसाणेणं) हाथी का दान्तों से (वराहं दाढाए) बराह का दाढ से (मोरं पिच्छेणं) मयूर का पिच्छी से (आसं खुरेणं) अश्व का खुर से (वग्धं नहेणं) व्याघ्र का नखों से (चमरिं वालग्गेणं) चमरी गाय का बालाग्रों से (वाणरं लंगूलेणं) कपि—बन्दर का पूंछ से (दुपयं मणुस्सादि) मनुष्यादि का द्विपद से (चउप्पयं गवमादि) गो आदि का चार पैरों से (बहुपयं गोमिअादि)कर्णशृगाली--कानखजूरादि का बहुत पैरों से (सीहं केसरेणं) सिंह का केशर से (वसहं कुक्कुहेणं) वृषभ का ककुभ् स्कन्ध से (महिलं वलयबाहाए) महिला स्त्री का भुजाओंकी चूड़ियों से । (परियरबंधेण भडं, जाणिज्ज महिलिअं निवसणेणं ।) * परिकरबन्धन--शस्त्र के धारण करने से सुभट तथा वेष पहनने से स्त्री का (सित्थेण दोणपागं कविं च एक्काए गाहाए ॥१॥) चावलों का सिक्त--एक दाने से और कवि का एक गाथा से ॥१॥ (से तं अवयवेणं ।) वही अवयव से † अनुमान है ।

(से किं तं आसएणं ?) आश्रयानुमान किसे कहते हैं ?(‡आसएणं) आश्रय से जो पदार्थ का अनुमान होता है उसे आश्रयानुमान कहते हैं । जैसे कि—(अग्गिं धूमेणं) अग्नि का धूएँ से, (सलिलं बलागेणं) जल का बलाकों से (वुट्ठिं अब्भविकारेणं) वृष्टि का बादलों के विकार से (कुलपुत्तं सीलसमायारेणं) कुलवान् पुत्र का शीलादि सदाचार से, (इङ्गिताकारितैर्ज्ञेयैः, क्रियाभिर्भाषितेन च । नेत्रवक्त्रविकारैश्च, गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥१॥) शरीर की चेष्टाओं से, भाषण करने से, और नेत्र तथा मुख के विकार से अन्तर्गत मन जाना जाता है ॥१॥ (से तं आसएणं ।) यही आश्रयानुमान है, और (से तं सेसवं ।) यही शेषवत् अनुमान है ।

---

‡ ये उदाहरण अवयवी के अनुपस्थिति में ही सिद्ध होते हैं । प्रत्यक्ष में सिद्ध नहीं हो सकते । आगम में भी कहा है "अयं च प्रयोगो भित्तिवरण्डकाद्यन्तरितत्वादप्रत्यक्ष एवावयविनि द्रष्टव्यः । तत्प्रत्यक्षतायामध्यक्षात एव तत्सिद्धे रनुमानवैयर्थ्यप्रसङ्गादिति ।

÷ 'विषाण' शब्द के संस्कृत में तीन अर्थ होते हैं—१ सींग, २ कोल, और ३ हाथी के दांत । यथा—"विषाणं तु शृङ्गे कोलेभदन्तयोः"—अभिधाननाममाला ।

* विशिष्टनेपथ्यरचनालक्षणेन ।

† अर्थात् अवयव के देखने से अवयवी का ज्ञान होना । अवयवानुमान है ।

‡ आश्रयतीति आश्रयः । हेतु का पर्याय ही आश्रय हैं ।

(से किं तं दिट्ठसाहम्मवं ?) दृष्टसाधर्म्यवदनुमान किसे कहते हैं ? (दिट्ठसाहम्मवं) पूर्व में जाने हुए पदार्थ के द्वारा वर्त्तमान काल के तत्सदृश पदार्थों का ज्ञान होना, दृष्टसाधर्म्यवदनुमान है, और वह (दुविहं पएणत्तं,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-- (सामन्नदिट्ठं × च) सामान्यदृष्ट और (विसेसदिट्ठं च ।) विशेषदृष्ट।

(से किं तं सामन्नदिट्ठं ?) सामान्य दृष्टानुमान किसे कहते हैं ? जैसे कि--(जहा एगो पुरिसो) जैसे एक पुरुष है, (तहा बहवे पुरिसा) उसी प्रकार बहुत से) मनुष्य हैं, (जहा बहवे पुरिसा) जैसे बहुत से पुरुष हैं, (तहा एगो पुरिसो) उसी प्रकार एक मनुष्य होगा, (जहा एगो करिसावणो) जैसे एक कार्षापण—सोने की मोहर है। (तहा बहवे करिसावणा) उसी प्रकार बहुतसी मोहरें होंगी, और (जहा बहवे करिसावणा) जैसे बहुतसी मोहर होंगी (तहा एगो करिसावणो,) उसी प्रकार एक मोहर होगी (से तं सामन्नदिट्ठं ।) सामान्यदृष्टानुमान है।

(से किं तं विसेसदिट्ठं) विशेष दृष्टानुमान किसे कहते हैं ? (से जहानामए) जैसे देवदत्तादि नामक (केइ पुरुसे) कोई पुरुष हो (कंचि पुरिसं) किसी पुरुष को (बहूणं पुरिसाणं मज्झे) बहुत से मनुष्यों के मध्य में (पुव्वदिट्ठं) पहिले देखा था (पच्चभिजाणेज्जा) जान लिया कि-(अयं से पुरिसे) यह वही आदमी है, तथा—(बहूणं करिसावणाणं मज्झे) बहुत सी सोने की मोहरों के बीच में (पुव्वदिट्ठं करिसावणं) पहिले देखी हुई को (पच्चभिजाणिज्जा) पहिचान लिया कि (अयं से करिसावणे ।) यह वही सोने की मोहर है।

भावार्थ—साधन से जो साध्य का ज्ञान हो, उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। इसके तीन भेद हैं, जैसे कि-पूर्ववत् १, शेषवत् २, और दृष्टसाधर्म्यवत् ३।

पूर्ववत् उसे कहते हैं—जैसे किसी माता का पुत्र बाल्यावस्था में परदेश-चला गया परन्तु वह जब युवा होकर अपने नगर में वापिस आया तब उस की माता पहिले देखे हुए लक्षणों से अनुमान करती है यह मेरा ही पुत्र है,

---

× दृष्टेन पूर्वोपलब्धनार्थेन सह साधर्म्यं दृष्टसाधर्म्यं, तद्गमकत्वेन विद्येत यत्र तद् दृष्टसाधर्म्यवत्।

() जैसे कि अन्य द्वीप से आये हुए एक पुरुष की आकृति को देख कर यह अनुमान करना कि उस द्वीप में और जो बहुत से मनुष्य होंगे वे ऐसे ही होंगे।

* जैसे कि देवदत्तादि नामक किसी व्यक्ति ने किसी पुरुष को बहुत से मनुष्यों के बीच में पहिले देखा था, उसको फिर देख कर अनुमान करता है कि यह वही पुरुष है जिसको मैंने पूर्व में देखा था, इसी को विशेषदृष्टानुमान कहते हैं।

अर्थात् जब उसके लक्षणों से ठीक निश्चय हुआ तब उसको साध्य का ज्ञान साधनों द्वारा यथार्थ हो गया। इसी को पूर्ववत् अनुमान कहते हैं।

हेतु के तीन भेद हैं, जैसे कि पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व विपक्षअसत्व। लेकिन यहां पर एक ही प्रकार से माना गया है। इसका कारण यह है कि मुख्यतया हेतु एक ही प्रकार का होता है। शिष्यों के बोध के वास्ते प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, निगमन और उपनय भी वर्णन किये जाते हैं, तथा हि—* 'बालव्युत्पत्यर्थं तत्रोपयोगे शास्त्र एवासौ न वादेऽनुपयोगात्।"

बालकों को समझाने के लिये उदाहरण, उपनय और निगमन आदि का भी प्रयोग करना चाहिये। वाद-विवाद में इनकी आवश्यकता नहीं है।

'दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयतिरेकभेदात्।' दृष्टान्त के दो भेद हैं, अन्वय और व्यतिरेक। 'साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः।' जिस स्थान में साध्य के साथ साधन की व्याप्ति प्रदर्शित की जाय उसे अन्वयदृष्टान्त कहते

---

* उक्तञ्च न्यायदीपिकायाम् "वीतरागकथायां तु प्रतिपाद्याशयानुरोधेन प्रतिज्ञाहेतू द्वाववयवौ, प्रतिज्ञाहेतूदाहरणानि त्रयः, प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयाश्चत्वारः, प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि वा पञ्चेति यथायोग्यं परिपाटी।"

तदुक्तं कुमारनन्दिभट्टारकैः,—'प्रयोग परिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः।' इति, नद्वेयं प्रतिज्ञादिरूपात्तपरोपदेशादुत्पन्नं परार्थानुमानम्। तदुक्तम्—

'परोपदेश सापेक्षं साधनात् साध्यवेदनम्। श्रोतुर्यज्जायते सा हि परार्थानुमतिर्मता॥ १॥' इति। तथा च—'स्वार्थं परार्थं चेति द्विविधमनुमानम्। साध्याविनाभावनिश्चयैकलक्षणाद्धेतो-रुत्पद्यते।'

न्यायदीपिका में कहा है कि वीतरागकथा के अन्तर्गत शिष्य के आशयानुसार यथायोग्य प्रतिज्ञा और हेतु, इन दो अवयवों का; प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, इन तीन अवयवों का; प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण उपनय, इन चार अवयवों का; अथवा प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन, इन पांचों अवयवों का प्रयोजन होता है।'

कुमारनन्दिभट्टारक ने कहा है—"अवयव करने की शैली तो आशयानुसार होती है।" तथा—परार्थानुमान प्रतिज्ञादि रूप दूसरे के उपदेश से उत्पन्न होते हैं। कहा भी है—"परोप देश सुन कर जिस श्रोता को साधन से साध्य का ज्ञान होता है, उसीको परार्थानुमान कहते हैं" उसी तरह यह भी कहा है कि—स्वार्थ और पदार्थ दोनों ही प्रकार का अनुमान हेतु से उत्पन्न होता है, जिसका कि साध्य के बिना न होना निश्चित है।

हैं। 'साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः। जिस स्थान में साध्य के अभाव को दिखा कर साधन का अभाव दिखाया जावे, उसे व्यतिरेकदृष्टान्त जानना चाहिये।

शेषवत् अनुमान प्रमाण पांच प्रकार का है, जैसे कि—कार्य से १, कारण से २, गुण से ३, अवयव से ४, और आश्रय से ५।

कार्य होते हुए जो कारण का ज्ञान होता है, उसे कार्यानुमान कहते हैं, जैसे कि— शंख, भेरी, वृषभ, मयूर, अश्व, हस्ति, इत्यादि। जब इनके शब्द होते हैं, तो शीघ्र ही अनुभव हो जाता है कि अमुक स्थान पर अमुक का शब्द हो रहा है, इत्यादि।

जिन कारणों से कार्यका ज्ञान होता है उसे कारणानुमान कहते हैं। जैसे कि तन्तु पट के कारण हैं, पट तन्तुओं का कारण नहीं है। इसी प्रकार वीरण मंचा का कारण है, लेकिन मंचा वीरणों का कारण नहीं है। मिट्टी का पिण्ड घट का कारण है लेकिन *घट मिट्टी का कारण नहीं है।

गुण के ज्ञान से जो गुणी का ज्ञान होता है, उसे गुणानुमान कहते हैं, जैसे कि—सुवर्ण की परीक्षा कसौटी से, पुष्पों की गन्ध से, सैन्धवादि निमक की रस से, मदिरा की आस्वादन से, वस्त्र की स्पर्श—छूने से होती।

जिन अवयवों से अवयवी का ज्ञान हो, वह अवयवानुमान है। जैसे कि—शृङ्गों से महिष का, शिखा से मुर्गे का, दान्तों से हाथी का, दाढों से सूअर का, खुरों से अश्व का, नखों से व्याघ्र का, बालाग्रों से गाय का, पूंछ से वानर का, द्विपद से मनुष्यादि का, चार पैर से गौ आदि का, बहुत से पैरों से कानख-

---

*अत्राह—ननु यदा कश्चिन्निपुणः पटभावेन संयुक्तानपि तन्तून् क्रमेण वियोजयति तदा पटोऽपि तन्तूनां कारणं भवत्येव, नैव, सत्त्वेनोपयोगाभावात्, यदेव हि लब्धसत्ताकं सत् स्वस्थितिभावेन कार्यमुपकुरुते तदेव तस्य कारणत्वेनोपदिश्यते, यथा मृत्पिण्डो घटस्य, ये तु तन्तुवियोगतोऽभावी भवता पटेन तन्तवः समुत्पद्यन्ते तेषां कथं पटः कारणं निर्दिश्यते, न हि ज्वराभावेन भवत आरोगिता सुखस्य ज्वरः कारणमिति शक्यते वक्तुम्, यद्येवं पटेऽप्युत्पद्यमाने तन्तवोऽभावी भवन्तीति तेऽपि तत्कारणं न स्युरिति चेत्, नैवं, तन्तुपरिणाम रूप एव हि पटः, यदि च तन्तवः सर्वथाऽभावी भवेयुस्तदा तद्भावे घटस्यैव सर्वथैवोपलब्धिर्न स्यात्, तस्मात्पटकालेऽपि तन्तवः सन्तीति सत्त्वेनोपयोगात्ते पटस्य कारणमुच्यन्ते पटवियोजनकाले त्वेकैकतन्त्ववस्थायां पटो नोपलभ्यते, अतस्तत्र सत्त्वेनोपयोगाभावान्नासौ तेषां कारणम्।

जूरादि को, केसर से सिंह का, स्कन्ध से वृषभ का, भुजाओं की चूड़ियों से स्त्री का, राज्य चिन्ह से सुभट का, का, एक सिक्-दाने से चावल और एक गाथा से कवि की ज्ञान होता है।

साधन से साध्य का अर्थात् आश्रय से आश्रियी का ज्ञान हो उसे आश्रयानुमान कहते हैं ; जैसे कि-धूएं से अग्नि का, बादलों से जल का, आसमान के विकारों से वृष्टि का, शीलादि सदाचरण से कुलवान पुत्र का, भाषण करने से या अंग की, चेष्टाओं से और नेत्र तथा मुख के विकार से मन का ज्ञान होता है।

दृष्टसाधर्म्यवत् के दो भेद हैं, जैसे कि—सामान्यदृष्ट और विशेषदृष्ट।

जैसे कि-आगन्तुक के देखने से किसी पुरुष को अनुमान से निश्चय हुआ कि अन्य भी बहुत से मनुष्य इस आकृति वाले होंगे, तथा—जैसे बहुत से मनुष्यों का ज्ञान हुआ तब एक का भी अनुमान किया जा सकता है। इसी प्रकार कार्षापण का भी भावार्थ जानना चाहिये।

विशेषदृष्ट उसे कहते हैं, जैसे कि-किसी पुरुष ने किसी व्यक्ति को पहिले किसी स्थान पर देखा था, फिर वह किसी समाज के बीच दिखलाई दिया, तब अनुमान किया कि मैं ने इस को कहीं पर देखा है। इस प्रकार स्मृति करते हुए अच्छी तरह निश्चय होगया कि मैं ने इसको अमुक स्थान पर देखा था। इसलिये इसी को विशेषदृष्ट अनुमान कहते हैं। इसी प्रकार कार्षापण का भी उदाहरण जानना चाहिये।

तस्स समासओ तिविहं गहणं भवइ, तं जहा-अतीयकालगहणं पडुप्पण्णकालगहणं अणागयकालगहणं।

से किं तं अतीयकालगहणं? उत्तणाणि वणाणि *निप्फण्णसव्वसस्सं वा मेइणिं पुण्णाणि य कुंडसरणईदीहिआतडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा सुवुट्ठी आसी, से तं अतीयकालगहणं।

से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं? साहुं गोयरग्गगयं विच्छड्डियपउरभत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा-

सुभिक्खे वट्टइ, से तं पडुप्पराणकालगहणं ।

से किं तं अणागयकालगहणं ?

अब्भस्स निम्मलत्तं, कसिणा य गिरी सविज्जुआ मेहा ।

थणियं वा उब्भागो, संझा रत्ता पणिट्ठा य ॥१॥

वारुणं वा महिंदं वा अराणयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा–सुवुट्ठी भविस्सइ, से तं अणागयकालगहणं ।

एएसिं चेव विवज्जासे तिविहं गहणं भवइ, तं जहा-अतीयकालगहणं पडुप्पराणकालगहणं अणागयकालगहणं।

से किं तं अतीयकालगहणं ? नित्तिणाइं वणाइं अणिप्फराणसस्सं वा मेइणीं सुक्काणि अ कुंडसरणईदीहिअ तडागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा--कुवुट्ठी आसी, से तं अतीयकालगहणं ।

से किं तं पडुप्पराणकालगहणं ? साहुं गोयरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा–दुभिक्खे वट्टइ, से तं पडुप्पराणकालगहणं ।

से किं तं अणागयकालगहणं ।

धूमायंति दिसाओ, संविअमेइणी अपडिबद्धा ।

वाया नेरइआ खलु, कुवुट्ठीमेवं निवेयंति ॥ १ ॥

अग्गेयं वा वायव्वं वा अन्नयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा–कुवुट्ठी भविस्सइ, से तं अणागयकालगहणं, से तं विसेसदिट्ठं, से तं दिट्ठसाहम्मवं, से तं अणुमाणे ।

पदार्थ—(तस्स* समासओ) उसका संक्षेप से (तिविहं गहणं भवइ,) तीन प्रकार से ग्रहण होता है, अर्थात् विशेषदृष्टसाधर्म्यवद् अनुमान द्वारा तीनों काल के पदार्थो का निर्णय किया गया जाता है, (तं जहा-) जैसे कि--(अतीयकालगहणं) अतीत काल ग्रहण (पडुप्पण्णकालगहणं) प्रत्युत्पन्न–वर्तमान काल ग्रहण और (अणागयकालं गहणं।) अनागत काल ग्रहण।

(से किं तं अतीयकालगहणं ?) अतीत काल ग्रहण अनुमान किसे कहते है ? (अतीयकालगहणं) अतीत काल के पदार्थों का निर्णय करना उसे अतीत काल ग्रहण अनुमान जानना चाहिये। जैसे कि—(उत्तणाणि वणाणि) बनों में घास उत्पन्न हुए हैं, (निप्फण्णसव्वसस्सं वा) या सब नाज उत्पन्न हुये हैं (मेइणिं पुण्णाणि अ) पृथिवी परिपूर्ण है (कुंड) कुण्ड, (सर) सरोवर, (णइ) नदी, (दीहियातडागाइं) बड़े बड़े तालावादि को (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ) उससे अनुमान किया जाता है, (तं जहा-) जैसे कि--(सुवुट्ठी आसी,) †अच्छी वर्षा हुई. (से तं अतीयकालगहणं।) यही अतीत काल ग्रहण विशेषसदृष्टसाधर्म्यवद् अनुमान है।

(से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?) प्रत्युत्पन्न काल ग्रहण किसे कहते हैं ? (पडुप्पण्णकालगहणं) वर्तमान काल में ग्रहण किये हुये पदार्थों का अनुमान के द्वारा निर्णय करना उसे प्रत्युत्पन्न काल ग्रहण कहते हैं, जैसे कि--(साहुं गोयरग्गगयं) गोचरी गये हुए साधु को (विच्छड्डिअपउरभत्तपाणं) गृहस्थोंसे विशेष आहार पानी पाते हुये (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ उस से अनुमान किया जाता है (जहा-) जैसे कि--(सुभिक्खे वट्टइ) * सुभिक्ष वर्त्त रहा है, सुभिक्ष है। (से तं पडुप्पण्णकालगहणं।) यही प्रत्युत्पन्न काल ग्रहण विशेषदृष्टसाधर्म्यवद् अनुमान है।

(से किं तं अणागयकालगहणं ?) अनागत काल ग्रहण किस कहते हैं ? (अणागयकालगहणं) भविष्यत्काल में ग्रहण किये जाने वाले पदार्थों का अनुमान के द्वारा

---

* विशेषदृष्टसाधर्म्यवरः। तस्येति सामान्येनानुवर्त्तमानमनुमानमात्रं सम्बध्यते।

†अर्थात् वन में घास उगा हुआ पृथ्वी में सभी नाज पैदा हुए हैं; कुण्ड, सरोवर, नदी आदि सब जल से परिपूर्ण हुए हैं। इनके देखने से अनुमान होता है कि यहां पर भी अच्छी वृष्टि हुई है' यह 'पक्ष' है, 'तृण धान्य जलाशयादि' ये उस के कार्य हैं। इस लिये यह 'हेतु' और 'अन्य देशवत्' यह अन्वयदृष्टान्त है। इसी प्रकार ये तीन २ सर्वत्र सभी के ज़ानना चाहिये। जैसे कि—पक्ष हेतु और दृष्टान्त।

* यहां पर 'सुभिक्ष', पक्ष वचन; 'प्रचुर आहार पानी' हेतु; और 'पूर्वदृष्टदेशवत्'; दृष्टान्त है।

निर्णय करना, उसे अनागत काल ग्रहण कहते हैं, जैसे कि-(अब्भस्स निम्मलतं, कसिणा य गिरी सविज्जुआ मेहा।) निर्मल आकाश में काले रंग के पहाड़ जैसे बिजली सहित मेघों की-(थणियं वा उब्भामो, संझा रत्ता पणिद्धा य ॥ १ ॥) गर्जना तथा अनुकूल हवा और सन्ध्या का लालपन ॥१॥ तथा-(वारुणं वा) वरुण के † नक्षत्र या (महिंदं वा) ‡ महेन्द्र के नक्षत्र अथवा (अन्नयरं वा पसत्थमुप्पायं) अन्य कोई प्रशस्त उत्पात-उल्का पात या दिग्दाहादि को (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ,) उस से अनुमान किया जाता है (जहा) जैसे कि-(सुवुट्ठी भविस्सइ,) ÷ अच्छी वृष्टि होगी, (से तं अणागयकालगहणं।) इसे × अनागत काल ग्रहण विशेषदृष्टसाधर्म्यवद् अनुमान जानना चाहिये।

(एएसिं *चेव विवज्जासे) इनका † विपरीत भी (तिविहं गहणं भवइ,) ग्रहण तीन प्रकार से होता है, (तं जहा-) जैसे कि--(अतीयकालगहणं) अतीत काल ग्रहण (पडुप्पन्नकालगहणं) वर्त्तमान काल ग्रहण और (अणागयकालगहणं।) अनागत-भविष्यत्काल ग्रहण।

(से किं तं अतीयकालगहणं?) अतीत काल ग्रहण किसे कहते हैं? (अतीयकालगहणं) अतीत काल के पदार्थों को वर्त्तमान में अनुमान के द्वारा निर्णय करना उसे अतीत काल ग्रहण कहते हैं, जैसे कि—(नित्तिणाइं वणाइं) बिना घासके जंगल (अणिप्फण्णसस्सं वा मेइणीं) अथवा पृथिवी में धान्य वगैरह न पैदा हुए हों, (सुक्काणि अ कुंडसरणईदीहिअतडागाइं) और सूखे हुए कुण्ड सरोवर नदी दीर्घाकार जलाशय तालाव आदि को (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ) उससे अनुमान किया जाता है, (जहा-) जैसे कि—(कुवुट्ठीआसी,) ‡ कुवृष्टि-खराब वर्षा हुई है, (से तं अतीयकालगहणं।) यही अतीत काल ग्रहण है।

---

† पूर्वाषाढ़ा १, उत्तराभाद्रपद २, आश्लेषा ३, आर्द्रा ४, मूल ५, रेवती ६, और शतभिष् ७।

‡ अनुराधा १, अभिजित २, ज्येष्ठा ३, उत्तराषाढ़ा ४, धनिष्ठा ५, रोहिणी ६, श्रवणी ७।

÷ यहां 'सुवृष्टि होगी', यह पक्ष वचन; आकाश का निर्मलपना इत्यादि, हेतु; और "जैसे आगे हुई थी", यह दृष्टान्त है।

* 'चेव' निपात है और यहां पर वाक्यालंकार में आया हुआ है।

× पूर्वोक्त तृणादि कुवृष्टि के कारणों की अपेक्षा विपरीत प्रतिपादन करनेसे कुवृष्टि आदि का बोध होता है। और इसके भी पक्ष, हेतु, उदाहरण आदि यथासंभव पूर्व से विपरीत कल्पित कर लेना चाहिये।

(से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ? वर्त्तमान काल ग्रहण किसे कहते हैं ? (पडुप्पन्नकालगहणं ग्रहण किये हुए पदार्थों को अनुमान के द्वारा वर्त्तमान काल में निर्णय करना उसे प्रत्युत्पन्न-वर्त्तमान काल ग्रहण कहते हैं, जैसे कि--(साहुं गोअरग्गगयं) गोचरी गये हुए साधु को (भिक्खं अलभमाणं) भक्षा नहीं मिलते हुए (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ) उस से अनुमान किया जाता है, (जहा-) जैसे कि-(दुब्भिक्खे वट्टइ,) दुर्भिक्ष वर्त्त रहा है, (से तं पडुप्पण्णकालगहणं ।) अतः यही प्रत्युत्पन्न काल ग्रहण है ।

(से किं तं अणागयकालगहणं ?) अनागत काल ग्रहण किसे कहते हैं ? (अणागय कालगहणं) अनागत काल ग्रहण उसे कहते हैं, जैसे कि-(धूमायंति दिसाओ, संविअमेइणी अपडिबद्धा । वाया नेरइया खलु, कुवुट्ठीमेवं निवेयंति ॥१॥) धूम युक्त दिशाओं के देखने से, पृथिवी का स्निग्धपना न होने से, नैर्ऋत कोण की हवा होने से, निश्चय ही कुवृष्टि के लक्षण प्रतीत होते हैं ॥१॥

(अग्गेयं वा) अथवा आग्नेय मण्डल के नक्षत्र * हों (वायव्वं वा) या वायव्य मण्डल के नक्षत्र† हों (अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं) या अन्य कोई खराब उत्पाद हो, उस को (पासित्ता) देख कर (तेणं साहिज्जइ,) उस से अनुमान किया जाता है, (जहा-) जैसे कि- कुवुट्ठी भविस्सइ,) ‡खराब वर्षा होगी, (से तं अणागयकालगहणं ।) यही अनागत काल ग्रहण जानना चाहिये । (से तं विसेसदिट्ठं,) यही विशेषदृष्ट है, (से तं दिट्ठसाहम्मवं,) यही दृष्टसाधर्म्यवत् और (से तं अणुमाणे ।) यही अनुमान प्रमाण है ।

भावार्थ—उक्त सामान्य रूप अनुमान द्वारा तीनों काल के पदार्थों का बोध होता है, जैसे कि वन में तृण विशेष उत्पन्न हुए हैं, अथवा पृथ्वी में धान्यों की निष्पत्ति अतीव हुई है, या सभी जलाशय जलसे परिपूर्ण हैं, इत्यादिकों के देखने से अनुमान होता है कि यहां पर सुवृष्टि हुई है, यह भूत काल के पदार्थों का ज्ञान है । इसी को अतीत काल ग्रहण अनुमान कहते हैं ।

वर्तमान काल के पदार्थों के लिये यह उदाहरण है, जैसे कि-गोचरी गये

---

* विशाखा १, भरणी २, पुष्य ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, पूर्वाभाद्रपद ५, मघा ६, और कृत्तिका ७ ।

† चित्रा १, हस्त २, अश्विनी ३, स्वाति ४, मार्गशीर्ष ५, पुनर्वसु ६, और उत्तराफाल्गुनी ७ ।

‡ यहां पर भी पक्ष, हेतु और दृष्टान्त यथासम्भव पूर्ववत् घटा लेना चाहिये ।

हुए साधु को गृहस्थों से विशेष—प्रचुर आहार पानी देते हुए देख कर अनुमान किया कि यहां पर सुभिक्ष-सुकाल है।

अनागत काल के लिये, जैसे कि--निर्मल आकाश में काले पहाड़ जैसे बिजली सहित मेघों की गर्जना तथा अनुकूल वायु, रक्त सन्ध्या, वरुण या महेन्द्र मण्डल के नक्षत्र हों अथवा शुभ उत्पतों को देख कर अनुमान होता है कि सुवृष्टि अवश्य होगी।

इसी प्रकार ये तीनों उदाहरण विपरीत भी होते हैं, जैसे कि-वन निस्तृण हैं, पृथ्वी में धान्य भी उत्पन्न नहीं हुए, जलाशय भी शुष्क हो गये। इससे अनुमान होता है कि यहां पर कुवृष्टि हुई है। यह अतीत काल का उदाहरण है।

वर्त्तमान काल का निम्न प्रकार से जानना चाहिये--नगर में गोचरी लेने के लिये गये हुए किसी साधु को भिक्षा प्राप्त नहीं होते हुए देख कर अनुमान किया कि यहां पर दुर्भिक्ष है।

भविष्यत्काल के लिये, जैसे कि—सभी दिशाओं में धूंआ हो रहा है, पृथिवी भी शुष्क है, वायु वर्षा के अनुकूल नहीं है, आग्नेय और वायव्य मंडल के नक्षत्र हैं, आकाश में भी अशुभ उत्पात हो रहे हैं। इस से अनुमान हुआ कि यहां पर कुवृष्टि होगी। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी जानने चाहिये।

उपरोक्त सभी उदाहरण अनुमान प्रमाण के तीनों काल के हैं। इन में पक्ष हेतु और दृष्टान्त, ये तीनों यथासम्भव घटाना चाहिये।

उपमान प्रमाण।

से किं तं ओवम्मे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा- साहम्मोवणीए अ वेहम्मोवणीए अ।

से किं तं साहम्मोवणीए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा- किंचिसाहम्मोवणीए पायसाहम्मोवणीए सव्वसाहम्मोवणीए।

से किं तं किंचिसाहम्मोवणीए ? जहा मंदरो तहा सरिसवो जहा सरिसवो तहा मंदरो, जहा समुद्दो तहा गो-

२१२ जहा गोप्पयं तहा समुद्दो, जहा आइच्चो तहा खज्जोतो जहा खज्जोतो तहा आइच्चो जहा चंदो तहा कुमुदो जहा कुमुदो तहा चंदो, से तं किंचिसाहम्मोवणीए।

से किं तं पायसाहम्मोवणीए ? जहा गो तहा गवओ जहा गवओ तहा गो से तं पायसाहम्मोवणीए।

से किं तं सव्वसाहम्मोवणीए ? सव्वसाहम्मे ओवम्मे नत्थि तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा अरिहंतेहिं अरिहंतसरिसं कयं, चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिस कयं, बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं, वासुदेवेण वासुदेव सरिसं कयं साहुणा साहुसरिसं कयं, से तं सव्वसाहम्मे, से तं साहम्मोवणीए।

से किं तं वेहम्मोवणीए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-किंचिवेहम्मे पायवेहम्मे सव्ववेहम्मे।

से किं तं किंचिवेहम्मे ? जहा सामलेरो न तहा बाहुलेरो जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो, से तं किंचिवेहम्मे।

से किं तं पायवेहम्मे ? जहा वायसो न तहा पायसो जहा पायसो न तहा वायसो, से तं पायवेहम्मे।

से किं तं सव्ववेहम्मे ? सव्ववेहम्मे ओवम्मे नत्थि, तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ, जहा णीएण णीअसरिसंकयं, दासेण दाससरिसं कयं, काकेण काकसरिसं कयं, साणेण साणसरिसं कयं, पाणेण पाणसरिसं कयं, से तं सव्ववेहम्मे, से तं वेहम्मोवणीए, से तं ओवम्मे।

पदार्थ—(से किं तं *ओवम्मे ?) उपमान प्रमाण किसे कहते हैं ? (ओवम्मे) जिन सदृश वस्तुओं का परिमाण परस्पर तुल्य कर के दिखलाया जाय उसे उपमा कहते हैं और जिस में उपमा का भाव हो उसे औपम्य—उपमान जानना चाहिये, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(साहम्मोवणीए अ) साधर्म्योपनीत और (वेहम्मोवणीए अ।) वैधर्म्योपनीत।

(से किं तं साहम्मोवणीए ?) साधर्म्योपनीत किसे कहते हैं ? (साहम्मोवणीए) जिन पदार्थों की साधर्म्यता—सजातीयता उपमा के द्वारा सिद्ध की जाय उसे साधर्म्योपनीत कहते हैं, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(किंचिसाहम्मोवणीए) किंचित्साधर्म्योपनीत (पायसाहम्मोवणीए) प्रायःसाधर्म्योपनीत और (सव्वसाहम्मोवणीए।) सर्वसाधर्म्योपनीत।

(से किं तं किंचिसाहम्मोवणीए ?) किञ्चित्साधर्म्योपनीत किसे कहते हैं ? (किंचिसाहम्मोवणीए) किंचित्साधर्म्योपनीत उसे कहते है जिसमें किंचिन्मात्र साधर्म्यता पाई जाय, जैसे कि—(जहा मंदरो) जिस प्रकार †मन्दर है (तहा सरिसवो) उसी प्रकार ‡सरसों है, और (जहा सरिसवो तहा मंदरो) जैसे सरसों है उसी प्रकार मन्दर है, (जहा समुद्दो) जिस प्रकार समुद्र है (तहा गोप्पयं) उसी प्रकार ÷ गोष्पद—आखात है, (जहा गोप्पयं) जिस प्रकार गोष्पद है (तहा समुद्दो) उसी प्रकार समुद्र है; तथा—(जहा आइचो तहा खज्जातो) जिस प्रकार आदित्य-सूर्य है, (तहा खज्जातो) उसी प्रकार खद्योत—पटबीजना है (जहा खज्जातो तहा आइचो) जैसे खद्योत है वैसे ही सूर्य है, अथवा (जहा चंदो तहा कुमुदो) जिस प्रकार चन्द्रमा है उसी प्रकार कमल हैं, और (जहा कुमुदो तहा चंदो,) जैसे कमल है वैसे ही चन्द्रमा है, (से तं किंचिसाहम्मोवणीए।) यही किंचित्साधर्म्योपनीत है।

(से किं तं पायसाहम्मोवणीए ?) प्रायःसाधर्म्योपनीत किसे कहते हैं ? (पायसाहम्मोवणीए) जो सब प्रकार से साम्यता रक्खे लेकिन किसी में भेद हो जाय, वही

---

* उपमीयते—सदृशतया वस्तु गृह्यते अनेनेत्युपमा सैवौपम्यम्।

† पहाड़ या मेरु पर्वत।

‡ क्योंकि दोनों ही मूर्तिमान् हैं। यद्यपि उनके परस्पर बहुत भेद हैं तथापि मूर्तिमत्त्व में साम्यता है।

÷ अर्थात् दोनों ही जलाशय रूप हैं।

+ क्योंकि दोनों ही आकाशगामी और प्रकाशक हैं।

× अर्थात् चन्द्र और कुमुद दोनों ही शुक्ल हैं।

प्रायःसाधर्म्योपनीत है । (जहा *गो तहा गवत्रो) जैसे गौ है उसी प्रकार गवय—नील गाय है, और (जहा गवत्रो तहा गो,) जिस प्रकार नील गाय है उसी प्रकार गौ है, (से तं पायसाहम्मोवणीए ।) यही प्रायःसाधर्म्योपनीत है ।

(से किं तं सव्वसाहम्मोवणीए ?) सर्वसाधर्म्योपनीत किसे कहते हैं ? (सव्वसाहम्मोवणीए) जिस में सभी प्रकार की समानता पाई जाय, उस को सर्वसाधर्म्योपनीत कहते हैं परन्तु (सव्वसाहम्मे) सर्वसाधर्म्यपने में (ओवम्मे नत्थि) उपमा नहीं होती, (तहावि) तो भी (तेणेव तस्स) उसीसे उसकी (ओवम्मं कीरइ,) उपमा की जाती है, (जहा-) जैसे कि—(× अरिहंतेहिं अरिहंतसरिसं कयं,) + अरिहंत ने अरिहन्त के समान किया, (चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं,) चक्रवर्ती ने चक्रवर्ती के समान किया, (बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं,) बलदेव ने बलदेव के सदृश किया, (वासुदेवेण वासुदेवसरिसं कयं,) वासुदेव ने वासुदेव के समान किया, (साहुणा) साधु ने (साहुसरिसं कयं,) साधु के समान किया, (से तं सव्वसाहम्मे,) यही सर्वसाधर्म्योपनीत है, और (से तं साहम्मोवणीए) यही साधर्म्योपनीत है ।

(से किं तं वेहम्मोवणीए ?) वैधर्म्योपनीत किसे कहते हैं ? (वेहम्मोवणीए) जो सामान्य धर्मसे विपरीत हो और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि--(किंचिवेहम्मे) किंचिद्वैधर्म्य (पायवेहम्मे) प्रायः वैधर्म्य और (सव्ववेहम्मे ।) सर्ववैधर्म्य ।

(से किं तं किंचिवेहम्मे ?) किंचिद्वैधर्म्य किसे कहते हैं ? (किंचिवेहम्मे) जिसमें किंचिन्मात्र वैधर्म्यता हो, जैसे कि—(जहा सामलेरो) जिस प्रकार श्याम गौ का बछड़ा

---

* सकम्बलो गौः अर्थात् गौ सास्नादियुक्त होती है । वृत्तकण्ठस्तु गवयः अर्थात् नील गाय के वर्तुलाकार कण्ठ होता है । खुर, ककुद, सींग आदि सब में तो साम्यता है, सिर्फ नील गाय का वर्तुलाकार कण्ठ है और गौ सास्नादियुक्त होती है । इसी लिये प्रायःसाधर्म्योपनीत है ।

+ "भिसो हि हिं हिं ।" प्रा० व्या० । ८ । ३ । ७ । तथा "भिस्भ्यस्सुपि ।" प्रा० व्या० । ८ । ३ । १५ । इन सूत्रों से उक्त पद 'अर्हंत' शब्द का तृतीया का बहुवचन सिद्ध होता है ।

× 'तीर्थ का स्थापन करना' इत्यादि कार्य अरिहन्त ने अरिहन्त के समान ही किया । क्योंकि लौकिक में यह भली प्रकार से प्रगट है कि-किसी के किये हुये अद्भुत कार्य को देखकर ऐसा कहा जाता है कि-इस कार्य को आप ही कर सकते थे अथवा आपके तुल्य जो होगा वही इस कार्यको कर सकता था, अन्य नहीं ।

है (न तहा बाहुलेरो,) उसी प्रकार श्वेत गौ का बछड़ा नहीं है, और (जहा बाहुलेरो) जैसे श्वेत गौ का बछड़ा होता है, (न तहा सामलेरो,) उसी प्रकार श्याम गौ का बछड़ा नहीं होता * (से तं किंचिवेहम्मे ।) यही किंचिद्वैधर्म्य है।

(से किं तं पायवेहम्मे ?) प्रायः वैधर्म्य किसे कहते हैं ? (पायवेहम्मे) जिसमें करीब २ वैधर्म्यता हो, यथा–(जहा वायसो) जिस प्रकार कौआ होता है (न तहा पायसो,) उसी प्रकार दूध नहीं होता, और (जहा पायसो) जिस प्रकार होता है (न तहा वायसो) तद्वत् कौआ नहीं होता † (से तं पायवेहम्मे ।) यही प्रायःवैधर्म्य है ।

(से किं तं सव्ववेहम्मे ?) सर्ववैधर्म्य किसे कहते हैं ? (सव्ववेहम्मे) जिसमें किसी प्रकार की भी सजातीयता न हो, यद्यपि (सव्ववेहम्मे) सर्ववैधर्म्यपने में ‡ (ओवम्मे नत्थि) उपमा नहीं होती, (तहावि) तथापि (तेणेव तस्स) उस को उसी के साथ (ओवम्मं कीरइ,) उपमा की जाती है, (जहा–) जैसे–(णीएण णीअसरिसं कयं,) नीच ने नीच के समान किया, (दासेण दाससरिसं कयं,) दास–सेवक ने दासके समान किया, और (काकेण काकसरिसं कयं,) कौए ने कौए जैसा किया, (साणेण साणसरिसं कयं,) श्वान–कुत्त ने श्वान

---

* अत्र च शेषधर्मैस्तुल्यत्वाद्भिन्ननिमित्तजन्मादिमात्रस्तु वैलक्षण्यात् किंचिद्वैधर्म्यं भावनीयम् । अर्थात् यहां पर गोपन में तो कुछ भेद नहीं है लेकिन माता के पृथक् भाव होने से वर्ण भेद अवश्य है । इसी कारण उसकी किंचिद्वैधर्म्यता सिद्ध की गई है ।

† अत्र वायसपायसयोः सचेतनत्वाचेतनत्वादिभिर्बहुभिर्धर्मैर्विसंवादात् अभिधानगतवर्णद्वयेन सत्त्वादिमात्रतश्च साम्यात्प्रायोवैधर्म्यता भावनीया । अर्थात् 'वायस' कौए का और 'पायस' दूध का नाम है, इस लिये दोनों में साम्यता नहीं हो सकती । कारण कि 'वायस' चैतन्य है और 'पायस' जड़ पदार्थ है । सिर्फ इनके नामों में दो दो वर्णों की साम्यता है । अतः यहां पर प्रायःवैधर्म्यता जाननी चाहिये ।

‡ सर्ववैधर्म्यं तु न कस्यचित्केनापि सम्भवति, सत्त्वप्रमेयत्वादिभिः सर्वभावानां समानत्वात्, तैरप्यसमानत्वेऽसत्त्वप्रसङ्गात् । तथापि तृतीयभेदोपन्यासवैयर्थ्यमाशङ्क्याह । अर्थात् सर्ववैधर्म्य तो वास्तव में किसी का किसी के साथ नहीं हो सकता । क्योंकि कम से कम सत्त्व और प्रमेयत्व आदि गुणों से तो संपूर्ण पदार्थ परस्पर में समान ही हैं । यदि इनसे भी असमानता हो तो पदार्थ के असत्त्व—अभाव का ही प्रसङ्ग हो जाय । तो भी तीसरे भेद सर्ववैधर्म्य की व्यर्थता को दूर करने के लिये कहते हैं । 'इस ने गुरुघातादि जैसे अत्यन्त खराब काम किये हैं, जिसको नीच से नीच भी नहीं कर सकता ।' इसी प्रकार दासादि के उदाहरण भी जानने चाहिये ।

जैसा किया, (पाणेण पाणसरिसं कयं,) नीच ने नीच के सदृश किया, (से तं सव्ववेहम्मे) यही सर्ववैधर्म्य है। और (से तं वेहम्मोवणीए।) यही वैधर्म्योपनीत है। (से तं ओवम्मे।) इसी को उपमान प्रमाण जानना चाहिये।

भावार्थ—उपमान के दो भेद हैं, जैसे कि—साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत।

साधर्म्योपनीत तीन प्रकार का है, जैसे किंचित्साधर्म्योपनीत, प्रायः साधर्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत।

किंचित्साधर्म्योपनीत उसे कहते हैं जिसमें किंचित् साधर्म्यता हो, जैसे जिस प्रकार मेरु पर्वत है, उसी प्रकार सर्षप का बीज है, क्यों कि दोनों ही मूर्तिमान हैं। और जैसे समुद्र है, उसी प्रकार गोष्पद है, क्यों कि दोनों ही जलाशय हैं, तथा जैसे आदित्य है उसी प्रकार खद्योत भी है, क्यों कि दोनों ही प्रकाशक और आकाश गामी हैं और जैसे चन्द्र है वैसे ही कुमुद है, क्यों कि दोनों ही श्वेत हैं। यही किंचित् साधर्म्योपनीत है।

प्रायः साधर्म्योपनीत उसे कहते हैं जो करीब २ साधर्म्यता रक्खे, जैसे गौ है वैसे ही गवय नील गाय है केवल सास्नादिवर्जित ही गवय होता है, शेष अङ्गोपाङ्ग गौ के ही सदृश होते हैं।

देशकालादि भिन्न होने से सर्वसाधर्म्य की उपमा कभी हो ही नहीं सक्ती तथापि इसके निम्नलिखित उदाहरण हैं, जैसे कि—अर्हत् ने अर्हत् के तुल्य तीर्थ प्रवर्तनादि कृत्य किया अथवा चक्रवर्ती ने चक्रवर्ती के समान कार्य किया। इसी प्रकार अन्य उदाहरण जानने चाहिये। इसी को सर्वसाधर्म्योपनीत उपमान कहते हैं।

वैधर्म्योपनीत तीन प्रकार का है। जैसे कि—किञ्चिद्वैधर्म्य, प्रायःवैधर्म्य और सर्ववैधर्म्य

किञ्चिद्वैधर्म्य उसे कहते हैं जिसमें किञ्चिन्मात्र वैधर्म्यता हो, जैसे—जैसा सांवली गौ का बछड़ा है वैसा सफेद गौ का नहीं है, क्यों कि वर्ण भेद है। इसी प्रकार—

प्रायः वैधर्म्य-जैसे कौआ है उसी प्रकार दूध नहीं है।

सर्व वैधर्म्य जैसे-नीच ने नीच के समान ही कृत्य किया है। इसी प्रकार

दास, कौआ, श्वान, चाण्डाल आदि उदाहरण जानने चाहिये। इसी को सब वैधर्म्य कहते हैं।

यही वैधर्म्योपनीत तथा उपमान प्रमाण है। आगम-प्रमाण निम्न अनुसार जानना चाहिये—

आगम प्रमाण।

से किं तं आगमे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा- लोइए अ लोउत्तरिए अ। से किं तं लोइए ? जण्णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीएहिं सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं तं जहा- भारहं रामायणं जाव चत्तारि वेया संगोवंगा, से तं लोइए आगमे।

से किं तं लोउत्तरिए? जण्णं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं तीयपच्चुप्पण्णमणागयजाणएहिं तिलुक्कवहिअमहिअपूइएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरसीहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा- आयारो जाव दिट्ठिवाओ। अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा— सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे। अहवा—आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्तागमे अणंतरागमे परंपराग तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे गणहराणं सुत्तस्स अत्तगमे अत्थस्स अणंतरागमे गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे अत्थस्स परंपरागमे। तेणं परं सुत्तस्सवि अत्थस्सवि णो अत्तागमे णो अणंतरागमे परंपरागमे, से तं लोगुत्तरिए से तं आगमे, से तं णाणगुणप्पमाणे।

पदार्थ—(से किं तं आगमे ?) =आगम प्रमाण किसे कहते हैं ? (आगमे) जो गुरु परम्परा से आया हो अथवा जिससे सब प्रकार के जीवादि पदार्थ जाने जायं, उसे आगम कहते हैं, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(लोइए अ) लौकिक और (लोउत्तरिए अ ।) लोकोत्तरिक ।

(से किं तं लोइए ?) लौकिक आगम किसे कहते हैं, (÷ लोइए) जिसको लोगों ने रचा हो, जैसे कि-(जण्णं इमं) जिन को इन (अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीएहिं) अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों ने (+ सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं,) स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचा हो (तं जहा-) जैसे कि—(भारहं) महाभारत (रामायणं) रामायण (जाव चत्तारि वेया संगोवंगा ×) और साङ्गोपाङ्ग चारों वेद (से तं लोइए आगमे ।) यही लौकिक आगम है।

(से किं तं लोउत्तरिए ?) लोकोत्तरिक आगम किसे कहते हैं ? (लोउत्तरिए) जो लोकोत्तर पुरुषों ने रचे हों, जैसे कि—(जण्णं इमं) जिन को इन (अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाणदंसणधरेहिं) संपूर्ण ज्ञान, दर्शन को धारन करने वाले श्री अरिहंत भगवान् जो कि (तीयपच्चुप्पण्णमणागयजाणएहिं) भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान् के जानने वाले, तथा (तिलुक्क*वहियमहियपूइएहिं) त्रिलोकवासी जीवों से सहर्ष पूजित ऐसे (सव्वण्णूहिं सव्वदरसीहिं) सर्वथा सर्वदर्शियों ने (पणीअं दुवालसंगं †गणिपिडगं,) जो कि द्वादशांग रूप †गणिपिटक रचना को, (तं जहा-) जैसे कि—(आयारो ‡ जाव दिट्ठिवाओ) आचारांग से लगाकर दृष्टिवाद तक । ये ही लोकोत्तरिक-प्रधान आगम हैं ।

= गुरु (आचार्य) पारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः, आ—समन्ताद्गम्यन्ते—ज्ञायन्ते जीवादयः पदार्था अनेनेति वा आगमः ।

÷ लोकैः प्रणीतं लौकिकम् ।

+ स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं—स्वबुद्धिविकल्पनाशिल्पिनिर्मितम् ।

× तत्राङ्गानि—शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, च्छन्दो ४, निरुक्त ५, ज्योतिष्कायन ६; उपाङ्गानि तद्व्याख्यारूपाणि, तैः सह वर्त्तन्ते इति साङ्गोपाङ्गाः अर्थात् शिक्षा १, कल्प २, व्याकरण ३, च्छन्द ४, निरुक्त ५, और ज्योतिष्कायन ६, ये अङ्ग हैं, इनकी व्याख्या रूप ग्रन्थ उपाङ्ग हैं, इन सहित वेद, 'साङ्गोपाङ्ग वेद' कहलाते हैं ।

* 'वहिय' त्ति—विगलद्बहलानन्दाश्रुदृष्टिभिः सहर्षं निरीक्षिता यथावस्थितानन्यसाधारण-गुणोत्कीर्तनलक्षणेन भावस्तवेन ।

† गणिपिटकं—गुणगणोऽस्यास्तीति गणी—आचार्य—स्तस्य पिटकं—सर्वस्वं गणिपिटकम् । अर्थात् जिसमें सभी प्रकार के गुणों के समुदाय हो, उसे 'गणिपिटक' कहते हैं ।

‡ [illegible] १ स्थानाङ्ग २ समवायाङ्ग ३ . व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र ४,

(अहवा) अथवा (आगमे) आगम (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(सुत्तागमे) ÷ सूत्रागम (अत्थागमे) अर्थागम और (तदुभयागमे ।) तदुभय आगम अर्थात् सूत्र और अर्थ दोनों सहित ।

(अहवा) या (आगमे) आगम (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(अत्तागमे) आत्मागम (अणंतरागमे) अनन्तरागम और (परंपरागमे,) परम्परागम । (तित्थगराणं अत्थस्स) तीर्थंकरों के अर्थ का ज्ञान (अत्तागमे) + आत्मागम जानना चाहिये, तथा—(गणहराणं सुत्तस्स) गणधरों के सूत्र का ज्ञान (अत्तागमं) आत्मागम जानना चाहिये, और (अत्थस्स × अणंतरागमं) अर्थ का अनन्तरागम होता है. तथा (गणहरसीसाणं) गणधरों के शिष्यों के (सुत्तस्स † अणंतरागमे) सूत्र के ज्ञान का अनन्तरागम कहते हैं, और (अत्थस्स परंपरागमे,) अर्थ का ‡परम्परागम होता है, (तेण परं) तत्पश्चात् सुत्तस्सवि अत्थस्सवि) सूत्र और अर्थ दोनों ही का (णो-अत्तागमं) आत्मागम भी नहीं है और (णो अणंतरागमे) अनन्तरागम भी नहीं है सिर्फ (परंपरागमे,) परम्परागम जानना चाहिये, (से तं लोगुत्तरिए,) यही लोकोत्तरिक है और (से तं आगमे,) यही आगम है, तथा (से तं णाणगुणप्पमाणे ।) इसी को ज्ञानगुणप्रमाण जानना चाहिये ।

ज्ञाताधर्मकथा ५, उपासकदशा ६, अन्तकृद्दशा ७, अनुत्तरोपपातिक दशा ८, प्रश्नव्याकरण ९, और विपाकसूत्र १० । इत्यादि का ग्रहण करना चाहिये, शेष दो के नाम मूल पाठ में आ ही गये हैं । इन्हीं के समुदाय को गणिपिटक कहते हैं ।

÷ अर्थात् सिर्फ मूल पाठरूप । मूल सूत्र का सिर्फ अर्थ ।

+ क्योंकि वे केवलज्ञान से स्वयमेव पदार्थों को जानते हैं । इसलिये उनके अर्थ को आत्मागम कहते हैं ।

× गणधर महाराज सूत्रों की स्वयमेव रचना करते हैं, इसलिये उनके रचे हुए सूत्रों को सूत्रागम कहते हैं । आगम में भी कहा है—‘अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं” अर्थात् अर्हद्भगवान् अर्थ कहते हैं, निपुण गणधर महाराज सूत्र को गूंथते हैं’ ।

† क्योंकि गणधर महाराज कोई भी अन्तर बिना तीर्थंकरों से अर्थ सीखते हैं, इस लिये अर्थ से ज्ञान को अनन्तरागम जानना चाहिये ।

अर्थात् शिष्य, गणधरों के पास बिना अन्तर अध्ययन करते हैं ।

‡ क्योंकि तीर्थंकरों से अर्थ का ज्ञान गणधरों को प्राप्त हुआ, और गणधरों से उनके

भावार्थ—जो परम्परा से आया हो, अथवा जिसके द्वारा जीवादि पदार्थों का पूर्ण ज्ञान हो, उसे आगम कहते हैं। जैसे कि—लौकिक और लोकोत्तरिक।

लौकिक आगम उसे कहते हैं, जिसको सम्यक्त्व रहित अज्ञानी जीवों ने रचा हो। जैसे कि—रामायण महाभारतादि। ये लौकिक आगम हैं।

लोकोत्तरिक आगम उन्हें कहते हैं, जिनको पूर्ण ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले, भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल के पदार्थों के ज्ञाता, तीन लोक के जीवों से पूजित सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रीअरिहन्त भगवान् ने बनाया है। जैसे कि—द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक। क्यों कि—

'आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः।' अर्थात् 'आप्त वचनादिकों से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम * कहते हैं।

इस से यह सिद्ध हुआ कि लौकिक आगमों के प्रणेता पुरुष आत्मज्ञानी नहीं हैं। इस लिये वह प्रमाणभूत नहीं है। और द्वादशाङ्गी आप्त रूप होने से प्रमाणभूत है।

---

* अथागमो लक्ष्यते—आप्तवाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः।

अत्रागम इति लक्ष्यमवशिष्टं लक्षणम्, अर्थज्ञानमित्येतावदुच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अत उक्तम्—'वाक्यनिबन्धन' मिति। 'वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमागम' इत्युच्यमानेऽपि यादृच्छिकसंवादिषु विप्रलम्भवाक्यजन्येषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजन्येषु वा नदीतीरफलसंसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः। अतः उक्तमाप्तेति, आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमित्युच्यमानेऽपि, आप्तवाक्यकर्मके श्रावणप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः। अतः उक्तम्—'अर्थे' ति, अर्थस्तात्पर्यरूढ इति यावत्। 'तात्पर्यमेव वचसी' त्यभियुक्तवचनात्। ततः—आप्तवाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमित्युक्तमागमलक्षणं निर्दोषमेव। यथा—"सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः।" (त० । १ । १ ।) इत्यादि वाक्यार्थज्ञानम्। 'सम्यग्दर्शनादित्रयमेव मोक्षस्य सकलकर्मक्षयस्य मार्ग उपायो न तु मार्गाः।' ततो भिन्नलक्षणानां दर्शनादीनां त्रयाणां समुदितानामेव मार्गत्वं न तु प्रत्येकमित्यर्थः, मार्ग इत्येकवचनप्रयोगात् तात्पर्यसिद्धिः। अयमेव वाक्यार्थः। अत्रैवार्थे प्रमाणं साध्यसंशयादिनिवृत्तिः प्रमितिः। कः पुनरयमाप्त इति चेदुच्यते। आप्तः प्रत्यक्षप्रमितसकलार्थत्वे सति परमहितोपदेशकः। प्रमितेत्याद्येवोच्यमाने श्रुतकेवलिष्वतिव्याप्तिः। तेषामागमप्रमितसकलार्थत्वात्। अतः उक्तं प्रत्यक्षेति। प्रत्यक्षप्रमितसकलार्थ इत्येतावदुच्यमाने सिद्धेष्वतिव्याप्तिः। अतः उक्तं 'परमेत्यादि' परमं हितं निःश्रेयसम्। तदुपदेशे एव अर्हतः प्रामुख्येन प्रवृत्तिः, अन्यत्र तु प्रश्नानुरोधादुपसर्जनत्वेनेति भावः। नैवंविधः सिद्धपरमेष्ठी तस्यानुपदेशकत्वात्। ततोऽनेन विशेषो न। तत्र नातिव्याप्तिः। आप्तसद्भावे प्रमाणमुपन्यस्तम्। नैयायिकाद्यभिमतानामाप्ताभासानामसर्वज्ञत्वात् प्रत्यक्षप्रमितेत्यादि विशेषणेनैव निरासः।—न्यायदीपिका।

अथवा आगम तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि–सूत्रागम १, अर्थागम २, और तदुभयागम ३। अथवा आत्मागम १, अनन्तरागम २, और परम्परागम ३।

तीर्थंकरों से प्ररूपित अर्थ को आत्मागम जानना चाहिये। तथा गणधरों के रचे हुये सूत्र को आत्मागम और अर्थ को अनन्तरागम कहते हैं, और गणधरों के शिष्यों के सूत्र अनन्तरागम और अर्थ परम्परागम होता है तत्पश्चात् सूत्र और अर्थ दोनों ही परम्परागम होते हैं।

क्योंकि–आत्मागम उसे कहते हैं जो स्वयमेव बोध हुआ हो, तथा जो बिना अन्तर गुरु से अध्ययन किया हो उसे अनन्तरागम जानना चाहिये। परम्परागम उसे कहते हैं जो अनुक्रमपूर्वक वृद्ध लोग ज्ञान सीखते आये हों और आगे को भी परिपाट्यनुकूल सीखते जायं इस वर्णन से अपौरुषेय वाक्यों का भली भांति निषेध हो जाता है। क्योंकि वर्णों के ताल्वादि अष्ट स्थान होते हैं और सूत्र भी वर्णमय होते हैं। तथा–अशरीरी जीवों के वचनयोग नहीं होता, इस लिये अपौरुषेय वाक्य युक्तिसंगत नहीं होत। इसी को ज्ञान गुण प्रमाण कहते हैं। इसके बाद दर्शन गुण प्रमाण का स्वरूप जानना चाहिये—

दर्शन गुण प्रमाण।

से किं तं दंसणगुणप्पमाणे? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–चक्खुदंसणगुणप्पमाणे अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे ओहिदंसणगुणप्पमाणे केवलदंसणगुणप्पमाणे। चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घडपडकडरहाइएसु दव्वेसु अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणिस्स आयभावे ओहिदंसणं ओहिदंसणिस्स सव्वरूविदव्वेसु न पुण सव्वपज्जवेसु केवलदंसणं केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेसु अ सव्वपज्जवेसु अ, से तं दंसणगुणप्पमाणे।

पदार्थ—(से किं तं दंसणगुणप्पमाणे?) दर्शनगुणप्रमाण किसे कहते हैं? (दंसणगुणप्पमाणे) *दर्शनावरणकर्म के क्षयोपशम से जो उत्पन्न हो, अथवा जो

[illegible]

आत्मा का निज गुण हो उसे दर्शनगुणप्रमाण कहते हैं। और वह (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(चक्खुदंसणगुणप्पमाणे) चक्षुर्दर्शनगुणप्रमाण (अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे) अचक्षुर्दर्शनगुणप्रमाण (ओहिदंसण-गुणप्पमाणे) अवधिदर्शनगुणप्रमाण और (केवलदंसणगुणप्पमाणे ।) केवलदर्शनगुण-प्रमाण। इनका भिन्न २ स्वरूप निम्नानुसार जानना चाहिये—

(† चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स) चक्षुर्दर्शनी का चक्षुर्दर्शन (घडपडकडरहाइएसु) घट, पट, कट-मंचा, रथादिक (दव्वेसु) द्रव्यों में होता है (अचक्खुदंसणं अचक्खुदंसणिस्स) अचक्षुर्दर्शनी का ×अचक्षुर्दर्शन (आयभावे) आत्मभाव में होता है, (ओहिदंसणं ओहिदंसणिस्स) ※अवधिदर्शनवाले का अवधिदर्शन (सव्वरूविदव्वेसु) सभी रूपी द्रव्यों में होता है, (न पुण सव्वपज्जवेसु) सभी पर्यायों में नहीं होता। (‡केवलदंसणं केवल दंसणिस्स) ‡केवलदर्शनी का केवलदर्शन (सव्वदव्वेसु अ) सब द्रव्य और (सव्वपज्जवेसु अ,)सभी पर्यायों में होता है, (से तं दंसणगुणप्पमाणे ।) यही दर्शनगुणप्रमाण है।

भावार्थ--दर्शनगुणप्रमाण चार प्रकार का है, जैसे कि-चक्षुर्दर्शनगुण प्रमाण, अचक्षुर्दर्शनगुणप्रमाण, अवधिदर्शनगुणप्रमाण और केवलदर्शनगुण प्रमाण।

"जं सामन्नग्गहणं, भावाणं नेव कट्टु मागारं । अविसेसिऊण अ थे, दंसणमिइ वुच्चए समए ॥१॥" तदेवात्मनो गुणः स एव प्रमाणं दर्शनगुणप्रमाणम् । † चक्षुर्दर्शन उसे कहते हैं जो भावचक्षुरिन्द्रिय के क्षयोपशम से और द्रव्येन्द्रिय के अनुपघात से उत्पन्न हो। क्योंकि चक्षुर्दर्शनी जीव सामान्यतया घटादि द्रव्यों को भली प्रकार से देखता व जानता है।

× चक्षुरिन्द्रिय को छोड़ कर शेष चार इन्द्रिय और मन इनसे अचक्षुर्दर्शन होता है, तथा भाव–अचक्षुरिन्द्रिय के क्षयोपशम से और द्रव्येन्द्रियों के अनुपघात से प्रगट होता है।

+ क्योंकि चक्षु अप्राप्यकारी हैं तथा श्रोत्रादि प्राप्यकारी हैं। आगम में भी कहा है—'पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु ।'

※ जिन कर्मों के क्षय से अवधिदर्शन प्राप्त हो, उसे अवधिदर्शन कहते हैं। अवधिदर्शन को इसलिये सामान्य माना गया है कि दर्शन सामान्यावबोध रूप होता है और ज्ञान विशेष रूप होता है।

‡ केवलदर्शनावरण कर्मके क्षय होने से केवलदर्शन उत्पन्न होता है, जो कि सकल पदार्थों को देखता है। क्यों कि वे सर्वदर्शी हैं, इस लिये रूपी अरूपी सभी द्रव्यों में केवलदर्शन होता है। तथा मनःपर्यायज्ञान सदैव ही विशेष ग्रहण करने वाला होता है, सामान्य को नहीं। इसलिये मनःपर्यायदर्शन नहीं होता।

चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से चक्षुदर्शन घट पटादि पदार्थों में होता है।

अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अचक्षुदर्शन उत्पन्न होता है और वह आत्मभाव में ही रहता है।

अवधिदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिदर्शन सभी रूपी द्रव्यों में होता है लेकिन सभी पर्यायों में नहीं होता, क्योंकि वह केवल रूपी द्रव्यों को ही देखता है, जैसे कि रूप रस गन्ध और स्पर्श।

केवलदर्शनावरणीय कर्म के क्षय से केवलदर्शन सभी रूपी और अरूपी द्रव्य और पर्यायों में होता है, क्योंकि केवलदर्शन क्षयोपशम भाव में नहीं होता, सिर्फ क्षायिक भाव में होता है। इस लिये वह मूर्त अमूर्त दोनों प्रकार के द्रव्य और पर्यायों में होता है। इसके बाद चारित्रगुणप्रमाण का स्वरूप वर्णन किया जाता है--

से किं तं चरित्तगुणप्पमाणे ? पंचविहे पराणत्ते, तं जहा---सामाइअचरित्तगुणप्पमाणे छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे परिहारविसुद्धिअचरित्तगुणप्पमाणे सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे।

सामाइयचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा-इत्तरिए अ आवहिए अ। छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा-साइयारे य निरइयारे य। परिहारविसुद्धियचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा-णिव्विसमाणए अ णिव्विट्ठकाइए अ। सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा-पडिवाई अ अपडिवाई अ। अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा-छउमत्थिए अ केवलिए य। से तं चरित्तगुणप्पमाणे, से तं जीवगुणप्पमाणे, से तं गुणप्पमाणे। (सू० ४७)

पदार्थ—(से किं तं चरित्तगुणप्पमाणे ?) चारित्रगुणप्रमाण किसे कहते हैं ?

(चरित्तगुणप्पमाणे) जो अनिन्दतपने निरवद्यानुष्ठान* रूप आचरण है उसे चारित्र कहते हैं, और वह (पंचविहे पण्णत्ते,) पांच † प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि-(सामाइअचरित्तगुणप्पमाणे) सामायिक चारित्रगुणप्रमाण १, (छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे) छेदोपस्थापनीय चारित्रगुणप्रमाण २, (परिहारविसुद्धिचरित्तगुणप्पमाणे) परिहारविशुद्धिक चारित्रगुणप्रमाण ३, (सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे) सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रगुणप्रमाण ४, (*अहक्खायचरित्तगुणप्पमाणे) अथाख्यात चारित्रगुणप्रमाण ५।

(सामाइअचरित्तगुणप्पमाणे) सामायिक चारित्रगुणप्रमाण (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(इत्तरिए अ) इत्वरिक-स्वल्पकालिक और (आवहिए अ।) यावत्कथिक—आयुःपर्यन्त ‡। (छेओवट्ठावणचरित्तगुणप्पमाणे) छेदोपस्थापनीय चारित्रगुणप्रमाण (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(साइयारे य) अतिचारों के निमित्त से जो छेदोपस्थापन प्रायश्चित्त प्राप्त हो उसे सातिचार कहते हैं, और (निरइयारे य।) जो बिना ÷ अतिचारों के कारण प्राप्त हो उसे निरतिचार कहते हैं। (परिहारविसुद्धिअचरित्तगुण

---

* चरन्त्यनिन्दितमनेनेति चारित्रं, तदेव चरित्रं, चारित्रमेव गुणः चारित्रगुणः, स एव प्रमाणं चारित्रगुणप्रमाणं—सावद्ययोगविरतिरूपम्।

† पञ्चविधमप्येतदविशेषतः सामायिकमेव छेदादिविशेषैः विशेष्यमाणं पञ्चधा भिद्यते, तत्राद्यं विशेषाभावात् सामान्यसंज्ञायामेवावतिष्ठते सामायिकमिति।

* 'अथ' शब्दोऽत्र अभिविधौ। अथवा यथाख्यातमित्यपि नामान्तरम्।

‡ भरत और ऐरवत क्षेत्र के प्रथम और चरम तीर्थंकर के साधु जहां तक छेदोपस्थापनीय चारित्र अंगीकार नहीं करते वहां तक उनका सामायिक चारित्र ही होता है। इस लिये सामायिक चारित्र इत्वरिक—स्वल्पकालिक कहलाता है। तथा—भरत और ऐरवत क्षेत्र के शेष बावीस तीर्थंकरों के तथा महाविदेह क्षेत्र के साधुओं को सदैव सामायिक चारित्र होता है, इस लिये यावत्कथि अर्थात् आयुः पर्यन्त भी कहलाता है।

× भरत और ऐरवत क्षेत्र के प्रथम और चरम तीर्थंकर के साधुओं को प्रथम दीक्षा के समय सामायिक चारित्र के ७ दिन या ४ महीने या ६ महीने के बाद पांच महाव्रत आरोपण रूप निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। तथा—पार्श्वनाथ भगवान् के शासन कालके साधु यदि भगवान् महावीर स्वामी के शासन में आवें तब उनको भी निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। और जो साधु मूलगुण के नाशक हों उनको सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है।

प्पमाणे) ※ परिहारविशुद्धिक चारित्रगुणप्रमाण (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(णिव्विसमाणए य) निर्विश्यमानक और (णिव्विट्ठकाइए अ।) निर्विष्टकायिक। (सुहुमसंपरायचरित्तगुणप्पमाणे) † सूक्ष्मसम्पराय चारित्र गुण प्रमाण (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा)

※ परिहार विशुद्धिक तप उसे कहते हैं जो परिहार नाम का तप विशेष हो अथवा अणेषणादि दोषों से जिसकी शुद्धि हो। उसके दो भेद हैं-निर्विश्यमानक अर्थात् आसेव्यमान और निर्विष्टकायिक अर्थात् जिन्होंने उक्त तप को विशेषतया काया के द्वारा आसेवन किया हो। तथा—कई एक का यह भी अभिप्राय है कि—जिन्हों ने पूर्व इस तप को अङ्गीकार किया हो उनके पास अथवा तीर्थंकरों के पास नव साधुओं का समुदाय उक्त तप को ग्रहण करता है जिनमें एक साधु कल्पस्थित सभी सामाचारी करता है, तथा चार साधु तप को ग्रहण करते हैं, जिनको परिहारिक कहते हैं, और शेष चार परस्पर वैयावृत्य करने वाले होते हैं, जिनको अनुपरिहारिक कहते हैं। परिहारिक साधु गर्मी की ऋतु में जघन्य से चतुर्थ—१ उपवास; मध्य से षष्ठ—दो उपवास और उत्कृष्ट से अष्ट अर्थात् तीन उपवास तथा शिशिर ऋतु में जघन्त से षष्ठ, मध्यम से अष्ट और उत्कृष्ट से दश। इसी प्रकार वर्षाकाल में जघन्य से अष्ट, मध्यम से दश और उत्कृष्ट से द्वादश करते हैं। शेष कल्पस्थित पांचों ही साधु अनुपरिहारिक नित्यभक्त होने से उपवास नहीं करते हैं। सिर्फ आयंबिल करते हैं और कुछ नहीं। यथा—"शेषास्तु कल्पस्थितानुपरिहारिकाः पञ्चापि प्रायो नित्यभक्ता नोपवासं कुर्वन्ति, भक्तं च पञ्चानामप्याचाम्लत्वमेव।"

इसके पश्चात् परिहारिक साधु षट् मास पर्यन्त उक्त तप करके अनुपरिहारिक होते हैं, और अनुपरिहारिक परिहारिक होते हैं। जब तप करते हुए इनको छह महीने हो जायँ तब आठ जनोंमें से एक कल्पस्थित रहता है और शेष सात अनुचरता आश्रय ग्रहण करते हैं और छह महीने तक तप करते हैं। इस प्रकार अठारह महीने में सम्पूर्ण तप पूरा होता है। तप पूरा होने पर साधु फिर से उसीको या जिनकल्प को अङ्गीकार करे या गच्छ में आजाय, ये तीनरास्ते हैं। यह चारित्र सिर्फ छेदोपस्थापनचारित्र वाले को होता है, दूसरों को नहीं। इस लियेजो इस तप को करके अनुपरिहारिकता या कल्पस्थितपना अङ्गीकार करता है उसी को परिहारविशुद्धिक निर्विष्टकायिक कहते हैं।

† संसार के अन्दर पर्यटन, करना इसी का नाम सम्पराय—क्रोधादिकषाय है। अंश मात्र लोभ रह जाय उसी को सूक्ष्मसम्पराय कहते हैं। 'सम्परैति—पर्यटति संसारमनेनेति सम्परायः—क्रोधादिकषायः लोभांशमात्रावशेषतया सूक्ष्मः संपरायो यत्र तत्सूक्ष्मसंपरायम्। अथवा—सूक्ष्मः—[illegible] संपरायो यस्य मत सचम संपरायं संज्वलन लोभात्मकं दशमगुणस्थानवर्तिकमिति भावः।'

जैसे कि--(पडिवाई अ) ‡प्रतिपाति और (अपडिवाई अ।) ÷अप्रतिपाति (+अहक्खाय-चरित्तगुणप्पमाणे) यथाख्यात चारित्र गुण प्रमाण (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि--(छउमत्थिए अ) × छाद्मस्थिक और (केवलिए अ।) केवलिक। (से तं चरित्तगुणप्पमाणे) वही चारित्र गुण प्रमाण है और (से तं जीवगुणप्पमाणे,) यही जीव गुण प्रमाण है, और (से तं गुणप्पमाणे।) यही गुण-प्रमाण है। (सू० १४७)

भावार्थ--जो सम्यक्प्रकार से-अनिन्दितपने से आचरण किया जाय वही सच्चारित्र कहलाता है, और उस का जो प्रमाण हो उसे चारित्र गुण प्रमाण कहते हैं। इसके पांच भेद हैं, जैसे कि-सामायिक चारित्र गुण प्रमाण १, छेदोपस्थापनीय चारित्र गुण प्रमाण २, परिहार विशुद्ध चारित्र गुण प्रमाण ३, सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र गुण प्रमाण ४, और यथाख्यात चारित्र गुण प्रमाण ५।

जीव को सम्यक् प्रकार से ज्ञानादि का जो लाभ होता है उसे सामायिक चारित्र कहते हैं, और वह 'करेमि भंते ! सामाइयं' इत्यादि सूत्र से धारण किया जाता है। मुख्यतया इसके दो भेद हैं, जैसे कि इत्वरिक-स्वल्प-कालिक और यावत्कथिक--जीवन पर्यन्त।

छेदोपस्थापनीय चारित्र उसे कहते हैं जो पूर्व पर्यायों को छेद कर प्रायश्चित्त के द्वारा पञ्च महाव्रत में आरोपण करे। यह दो प्रकार का है, सातिचार और निरतिचार। प्रथम और चरम जिनेश्वर भगवान् के समय के साधुओं को सामायिक चारित्र के पश्चात् ७ दिन अथवा ४ या ६ मास के अनन्तर

---

‡ श्रेणि से गिरते हुए को प्रतिपाती--संक्लिश्यमानक कहते हैं।

÷ श्रेणि चढ़ते हुए को अप्रतिपती--विशुद्ध्यमान कहते हैं।

+ प्राकृत में इसको जो 'अहक्खाय चारित्र' कहते हैं, उसकी शब्दव्युत्पत्ति इस प्रकार जानना चाहिये--'अह' 'आ' 'अक्खायं' यहां पर अथ शब्द याथातथ्य अर्थ में, तथा 'आङ्' उपसर्ग अभिविधि अर्थ में होता है, 'अक्खाय' क्रिया पद है, जिसकी सन्धि होने से 'अहाक्खायं' पद होता है, फिर 'ह्रस्वः संयोगे' इस सूत्र से आकार ह्रस्व होने से "अहक्खायं" पद बन जाता है। 'आदेर्यो जः' इत्यनेन पदादेर्यस्य जो भवति । बहुलाधिकारात्सोपसर्गस्थानादेरपि; यथा 'संजोगो' आर्षे लोपोऽपि, यथाख्यातम्--अहक्खायं।

× ग्यारहवें गुणस्थान तक यथाख्यात चारित्र प्रतिपाती और बारहवें में अप्रतिपाती होता है। उपशान्तमोहनीय, क्षीणमोहनीय और छद्मस्थ केवली भगवान् के यह चारित्र होता है।

छेदोपस्थापनीय चारित्र अवश्य होता है, और वह निरतिचार रूप होता है। यदि मूल गुण का घात न हो तो सातिचार रूप होता है। महाविदेह क्षेत्र में इसका अभाव ही है।

संयम के दोषों को दूर करने वाला परिहार विशुद्धिक चारित्र जानना चाहिये। जिसमें संक्लिष्ट भावों का परित्याग और असंक्लिष्ट भावों का ग्रहण किया जाता है, जिसे कि नव साधु यथोक्त विधि से अष्टादश मास उक्त तप करते हैं उसको भी परिहार विशुद्धिक चारित्र कहते हैं। उक्त तप को जो साधु तप रहा हो, उसे 'निर्विश्यमान' और जो तप चुका हो, उसे 'निर्विष्टकायिक' कहते हैं।

सूक्ष्मसम्पराय चारित्र वह है जो कि प्रतिपाती और अप्रतिपाती भेदों से युक्त हो।

यथाख्यात नामक चारित्र वह है जो कि यथार्थ पद का बोधक और शुद्ध क्रियानुष्ठान रूप होता है। यह चारित्र छद्मस्थ तथा केवली भगवान् दोनों ही को होता है*। यही चारित्र गुण प्रमाण है। यही जीव गुण प्रमाण है और यही गुण प्रमाण है अर्थात् इनका वर्णन यहां समाप्त होता है। और इसके बाद नय प्रमाण का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है।

नयप्रमाण।

[से किं तं नयप्पमाणे? सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—णेगमे १, संगहे २, ववहारे ३, उज्जुसुए ४, सद्दे ५, समभिरूढे ६, एवंभूए ७।]

से किं तं नयप्पमाणे? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—पत्थगदिट्ठंतेणं वसहिदिट्ठंतेणं पएसदिट्ठंतेणं।

से किं तं पत्थगदिट्ठंतेणं? से जहानामए केई पुरिसे परसुं गहाय अडवीसमहुत्तो गच्छेज्जा, तं पासित्ता

---

*इसको विशेष व्याख्या 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' 'भगवती' सूत्रसे जानना चाहिये।

इस [कोष्ठक] में दिये हुये पाठको अधिक पाठ जानना चाहिये।

केई वएज्जा–कहिं भवं गच्छसि ? अविसुद्धो णेगमो भणइ–पत्थगस्स गच्छामि, तं च केई छिंदमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं छिंदसि ? विसुद्धो णेगमो भणइ–पत्थयं छिंदामि, तं च केई तच्छमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं तच्छसि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पत्थयं तच्छामि, तं च केई उक्कीरमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं उक्कीरसि, विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पत्थयं उक्कीरामि, तं च केई (वि) लिहमाणं पासित्ता वएज्जा–किं भवं (वि)लिहसि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-पत्थयं (वि)लिहामि, एवं विसुद्धतरस्स णेगमस्स नामाउडिओ पत्थओ, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स मिउमेज्जसमारूढो पत्थओ, ऊज्जुसुयस्स पत्थओऽवि पत्थओ मेज्जंपि पत्थओ, तिण्हं सद्दनयाणं पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेणं पत्थओ निप्फज्जइ, से तं पत्थयदिट्ठंतेणं ।

[(से किं तं नयप्पमाणे ?) नयप्रमाण किसे कहते हैं ? (नयप्पमाणे) जिन अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं को एक ही अंश के द्वारा निर्णय किया जाय उसे नयप्रमाण कहते हैं, और वह (सत्तविहे पण्णत्ते,) सात प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(णेगमे) नैगम १, (संगहे) संग्रह २, (ववहारे) व्यवहार ३, (उज्जुसुए) ऋजुसूत्र ४, (सद्दे) शब्द ५, (समभिरूढे) समभिरूढ ६, और (एवंभूए) एवम्भूत।

(से किं तं नयप्पमाणे ?) नयप्रमाण किसे कहते हैं ? (नयप्पमाणे) जिन अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं को एक ही अंशके द्वारा निर्णय किया जाय उसे नयप्रमाण जानना चाहिये, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) +तीन प्रकारसे प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-)

+ 'यद्यपि नैगमसंग्रहादिभेदतो बहवो नयास्तथापि प्रस्थकादिदृष्टान्तत्रयेण सर्वेषामिह निरूपयितुमिष्टत्वात्त्रैविध्यमुच्यते ।' अर्थात् यद्यपि नैगमसंग्रहादि के भेद से नयों के भेद हैं तथापि प्रस्थकादि दृष्टान्तों के द्वारा यहां पर उन सब के ही निरूपण करने की इच्छा से तीन प्रकार से ही प्रतिपादन किया गया है ।

जैसे कि--(पत्थगदिट्ठंतेणं) प्रस्थक के दृष्टान्त से (वसहिदिट्ठंतेणं) वसति के दृष्टान्त से (पएसदिट्ठंतेणं ।) प्रदेश के दृष्टान्त से ।

(से किं तं पत्थगदिट्ठंतेणं ?) प्रस्थक के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप किस प्रकार जाना जाता है? (पत्थगदिट्ठंतेणं) जिन पदार्थों को प्रस्थक के दृष्टान्त द्वारा सिद्ध किया जाय उस को प्रस्थक दृष्टान्त जानना चाहिये, (से जहानामए) ×यथा देवदत्तादि नामक (केइ पुरिसे) कोई पुरुष (परसुं गहाय) कुल्हाड़े को लेकर (अडवीसमहुत्तो) अटवी के सन्मुख-अर्थात् वन में (गच्छेज्जा) जाय (तं पासित्ता) उसको देख कर (केई वएज्जा) कोई कहे (कहिं *भवं गच्छसि ?) आप कहां जाते हैं ? (अविसुद्धो णेगमो भणइ) अविशुद्ध नैगम नय कहता है कि (पत्थगस्स गच्छामि,) †प्रस्थक के लिये जाता हूँ, फिर (तं च केई छिंदमाणं) कोई उसको छेदन करते-छीलते हुए (पासित्ता) देख कर (वएज्जा-) कहे कि-(किं भवं छिंदसि ?) आप क्या छीलते हैं ? (विसुद्धो णेगमो भणइ) विशुद्ध नैगम नय कहता कि—(पत्थयं छिंदामि,) प्रस्थक को छीलता हूं। तदनन्तर (तं च केई) कोई उस को (तच्छमाणं) तक्षण-समान करते हुए (पासित्ता) देख कर (वएज्जा-) कहे कि-(किं भवं तच्छसि ?) आप क्या समान बनारहे हैं ? (विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-) ‡विशुद्धतर नैगम

× जैसे कि कोई पुरुष मगध देश प्रसिद्ध 'प्रस्थक'—धान्यमानविशेष के लिये काष्ठमय भाजन बनाने के हेतु कुल्हाड़े को हाथमें लेकर लकड़ी काटने के लिये जंगल में गया ।

† 'प्रस्थक' शब्द का अर्थ अमरकोषकारने 'परिमाणविशेष' ही किया है । यथा—"अस्त्रियामाढकद्रोणौ खारीवाहो निकुञ्चकः । कुडवः प्रस्थ इत्याद्याः, परिमाणार्थकः पृथक् ॥१॥"

* यद्यपि 'भवान्' शब्द अन्य पुरुष के साथ ही प्रयुक्त होता है, तथापि यहां पर मध्यम पुरुष के साथ व्यवहृत किया गया है, क्योंकि आर्ष होने से ऐसा ही प्रमाण भूत है । अथवा—"व्यत्ययश्च ।" प्राकृतादिभाषालक्षणानां व्यत्ययश्च भवति । प्रा० । व्या० । अ० ८ । पा० ३ । सू० ४४७ । इससे भी 'गच्छसि' क्रिया के साथ 'भवान्' शब्द का प्रयोग ठीक ही है । तथा-'भादीप्तौ' धातु से औणादिक 'डवतुप्' प्रत्यय का आगमन होने से 'भवतु' का भवान् रूप सिद्ध होता है और 'शतृ' प्रत्ययान्त होने से भी'भा' का'भवान्' और 'भू' का भवन प्रयोग सिद्ध होता है।

† यद्यपि वह काष्ठ के लिये जा रहा है तथापि-'नैके गमाः-वस्तुपरिच्छेदा यस्य' जिसके वस्तु परिच्छेद बहुत हैं वह नैगम नय है । नय अनेक प्रकार से वस्तु परिच्छेद मानते हैं । इस लिये कारण को कार्य का भाव मान कर उक्त प्रकार से उत्तर दिया है ।

‡ 'विशुद्धतर' शब्द इस लिये दिया है कि इसका प्रत्युत्तर पहिले से विशेष शुद्ध है । इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये ।

नय कहता है कि–(पत्थयं तच्छामि,) प्रस्थक को ठीक करता हूं पश्चात् (तं च केई) कोई उसको (उक्कीरमाणं) उत्किरन–बींजने से ठीक करते हुए (पासित्ता) देखकर (वएज्जा-) कहे कि–(किं भवं उक्कीरसि ?) आप क्या उत्कीरन करते हैं ? (विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-) विशुद्धतर नैगम नय कहता है कि (पत्थयं उक्कीरामि,) प्रस्थक को उत्कीरन करता हूं, (तं च केइ) फिर कोई उसको (लिहमाणं पासित्ता) लेखन—घड़ते हुए देख कर (वएज्जा-) कहे कि—(किं भवं लिहसि ?) आप क्या लेखन करते हैं ? (विसुद्धतराओ णेगमो भणइ) विशुद्धतर नैगम नय कहता है कि (पत्थयं लिहामि,) प्रस्थक को लेखन करता हूं, (एवं विसुद्धतरस्स णेगमस्स) इसी प्रकार विशुद्धतर नैगम नय के मत से (नामाउडिओ पत्थओ,) † नामाङ्कित प्रस्थक होता है। (एवमेव ववहारस्सवि,) इसी प्रकार व्यवहार नय से भी जानना चाहिये। (संगहस्स) ‡ संग्रह नय के मत से (मिउमेज्जसमारूढो) धान्य से भरा हो तभी वह पात्र (पत्थओ) प्रस्थक होता है (उज्जुसुयस्स) ÷ ऋजुसूत्र से (पत्थओ ऽवि पत्थओ) प्रस्थक भी प्रस्थक होता है, और (मेज्जं वि पत्थओ,) मेय—वस्तु भी प्रस्थक रूप ही है, तथा (तिण्हं सद्दनयाणं) तीनों *शब्द नयों के मतसे (पत्थयस्स

---

† अर्थात् प्रथम के नैगम नय से दूसरा कथन इसी प्रकार विशुद्धतर होता हुआ नामाङ्कित प्रस्थक निष्पन्न हो जाता है। क्योंकि जब प्रस्थक का नाम स्थापन कर लिया गया तभी विशुद्धतर नैगम नय से परिपूर्ण रूप प्रस्थक होता है।

‡ संग्रह नय सामान्यतया सभी पदार्थों को ग्रहण करता है इस लिये जो प्रमाण पूर्वक धान्य से भरा हुआ हो और कार्य रूप में परिणित हो, तभी वह पात्र प्रस्थक कहा जाता है, नहीं तो घट पटादि पदार्थ भी प्रस्थक संज्ञक हो जायंगे ।

÷ क्योंकि यह नय सिर्फ वर्तमान काल को ही मानता है; भूत, भविष्यत् को नहीं, इस लिये व्यवहार पक्ष में नाम रूप प्रस्थक को भी प्रस्थक और उसमें भरे हुए धान्य को भी प्रस्थक कहा जाता है। कहा भी है—

'तस्य निष्पन्नस्वरूपोऽर्थक्रियाहेतुः प्रस्थकोऽपि प्रस्थकः, तत्परिच्छिन्नं धान्यादिकमपि वस्तु प्रस्थकः, उभयत्र प्रस्थकोऽयमिति व्यवहारदर्शनात्, तथा प्रतीतेः, अपरं चासौ पूर्वस्माद्विशुद्धत्वाद्वर्तमाने एव मानमेये प्रस्थकत्वेन प्रतिपद्यते, नातीतानागतकाले, तयोर्विनिष्टानुत्पन्नत्वेनासत्त्वादिति ।'

* शब्द १, समभिरूढ २, और एवम्भूत ३, इन तीनों को 'शब्द नय' इस लिये कहते हैं कि ये शब्द को प्रधान मानते हैं। तथा प्रथम के चार नय 'अर्थ नय' कहलाते हैं, क्यों कि इनकी अर्थ में ही मान्यता है। कहा भी है—

'शब्दप्रधानाः नयाः शब्दनयाः–शब्दसमभिरूढैवंभूताः, शब्देऽन्यथस्थितेऽर्थमन्यथा नेच्छन्त्यमी, किन्तु यथैव शब्दो व्यवस्थितस्तथैव शब्देनार्थं गमयन्तीत्यतः शब्दनया उच्यन्ते, आद्यास्तु यथाकथञ्चिच्छब्दाः प्रवर्तन्तामर्था एव प्रधानमित्यभ्युपगमपरत्वादर्थनयाः प्रकीर्त्यन्ते ।'

अहि।गारजाणओ) प्रस्थक के अर्थाधिकार का जो ज्ञात होता है (जस्स वा वसेणं) अथवा जिसके ‡लक्ष्य से (पत्थओ निप्फज्जइ,) प्रस्थक निष्पन्न होता है, (से तं पत्थयदिट्ठंतेणं ।) यही प्रस्थक का दृष्टान्त हैं ।

भावार्थ–जिन अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं के स्वरूप को एक ही अंशद्वारा निरूपण किया जाय उसे नय प्रमाण कहते हैं । उनके सात भेद हैं, जैसे कि— नैगम १, संग्रह २, व्यवहार ३, ऋजुसूत्र ४, शब्द ५, समभिरूढ ६, और एवंभूत ७ ।

अथवा नय तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है—प्रस्थक के दृष्टान्त से १, वसति के दृष्टान्त से २, और प्रदेशों के दृष्टान्त से ३ । प्रस्थक का दृष्टांत निम्न प्रकार जानना चाहिये ——

जैसे कि–कोई पुरुष परशु हाथ में लेकर वन में जा रहा था, उसको देख कर किसी ने पूछा कि–आप कहां पर जाते हैं ? तब उसने कहा कि–'प्रस्थक के लिये जाता हूँ' । उसका ऐसा कहना अविशुद्ध नैगम नयाभिप्राय से है, क्यों कि अभी तो उसके विचार ही उत्पन्न हुए हैं । तदनन्तर किसी ने उसको काष्ट छीलते हुए देख कर पूछा कि—आप क्या छीलते हैं ? तब उसने उत्तर दिया कि प्रस्थक को छीलता हूँ । यह विशुद्ध नैगम नय का वचन है क्योंकि पहिले के बनिस्वत यह कथन शुद्ध है । इसी प्रकार काष्ट को तक्षण करते हुए, उत्की-

---

‡ क्यों कि भावप्रधान नयों में उपयोग ही मुख्य लक्षण है, और उपयोग बिना प्रस्थक की उत्पत्ति नहीं होती । अतः उपयोग को ही 'प्रस्थक' कहा जाता है । कहा भी है—

'प्रस्थकार्थाधिकारज्ञः' प्रस्थकस्वरूपपरिज्ञानोपयुक्तः प्रस्थकः, भावप्रधाना ह्येते नया इत्यतो भावप्रस्थकमेवेच्छन्ति, भावश्च प्रस्थकोपयोगोऽतः स प्रस्थकः, तदुपयोगवानपि च ततोऽव्यतिरेकात् प्रस्थकः, यो हि तत्रोपयुक्तः सोऽमीषां मते स एव भवति, उपयोगलक्षणो जीवः, उपयोगश्चेत् प्रस्थकादिविषयतया परिणतः किमन्यज्जीवस्य रूपान्तरमस्ति ? यत्र व्यपदेशान्तरं स्यादिति भावः ।' अर्थात् जीव ही प्रस्थक है, क्योंकि उपयोग से ही प्रस्थक की निष्पत्ति है, कारण कि उपयोग और प्रस्थक एक रूप होते हैं इस लिये आत्मा ही प्रस्थक है अन्य नहीं । लेकिन यह न जानना चाहिये कि जड़रूप में उपयोग वर्तने से आत्मा भी जड़वत् हो जाय; वह तो चैतन्य–कर्ता रूप ही है, और अचेतन चेतन का आधार ही नहीं । इस लिये प्रस्थक में जिसका उपयोग हो वही प्रस्थक है, अन्य नहीं ।

रन करते हुए, लेखन करते हुए को देख कर जब किसीने पूछा, तब उसने विशुद्धतरनैगम नय के मतसे उत्तर दिया कि—'प्रस्थक को तक्षण करता हूँ, उत्कीरन करता हूँ, लेखन करता हूँ' इत्यादि। क्योंकि विशुद्धतर नैगम नय के मत से जब प्रस्थक नामांकित हो गया तभी पूर्ण प्रस्थक माना जाता है।

संग्रह नय के मत से सब वस्तु सामान्य रूप है, इस लिये जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो तभी उसको प्रस्थक कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो घटपटादि वस्तु भी प्रस्थक संज्ञक हो जायगीं। इस वास्ते जब वह धान्यों से परिपूर्ण भरा हो और अपना कार्य करता हो तभी वह प्रस्थक कहा जाता है।

इसी प्रकार व्यवहार नय का भी मत है।

ऋजुसूत्र नय के मत से प्रस्थक और प्रस्थक से प्रमाण की हुई वस्तु दोनों ही प्रस्थक रूप मानी जाती हैं, क्योंकि दोनों को ही प्रस्थक कहने की रूढ़ि है, और दोनों में प्रस्थक का ज्ञान होता है। यह नय वर्तमान काल को ही मानता है; भूत, भविष्य को नहीं।

शब्द, समभिरूढ़ और एवम्भूत, इन तीनों को शब्द नय कहते हैं, क्योंकि ये शब्द के अनुकूल अर्थ मानते हैं। आद्य के चार नय अर्थ को प्राधान्य मानते हैं। इस लिये शब्द नयों के मत से जो प्रस्थक के अर्थ का ज्ञाता हो, वही प्रस्थक है, क्योंकि—जिसके उपयोग से प्रस्थक की निष्पत्ति है वास्तव में वही प्रस्थक है, अन्य नहीं और बिना उपयोग के प्रस्थक उत्पन्न हो ही नहीं सकता। इस लिये ये तीनों भावनय हैं।

सभी वस्तु अपने सद्भाव में सदैव काल विद्यमान हैं। इस वास्ते जिस वस्तु में जिस जीव का उपयोग होता है, शब्द नय के मत से उपयोग युक्त जीव को ही वस्तु कहा जाता है, क्योंकि—"उवओगो जीवलक्खणं" उपयोग लक्षण आत्मा का ही होता है। इस लिये जिस के द्वारा प्रस्थक की उत्पत्ति होती है, उस जीव को ही इन नयों के मत से प्रस्थक कहा जाता है। इस प्रकार प्रस्थक के दृष्टान्त द्वारा सातों नयों का स्वरूप दिखलाया गया है। अब द्वितीय वसति के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है—

से किं तं *वसहिदिट्ठंतेणं ? से जहानामए केई पुरिसे

---

* "वितस्ति-वसति-भरत-कातर-मातुलिंगे हः।" प्रा०। ८। १। २१४। एषु तस्य हो भवति।

कंचि पुरिसं वएज्जा–कहिं भवं वससि ? तं अविसुद्धो णे-गमो भणइ–लोगे वसामि, लोगे तिविहे पण्णत्ते तं जहा-उड्ढलोए अहोलोए तिरिअलोए, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धो णेगमो भणइ–तिरिअलोए वसामि, तिरिअलोए जंबूद्दीवाइआ सयंभूरमणपज्जवसाणा असंखिज्जा दीवस-मुद्दा पण्णत्ता, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–जंबूद्दीवे वसामि, जंबूद्दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तं जहा–भरहे एरवए हेमवए एरण्णवए हरिव-स्से रम्मगवस्से देवकुरू उत्तरकुरू पुव्वविदेहे अवरविदेहे, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-भरहे वासे वसामि, भरहे वासे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–दाहि-णड्ढभरहे उत्तरड्ढभरहे अ, तेसु सव्वेसु (दोसु) भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–दाहिणड्ढभरहे वसामि, दा-हिणड्ढभरहे अणेगाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोण-मुहपट्टणासमसंवाहसण्णिवेसाइं, तेसु सव्वेसु भवं वस-सि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–पाडलिपुत्ते वसामि, पाडलिपुत्ते अणेगाइं गिहाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—देवदत्तस्स घरे वसामि, देवदत्तस्स घरे अणेगा कोट्ठगा, तेसु सव्वेसु भवं वससि ? विसुद्धतराओ णेगमो भणइ–गब्भघरे वसामि, एवं विसु-द्धस्स णेगमस्स वसमाणो वसइ, एवमेव ववहारस्सवि, संगहस्स संथारसमारूढो वसइ, उज्जुसुयस्स जेसु, आगा-सपएसेसु ओगाढो तेसु वसइ, तिण्हं सद्दनयाणं आयभावे वसइ । से तं वसहिदिट्ठंतेणं ।

पदार्थ—(से किं तं वसहिदिट्ठंतेणं ?) वसति के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप कैसे जाना जाता है ? (वसहिदिट्ठंतेणं) वसति के दृष्टान्त से नयों का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिये—(से जहा नामए केई पुरिसे) जैसे कोई नामधारी पुरुष (कंचि पुरिसं) किसी पुरुष को (वएज्जा-) कहे कि—(कहिं भवं वससि ?) आप कहां पर रहते हो ? (तं) उसको (अविसुद्धो णेगमो भणइ-) अविशुद्ध नैगम कहता है—(लोगे वसामि,) *लोक में रहता हूँ, (लोगे तिविहे पण्णत्ते,) लोक तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(उड्ढलोए अहोलोए तिरियलोए,) ऊर्ध्व लोक, अधो लोक, तिर्यक् लोक। (तेसु सव्वेसु भवं वससि ?) तो क्या आप उन सभी में बसते हो ?(विसुद्धो) विशुद्ध (णेगमो भणइ) नैगम कहता है—(तिरिअलोए वसामि,) तिर्यक् लोक में रहता हूँ, (तिरिअलोए) तिर्यक् लोक में (जंबूदीवाइआ सयंभूरमणपज्जवसाणा) जम्बूद्वीप से लगा कर स्वयम्भूरमण पर्यन्त (असंखिज्जा दीवसमुद्दा) असंख्येय द्वीप समुद्र (पण्णत्ता,) प्रतिपादन किये गये हैं, (तेसु सव्वेसु) क्या उन सभी में (भवं वससि ?) आप रहते हो ? (विसुद्धतराओ णेगमो, विशुद्धतर नैगम भणइ-) कहता है—(जंबूदीवे वसामि,) जम्बूद्वीप में रहता हूँ। (जंबूदीवे दस खेत्ता) जम्बूद्वीप में दस क्षेत्र पण्णत्ता,) प्रतिपादन किये गये हैं, (भरहे) भारतवर्ष (एरवए) ऐरवत (हिमवए) हैमवत (एरण्णवए) ऐरण्यवत (हरिवस्से) हरिवर्ष (रम्मगवस्से रम्यकवर्ष (देवकुरू) देवकुरु (उत्तरकुरू) उत्तरकुरु (पुव्वविदेहे) पूर्व महाविदेह और (अवरविदेहे,) पश्चिम महाविदेह, (तेसु सव्वेसु भवं वससि ?) क्या आप उन सबमें रहते हो ? (विसुद्धतराओ णेगमो भणइ-) विशुद्धतर नैगम नय कहता है—(भरहे वासे वसामि) भारतवर्ष में रहता हूँ। (भरहे वासे दुविहे पण्णत्ते) भारतवर्ष के दो भेद कहे गये हैं। (तं जहा-) वे इस तरह हैं—(दाहिणड्ढभरहे उत्तरड्ढभरहे अ) दक्षिणार्द्ध भरत और उत्तरार्ध भरत। (तेसु सव्वेसु) क्या उन सभी में (भवं वससि ?) आप रहते हो ? (विसुद्धतराओ णेगमो) विशुद्धतर नैगम (भणइ-) कहता है—(दाहिणड्ढभरहे) दक्षिणार्द्ध भारत में (वसामि,) रहता हूँ, (दाहिणड्ढभरहे) दक्षिणार्द्ध भारत में (अणेगाइं) अनेक (गाम-) ग्राम (आगर) खान (णगर) ऐसा शहर जिसमें किसी भी प्रकार कर न लिया जाता हो (खेड) खेट-जिसके चारों ओर धूलका परकोटा हो (कव्वड) नगर (मडंब) मंडप जिसके आस पास कोई न रहता हो अथवा कोई शहर या ग्राम न हो (दोणमुह) द्रोण-

---

* लोक तो चतुर्दशरज्ज्वात्मक है, इस लिये अनर्थान्तर है। क्योंकि विशुद्ध नैगम नय अतिव्यप्ति होने से उसे असङ्गत मानता है। आगम में भी कहा है—"तन्निवासक्षेत्रस्यापि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकादनर्थान्तरत्वाद्, इत्थमपि च व्यवहारदर्शनाद्, विशुद्धनैगमस्त्वतिव्याप्तिपरत्वादिदमसङ्गतं मन्यते।"

मुख–जिसका जल और स्थल दोनों तरफ से रास्ता हो (पट्टण) पत्तन–शहर (आसम) आश्रम–मठ (संबाह) संवाह और (सन्निवेसाइं) सन्निवेश–रहने के स्थान आदि, (तेसु सव्वेसु) क्या उन सभी में (भवं वससि ?) आप रहते हो ? (विसुद्धतराओ णेगमो) विशुद्ध तर नैगम (भणइ-) कहता है–(देवदत्तस्स घरे) देवदत्त के घर में (वसामि,) बसता हूँ, (देवदत्तस्स घरे*) देवदत्त के घर में (अणेगा कोट्ठगा,) अनेक कोठे हैं, (तेसु सव्वेसु) क्या उन सभी में (भवं वससि ?) आप रहते हो ? (गब्भघरे) गर्भ घर में (वसामि,) रहता हूँ. (एवं) इस प्रकार (विसुद्धस्स णेगमस्स) विशुद्ध नैगम नय के मत से (वसमाणो वसइ,) वसते हुए को बसता हुआ माना जाता है ।

(एवमेव ववहारस्सवि) इसी प्रकार † व्यवहार नय का भी मन्तव्य है ।

(संगहस्स) ‡ संग्रह नय के मत से (संथारसमारूढो) शय्या पर आरूढ हुआ हो तभी वह (वसइ,) बसता हुआ कहा जाता है ।

(उज्जुसुयस्स) ऋजुसूत्र नय के मत से (जेसु आगासपएसु) जिन आकाश के प्रदेशों में (ओगाढो) अवकाश किया हो (तेसु वसइ.) उनमें ही बसता हुआ माना जाता है, ÷ (तिण्हं सद्दनयाणं) तीनों शब्द नयों के अभिप्राय से पदार्थ (आयभावे वसइ ।) आत्म

---

* "गृहस्य घरोऽपतौ । पा० । ८ । २ । १४४ ।

गृहस्य 'घर' इत्यदेशो भवति, पतिशब्दश्चेत् परो न भवति । घर सामि । अपताविति किम् ? गहवई ।" अर्थात् 'गृह' शब्द को 'घर' आदेश हो जाता है, यदि उसके परे 'पति' शब्द न हो तो । यहाँ पर 'गृह' शब्द के अनन्तर 'पति' शब्द नहीं है । इस लिये उक्त 'गृह' को 'घर' आदेश हो गया ।

† क्योंकि जहाँ पर जिसका निवास स्थान है वह उसी स्थान में बसता हुआ माना जाता है, तथा जहां पर रहे वही निवास स्थान उसका होता है । जैसे कि पाटलिपुत्र का रहने वाला यदि कारणवशात् कहीं पर चला जाय तब वहाँ पर ऐसा कहा जाता है कि–अमुक पुरुष पाटलिपुत्र का रहने वाला यहाँ पर आया हुआ है । तथा–पाटलिपुत्र में ऐसा कहते हैं–"अब वह यहाँ पर नहीं है अन्यत्र चला गया है ।" भावार्थ यह है कि विशुद्धतर नैगम नय और व्यवहार नय के मत से 'बसते हुए को बसता हुआ' मानते हैं ।

‡ यह नय सामान्यवादी है, इस लिये जब चलनादि क्रियाओं से रहित होकर कोई व्यक्ति स्वशय्यामें शयन करे तभी उसको बसता हुआ कहा जाता है । यदि घर में ही बसता हुआ माना जाय तो अतिप्रसङ्ग होगा, क्योंकि फिर यह भी मानना होगा कि इसी तरह लोकमें भी रहता है ।

÷ अर्थात् संस्तारक में जितने आकाश प्रदेश उसने अवगाहन किये हों, इस नय से उतने ही प्रमाण में वह बसता हुआ कहा जाता है ।

भाव में रहता हुआ माना जाता है + । (से तं वसहिदिट्ठंतेणं ।) यही वसति का दृष्टान्त है ।

भावार्थ—सातों नयों का पूर्ण बोध होने के लिये द्वितीय दृष्टान्त वसति का दिया गया है । उसे निम्न लिखित प्रश्नोत्तरों से इस प्रकार जानना चाहिये—

देवचन्द्र–हे प्रिय ! आप कहां पर बसते हैं ?

प्रमोदचन्द्र—(अविशुद्ध नैगम नय के आश्रित होता हुआ कहने लगा कि) मैं लोक में बसता हूँ ।

देवचन्द्र—लोक तो तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और तिर्यक् लोक, तो क्या आप तीनों लोकों में बसते हैं ?

प्रमोदचन्द्र—प्रियवर ! मैं केवल तिर्यक् लोक में ही बसता हूँ । (यह विशुद्ध नैगम नय का वचन है ।)

देवचन्द्र—तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीप से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्येय द्वीप समुद्र हैं, तो क्या आप उन सभी में रहते हैं ?

प्रमोदचन्द्र—मेरे परम प्रिय ! मैं जम्बूद्वीप में ही बसता हूँ । (यह विशुद्धतर०)

देवचन्द्र—मित्रवर ! जम्बूद्वीप में दश क्षेत्र वर्णन किये गये हैं । जैसे कि-भारत वर्ष १, ऐरवत २, हैमवत ३, ऐरण्यवत ४, हरिवर्ष ५, रम्यक ६, देवकुरु ७, उत्तरकुरु ८, पूर्व महाविदेह ९, और पश्चिम महाविदेह १० । तो क्या आप उन सभी में रहते हैं ?

प्रमोदचन्द्र—सुहृद ! मैं भारतवर्ष में बसता हूँ । (यह विशुद्धतर०)

देवचन्द्र—प्रिय ! भारतवर्ष के दो खण्ड हैं, जैसे कि–दक्षिणार्द्ध भारतवर्ष और उत्तरार्द्ध भारतवर्ष । तो क्या आप उन सभी (दोनों) में रहते हैं ?

प्रमोदचन्द्र—मान्यवर ! मैं दक्षिणार्द्ध भारतवर्ष मेंब सता हूँ । (यह विशुद्धतर०)

देवचन्द्र—मित्रवर्य ! दक्षिणार्द्ध भारतवर्ष में अनेक ग्राम, आकर, नगर,

---

+ जितने भी पदार्थ हैं वे सभी अपने २ ही स्वरूप में रहते हैं, अन्य स्वरूप में कोई भी निवास नहीं करता । यदि निवास करते माने जायँ तो सभी स्वरूप में रहते हैं या देश रूप में ? फिर आधाराधेय के भी प्रश्नोत्तर हैं, इत्यादि भावार्थ से जानना चाहिये । अत: सभी पदार्थ अपने ही स्वरूप में हैं, यही इन शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत नयों का मत है ।

खेड़ , शहर, मण्डप, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संवाह, सन्निवेश † आदि स्थान हैं, तो क्या आप उन सभी में निवास करते हैं ?

प्रमोदचन्द्र--हे सखे ! मैं *पाटलिपुत्र में बसता हूँ (यह विशुद्धतर०)

देवचन्द्र--प्रियवर ! पाटलिपुत्र में अनेक घर हैं, तो क्या आप उन सभी में बसते हैं ?

प्रमोदचन्द्र"हे वयस्य ! मैं देवदत्त के घर में बसता हूँ । (यह विशुद्धतर०)

देवचन्द्र--हे प्रीतिवर्द्धक ! देवदत्त के घर में अनेक-कोठे-कमरे हैं, तो क्या आप उन सभी में बसते हैं ?

प्रमोदचन्द्र--मैं देवदत्त के गर्भ घर में बसता हूँ । (यह विशुद्धतर०)

इस प्रकार पूर्वपूर्वापेक्षया विशुद्धतर नैगम नय के मत से बसते हुए को बसता हुआ माना जाता है । यदि वह अन्यत्र स्थान को चला गया हो तब भी जहां निवास करेगा वहीं उस को बसता हुआ माना जायगा ।

इसी प्रकार व्यवहार नय का मन्तव्य है । किन्तु विशेष इतना है कि जहां तक वह अन्यत्र अपना स्थान निश्चय न कर लेवे वहां तक उसके लिये यह शब्द उच्चारण किया जाता है कि-"अमुक पुरुष इस समय पाटलिपुत्र में नहीं है ।" और जहां पर जाता है वहां पर ऐसा कहते हैं कि-"पाटलिपुत्र के बसने वाला अमुक पुरुष यहाँ पर आया हुआ है, लेकिन बसते हुए को बसता हुआ मानना, यह दोनों नयों का मन्तव्य है ।

संग्रह नय से जब कोई स्वशय्या में शयन करे तभी बसता हुआ माना जाता है, क्योंकि चलनादि क्रिया से रहित होकर शयन करने के समय को ही संग्रह नय बसता हुआ मानता है । यह सामान्यवादी है, इस लिये इसके मत से सभी शय्याएं एक समान हैं, चाहे वे फिर कहीं पर ही क्यों न हों ।

---

† आकरं लोहाद्युत्पत्तिस्थानम् । नगरं कररहितम् । खेटं--धूलीमयप्राकारोपेतम् । कर्वटं--नगरम् । मडम्बं---अर्धतो दूरवर्त्तिसन्निवेशान्तरम् अथवा यस्य पार्श्वत आसन्नमपरं ग्रामनगरादिकं नास्ति, तत्सर्वतश्छिन्नजनाश्रयविशेषरूपं मडम्बमुच्यते । द्रोणमुखं--जलपथस्थलपथोपेतम् । पत्तनम् नानादेशागतपण्यस्थानम् । तच्च द्विधा, जलपत्तनं स्थलपत्तनं च । रत्नभूमिरित्यन्ये । आश्रमः--तापसादि स्थानं, अतिबहुप्रकारलोकसङ्कीर्णस्थानविशेषः । सन्निवेशाः- घोषादिरथवा ग्रामदीनां द्वन्द्वे ते च ते सन्निवेशाश्चेत्येव योज्यते ।

* वर्त्तमान में इसको 'पटना' कहते हैं जो कि विहार और उड़ीसा की राजधानी है ।

ऋजुसूत्र नय के मत से शय्या में जितने आकाश-प्रदेश अवगाहन किये गये हैं, वह उन्हीं पर बसना हुआ माना जाता है, कारण कि यह नय वर्तमान काल को ही स्वीकार करता है, शेष को नहीं। इस लिये जितने आकाश-प्रदेश किसी ने अवगाहन किये हैं, उन्हीं पर वह बसता है, ऐसा ऋजुसूत्र नय का मन्तव्य है।

शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत इन तीनों नयों का ऐसा मन्तव्य है कि जो २ पदार्थ हैं वे सब अपने २ स्वरूप में ही बसते हैं।

यदि अन्य पदार्थ अन्य परार्थ में बसता हुआ माना जाय तो यह शंका उत्पन्न होती है कि—अन्य पदार्थ यदि अन्य पदार्थ में बसता है तो क्या सर्व स्वरूप से बसता है या देश स्वरूप से ? यदि ऐसा माना जाय कि सर्व स्वरूप से बसता है तो आधार से आधेय पृथक् है, तब अपने स्वरूप का ही आप अज्ञात होगा। क्योकि जैसे संस्तारकादि आधार है, उसका स्वरूप उसी में विराजमान है। इसी प्रकार देवदत्तादि सभी पदार्थ स्वरूप में रहते हुए आधार से पृथक् प्रतीत नहीं होते, इसलिये यहपक्ष तो ठीक नहीं हुआ। अब यदि देश स्वरूप से आधेय आधार में ठहरता है, ऐसा माना जाय तो उसका स्वरूप भी देश मात्र ही रह जायगा। तथा देशमात्र में भी पदार्थ सब स्वरूप से रहता है या देश स्वरूप से ? यहां यदि प्रथम पक्ष ग्रहण किया जाय तब देशमात्र का नोदेशमात्र हो जायगा। यदि द्वितीय पक्ष ग्रहण किया जाय तो देश में देशमात्र की ही वर्तना सिद्ध होगी। इस प्रकार अनवस्था दोष आजायगा। इस लिये यह सिद्ध हुआ कि सभी पदार्थ स्वरूप-आत्मभाव में ही निवास करते हैं। क्योंकि यदि परस्वरूप में निवास करते हुए माने जायँ, तब स्व स्वरूप का भी अभाव हो जायगा।

इस प्रकार बसति के दृष्टान्त से सातों नयों का स्वरूप वर्णन किया गया है। अब प्रदेशों के दृष्टान्त द्वारा सातों नयों का विशेष विचार किया जाता है—

प्रदेश दृष्टान्त।

से किं तं पएसदिट्ठंतेणं ? णेगमो भणइ--छण्हं पएसो, तं जहा-धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो देसपएसो।

एवं वयंतं णेगमं संगहो भणइ—जं भणसि छण्हं

पएसो, तं न भवइ, कम्हा ? जम्हा जो देसपएसो सो तस्सेव दव्वस्स, जहा को दिट्ठंतो ? दासेण मे खरो कीओ दासोऽवि मे खरोऽवि मे तं; मा भणाहि छण्हं पएसो, भणाहि पंचण्हं पएसो, धम्मपएसो आगासपएसो अधम्म पएसो जीवपएसो खंधपएसो ।

एवं वयंतं संगहं ववहारो भणइ—जं भणासि पंचण्हं पएसो तं न भवइ, कम्हा ? जइ जहा पंचण्हं गोट्ठियाणं पुरिसाणं केइ दव्वजाए सामण्णे भवइ, तं जहा—हिरण्णे वा सुवण्णे वा धने वा धण्णे वा, ते जुत्तं वत्तुं तहा पंचण्हं पएसो, त मा भणाहि--पंचण्हं पएसो, भणाहि--पंचविहो पएसो, तं जहा—धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो ।

एवं वयंतं ववहारं उज्जुसुओ भणइ—जं भणासि पंचविहो पएसो तं न भवइ, कम्हा ? जइ ते पंचविहो पएसो एवं ते एक्केक्को पएसो पंचविहो एवं ते पणवीसतिविहो पएसो भवइ, तं मा भणाहि पंचविहो पएसो, भणाहि भइयव्वो पएसो—सिअ धम्मपएसो सिअ अधम्मपएसो सिअ आगासपएसो सिअ जीवपएसो सिअ खंधपएसो,

एवं वयंतं उज्जुसुयं संपइ सद्दनओ भणइ—जं भणासि भइयव्वो पएसो, तं न भवइ, कम्हा ? जइ भइयव्वो पएसो, एवं ते धम्मपएसोऽवि सिय धम्मपएसो सिय अधम्मपएसो सिय आगासपएसो सिय जीवपएसो सिय खंधपएसो, अधम्मपएसोऽवि सिय धम्मपएसो जाव सिय

खंधपएसो, जीवपएसोऽवि सिय धम्मपएसो जाव सिय खंधपएस, खंधपएसोऽवि सिय धम्मपएसो जाव सिय खंधपएसो, एवं ते अणवत्था भविस्सइ, तं मा भणाहि भइयव्वो पएसो, भणाहि धम्मे पएसे से पएसे धम्मे, अहम्मे पएसे से पएसे अहम्मे, आगासे पएसे से पएसे आगासे, जीवे पएसे से पएसे नोजीवे, खंधे पएसे से पएसे नोखंधे।

एवं वयंतं सद्दनयं समभिरूढो भणइ—जं भणसि धम्मे पएसे से पएसे धम्मे, जीवे पएसे से पएसे नोजीवे, खंधे पएसे से पएसे नोखंधे, तं न भवइ, कम्हा ? इत्थं खलु दो समासा भवंति, तं जहा—तप्पुरिसे अ कम्मधारए अ, तं ण णज्जइ कयरेणं समासेणं भणसि ? किं तप्पुरिसेणं किं कम्मधारएणं ? जइ तप्पुरिसेणं भणसि तो मा एवं भणाहि, अह कम्मधारएणं भणसि तो विसेसओ भणाहि, धम्मे अ से पएसे अ से पएसे धम्मे, अहम्मे अ से पएसे अ से पएसे अहम्मे, आगासे अ से पएसे अ से पएसे आगासे, जीवे अ से पएसे अ से पएसे नोजीवे, खंधे अ से पएसे अ से पएसे नोखंधे।

एवं वयंतं समभिरूढं संपइ एवंभूओ भणइ—जं जं भणसि तं तं सव्वं कसिणं पडिपुण्णं निरवसेसं एगगहणगहियं देसेऽवि मे अवत्थू पएसेऽवि मे अवत्थू। से तं पएसदिट्ठंतेणं। से तं नयप्पमाणे।

(से किं तं पएसदिट्ठंतेणं ?) * प्रदेश दृष्टान्त किसे कहते हैं ? (पएसदिट्ठं ×)

---

* 'प्रकृष्टो देशः प्रदेशो—निर्विभागो भाग इत्यर्थः' अर्थात् जो अति ही सूक्ष्म हो और जिसका विभाग न हो सके उसे प्रदेश कहते हैं। × एतदन्यप्रतिषु नास्ति।

प्रदेशों के दृष्टान्त से सप्तनयों का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिये। (णेगमो भणइ-) नैगम नय कहता है-(छण्हं पएसो) छह प्रकार के प्रदेश हैं, (तं जहा-) जैसे कि- (धम्मपएसो) धर्मास्तिकाय × का प्रदेश (अधम्मपएसो) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश (आगास पएसो) आकाशास्तिकाय का प्रदेश (जीवपएसो) जीव का प्रदेश (खंधपएसो) स्कन्ध का प्रदेश और (देसपएसो) देश का प्रदेश। इस प्रकार नैगम नय से षट् प्रदेश हुए।

(एवं वयंतं) इस प्रकार भाषण करते हुए (णेगमं) नैगम को (संगहो भणइ—) संग्रह नय कहता है (जं भणसि) जो तू कहता है कि (छण्हं पएसो) छओं के प्रदेश हैं (तं न भवइ,) वह नहीं होता है, (कम्हा ?) क्यों ? (जम्हा) इस लिये कि (जो देसपएसो) जो देश का प्रदेश है (सो तस्सेव दव्वस्स) वह उसी के *द्रव्य का है, (जहा को दिट्ठंतो ?) जैसे कोई दृष्टान्त है ? (दासेण मे खरो कीओ) मेरे नौकर ने गधा खरीदा है, दासोऽवि मे) दास भी मेरा ही है और (खरोऽवि मे) †गधा भी मेरा ही है। (तं मा भणाहि) इस लिये ऐसा मत कहो कि (छण्हं पएसो) छओं का प्रदेश है, लेकिन (भणाहि पंचण्हं पएसो,) कहो कि पांचोंके प्रदेश हैं, (तं जहा-) जैसे कि (धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो,) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

(एवं वयंतं संगहं) इस प्रकार कहते हुए ‡संग्रह नय को (ववहारो भणइ-) व्यवहार नय कहता है कि (जं भणसि पंचण्हं पएसो,) जो तू कहता है कि पांचों के प्रदेश हैं, (तं न भवइ,) वह सिद्ध नहीं होता है (कम्हा ?) कैसे ? (जइ जहा)

× धर्म शब्द से यहाँ पर धर्मास्तिकाय जानना चाहिये।

* जैसे कि द्रव्य का देश और उसी का प्रदेश, तो वह प्रदेश उस द्रव्य का ही है, अन्य का नहीं।

† देश प्रदेश सम्बन्धी होने से प्रदेश का ही है, अन्य का नहीं।

‡ यहाँ पर इतना विशेष जानना चाहिये कि यह वर्णन अविशुद्ध संग्रह नय का है, क्योंकि विशुद्ध संग्रह नय अनेक द्रव्य और प्रदेशों के विकल्पों को नहीं मानता और सभी पदार्थों को सामान्य रूप से ही स्वीकार करता है।

संग्रह नय ने उत्तर दिया कि यह दृष्टान्त है, जैसे कि लौकिक में यह व्यवहार देखा जाता है और कहा जाता है।

ादि जैसे (पंचण्हं गोट्ठिआणं पुरिसाणं) पांच गोष्ठिक पुरुषों की (केइ दव्वजाए) किंचित् द्रव्य जाति (सामण्णे भवइ,) सामान्य होती है, (तं जहा-) जैसे कि–(हिरण्णे वा सुवण्णे वा धणे वा धण्णे वा) हिरण्य या सोना या धन या धान्य इत्यादि, (ते जुत्तं वत्तु तहा) तो तुम्हारा वैसा कहना युक्त था कि (पंचण्हं पएसो,) ÷ पांचों के प्रदेश हैं, (तं मा भणाहि-) इस लिये ऐसा मत कहो कि (पंचण्हं पएसो,) पांचों के प्रदेश हैं, लेकिन (भणाहि-पंचविहो पएसो,) कहो कि-प्रदेश × पाँच प्रकार का है, (तं जहा-) जैसे कि–(धम्मपएसो अधम्मपएसो आगासपएसो जीवपएसो खंधपएसो) धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश ।

(एवं वयंतं ववहारं) इस प्रकार कहते हुए व्यवहार नयको (उज्जुसुओ भणइ-) ऋजु सूत्र * कहता है कि-(जं भणसि–पंचविहे पएसो,) जो तू कहता है कि पाँच प्रकार के प्रदेश हैं, (तं न भवइ ,) वह नहीं होता है, (कम्हा ?) क्यों ? (जइ ते) यदि तेरे मत में (पंचविहो पएसो) पांच प्रकार के प्रदेश हैं, तो (एवं ते एक्केक्को पएसो) इस प्रकार तेरे मतसे एक २ प्रदेश (पंचविहो) पाँच प्रकार का होता है, (एवं ते पणवीसतिविहो) इस तरह तेरे मत से पच्चीस प्रकार का (पएसो भवइ,) प्रदेश होता है, (तं मा भणाहि-) इसलिये ऐसा मत कहो कि–(पंचविहो पएसो,) पांच प्रकार का प्रदेश है, लेकिन (भणाहि-) कहो कि (भइयव्वो पएसो) प्रदेश ‡भजनीय हैं । (सिय धम्मपएसो) धर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (सिअ अधम्मपएसो, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय आगासपएसो) आकाशास्तिकाय का प्रदेश हो, (सिय जीवपएसो) जीवास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय खंधपएसो) या स्कन्ध का प्रदेश हो ।

÷ जैसे कि पांच गोष्टिक पुरुषों का किञ्चित् द्रव्य सोना-धान्य आदि सामान्य-साधारण होता है, उसी प्रकार यदि पांचों द्रव्यों के प्रदेश सामान्य—इकट्ठे हों तब संग्रह नय का कहना ठीक है कि 'पाँचों' के प्रदेश हैं लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि पांचों के प्रदेश भिन्न २ हैं ।

× द्रव्य पाँच प्रकार के हैं और प्रदेश तदाश्रयभूत हैं इसलिये प्रदेश भी पांच प्रकार का कहना चाहिये ।

* यह नय वर्तमान काल को ही मानता है, भूत और भविष्यत् काल को नहीं । इसलिये सभी पदार्थ अपने २ गुण स्वरूप हैं और पर गुण में नास्ति रूप हैं । स्वगुण वाले पदार्थ अपने ही गुण के बोधक हैं, पर गुण के नहीं ।

‡ भाज्य, विभजनीय, ये एकार्थी हैं ।

(एवं वयंतं उज्जुसुयं) इस प्रकार कहते हुये ऋजुसूत्र को (संपइ सद्दनओ भणइ-) सम्प्रति शब्द नय कहता है, (जं भणसि) जो तू कहता है कि-(भइयव्वो पएसो,) प्रदेश भजनीय है, (तं न भवइ,) वह नहीं होता (कम्हा ?) क्यों ? (जइ) यदि (भइयव्वो पएसो) प्रदेश विभजनीय हैं (एवं ते) इस प्रकार तेरा मत है तो (धम्मपएसोऽवि) धर्मास्तिकाय का प्रदेश भी (सिय धम्मपएसो) शायद धर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय अधम्म पएसो) या अधर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय आगासपएसो) या आकाशास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय जीवपएसो) अथवा जीवास्तिकाय का प्रदेश हो (सिय खंधपएसो,) कदाचित् स्कन्ध का प्रदेश हो, तथा-(अधम्मपएसोऽवि) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश भी (सिय धम्म पएसो) कदाचित् धर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (जाव सिअ खंधपएसो,) यावत् स्कन्ध का प्रदेश हो, इसी प्रकार (जीवपएसोऽवि) जीवास्तिकाय का प्रदेश भी (सिय धम्मपएसो) शायद धर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (जाव) यावत् (सिय खंधपएसो) स्कन्ध का प्रदेश हो, (खंधपएसोऽवि) स्कन्ध का प्रदेश भी (सिअ धम्मपएसो) शायद धर्मास्तिकाय का प्रदेश हो (जाव) यावत् (सिअ खंधपएसो) शायद स्कन्धका प्रदेश हो (एवं ते) इस प्रकार तेरे मतसे (अणवत्था भविस्सइ,) † अनवस्था हो जायगी, (तं मा भणाहि-) इस लिये ऐसा मत कहो कि (भइयव्वो पएसो,) प्रदेश भजनीय हैं, किन्तु (भणाहि-) कहो कि (धम्मे पएसे) धर्म रूप जो प्रदेश है (से पएसे धम्मे,) वही प्रदेश धर्म है अर्थात् *धर्मात्मक रूप है, इसी प्रकार (अहम्मे पएसे) जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है (से पएसे अहम्मे) वही प्रदेश अधर्मात्मक है, और (आगासे पएसे) जो आकाशास्तिकाय का प्रदेश है (से पएसे आगासे) वही प्रदेश × आकाशात्मक है, और (जीवे पएसे) जीवास्तिकाय का जो प्रदेश है (से पएसे नोजीवे,) वह प्रदेश ‡ नोजीव है, इसी प्रकार (खंधे पएसे) जो स्कन्ध का

---

† अर्थात् इस प्रकार से अनवस्था दोष होगा। जैसे कि—एक देवदत्त राजा का नौकर है शायद वह अमात्य-मंत्रीका भी हो, इसी प्रकार आकाशास्तिकायादि के प्रदेश भी जानना चाहिये।

* सकल धर्मास्तिकाय के देश से एक प्रदेश अभिन्न रूप है इस लिये प्रदेश को धर्मात्मक माना गया है।

× धर्म १ अधर्म २ और आकाश ३ ये तीनों एक २ द्रव्यात्मक हैं, इस लिये इनका एक २ प्रदेश भी तद्रूप है।

‡ जीव द्रव्य अनन्त हैं और एक प्रदेश सभी जीव द्रव्यों के एक देश में संगठित है तथा सकल जीवास्तिकाय के एक देश में उसकी वृत्ति है। यहाँ पर 'नो' शब्द देशवाची है। जो एक जीव द्रव्यात्मक प्रदेश हैं वह किस प्रकार अनन्त जीव द्रव्यात्मक हो सकता है? अर्थात् सकल जीवास्तिकाय में किस प्रकार वर्त सकता है?

प्रदेश है (से पएसे नोखंधे,) वही प्रदेश नो स्कन्धात्मक ÷ है।

(एवं वयंतं सद्दनयं) इस प्रकार भाषण करते हुए शब्द नय को (समभिरुढो भणइ,) समभिरूढ नय कहता है कि—(जं भणसि-) जो तू कहता है कि (धम्मे पएसे) धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है (से पएसे धम्मे) वही प्रदेश धर्मात्मक है, (जाव) यावत् (जीवे पएसे) जीव का जो प्रदेश है (से पएसे नोजीवे,) वही प्रदेश नोजीवात्मक है, तथा (खंधे पएसे) स्कन्ध का जो प्रदेश है (से पएसे नोखंधे,) वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है। (तं न भवइ,) ऐसा नहीं होता है, अर्थात् तेरा यह कहना युक्ति पूर्वक नहीं है, (कम्हा?) कैसे ? (इत्थं खलु) इस प्रकार से निश्चय ही (दो समासा भवंति) दोसमास होते हैं, अर्थात् यह वाक्य दो समास का है। (तं जहा-) जैसे कि—(तप्पुरिसे अ कम्मधारए अ) तत्पुरुष और कर्मधारय, इस लिये (ण णज्जइ) नहीं मालूम होता है कि (कयरेणं समासेणं भणसि ?) तू कौन से समास से कहता है ? (किं तप्पुरिसेणं किं कम्मधारएणं ?) तत्पुरुष से या कर्म्मधारय से ? (जइ तप्पुरिसेणं भणसि) यदि †तत्पुरुष से कहता है (तो मा एवं भणाहि,) तब ऐसा मत कह, (अह कम्मधारएणं भणसि) अथवा कर्म्मधारय *से कहता है (तो विसेसओ भणाहि,) तब विशेषतया कहना चाहिये

÷ स्कन्ध द्रव्य अनन्त होने हुए भी एक देशवर्ती हैं, इस लिये वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक कहा जाता है। नोजीव और स्कन्ध इसी लिये कथन किये गये हैं। जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य पृथक् २ अनन्त हैं।

† 'तत्पुरुष समास माननेसे 'धर्मप्रदेश' में भेदापत्ति होती है, यथा 'कुण्डे बदराणि।' प्रदेश और प्रदेशीका अभेद होता है। कारण कि अभेद में भी सप्तमी होना चाहिये, जैसे कि 'घटे रूपम्' इत्यादि, यदि ऐसा कहें तब दोनों पद सप्तम्यन्त होने से संशय रूप दोषापत्ति होती है, जैसे कि— 'धम्मे पएसे।' इस लिये तत्पुरुष के मानने से दोषापत्ति अवश्य है। प्रथम तो प्रदेश प्रदेशी के भिन्न होने की और दूसरी संशयात्मक होने की

* यदि 'धम्मे पएसे' में धर्म शब्द सप्तम्यन्त माना जाय तब—'हलताः सप्तम्याः। २।२।१०।' सूत्र की प्राप्ति होती है, जैसे—'वने हारिद्रका।' यदि धर्म शब्द प्रथमान्त माना जाय तब 'विशेषणं व्यभिचार्येकार्थं कर्मधारयश्च। २।१।५८।' सूत्र से कर्म्मधारय समास होता है, जैसे 'धर्मश्च स प्रदेशश्च स इति।' इस लिये इस उपचार से भी दोनों समासों की और अनुकूल विवक्षा से भी दोनों समासों की प्राप्ति होती है। जैसे—'अकामेऽमूर्द्धमस्तका०। २। २। १२।' इस सूत्र से 'कण्ठे कालः' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

जैसे कि–(धम्मे अ से पएसे अ ÷) धर्म और उसका जो प्रदेश है (से पएसे धम्मे) वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है, इसी प्रकार (अहम्मे अ से पएसे अ) अधर्म और उसका जो प्रदेश है (से पएसे अहम्मे) वही प्रदेश अधर्मात्मक है, (आगासे अ से पएसे अ) आकाश और उसका जो प्रदेश है (से पएसे आगासे) वही प्रदेश आकाश है, (जीवे अ से पएसे अ) जीव और उसका जो प्रदेश है (से पएसे नोजीवे) वही प्रदेश नोजीवात्मक है, (खंधे अ से पएसे अ) स्कन्ध और उसका जो प्रदेश है (से पएसे नोखंधे) वही प्रदेश स्कन्धात्मक है,

(एवं वयंतं) इस प्रकार करते हुए (समभिरूढं, समभिरूढनय को (संपइ एवंभूओ) सम्प्रति एवम्भूत नय (भणइ-) कहता है–(जं जं भणसि) जो २ तं ने धर्मास्तिकायादि पदार्थों का स्वरूप कहा है (तं तं सव्वं) वे सब (कसिणं) देश प्रदेश के कल्पना रहित तथा– (पडिपुण्णं) प्रतिपूर्ण–आत्मस्वरूप से अविकल और (निरवसेसं) अवयव रहित (एगगहणगहियं) एक नाम से ग्रहण की गई है, * (देसे ऽवि मे अवत्थू) मेरे †मत में देश भी अवस्तु है, और (पएसे ऽवि मे अवत्थू) प्रदेश भी मेरे मत में अवस्तु है। (से तं पएस दिट्ठंतेणं।) यही प्रदेशों का दृष्टान्त है। (से तं नयप्पमाणे) और यही ‡नयों के प्रमाण हैं। (सू० १४८)

भावार्थ–प्रदेशों के दृष्टान्त से नयों का जो स्वरूप अवगत हो, उसे प्रदेश दृष्टान्त कहते हैं। जैसे कि––

÷ समानाधिकरण कर्मधारय मानने से सब शंकाए दूर हो जाती हैं क्योंकि धर्मास्तिकाय से वह प्रदेश पृथक् तो है लेकिन देश से पृथक् नहीं है।

* वस्तु एक नाम युक्त ही होती है, अनेक नाम युक्त नहीं होती, क्योंकि पृथक् २ नाम होने से मत भेद अवश्य ही होगा। इस लिये वस्तु को देश प्रदेश न कहना चाहिये।

† अर्थात् मेरे मत में परिपूर्णात्मक रूप ही वस्तु है। प्रदेश और प्रदेशी का भेद नहीं है यदि प्रदेश मान लिया जाय तो दो पदार्थ हो जावेंगे, लेकिन दो होते नहीं हैं। अथवा प्रदेशी मान लिया जाय तो धर्म और प्रदेश शब्द पर्याय रूप हो जायँगे, और फिर दोनों का एक ही साथ उच्चारण करना पड़ेगा, जो कि युक्ति से असिद्ध हैं, इस लिये सम्पूर्ण वस्तु को ही वस्तु मानना चाहिये।

‡ यहां पर संक्षेप मात्र वर्णन किया गया है, विशेष वर्णन आगे 'नय द्वार' से जानना चाहिये। यद्यपि नयप्रमाण गुणप्रमाण के ही अन्तर्गत है, तथापि स्थान २ में अत्युपयोगी और अतिगहन विषय होने से इसका पृथक् वर्णन किया गया है।

नैगम नय कहता है कि प्रदेश छह हैं-धर्म प्रदेश १, अधर्मप्रदेश २, आकाश प्रदेश ३, जीवप्रदेश ४, स्कन्ध प्रदेश ५ और देश प्रदेश ६। इस प्रकार नैगम नय के वचन को सुन कर-

संग्रह नय ने कहा कि जो तूने षट् प्रदेश माने हैं वे ठीक नहीं हैं, क्योंकि जो तूने देश का भी प्रदेश मान लिया है वह युक्ति संगत इस लिये नहीं है कि जब द्रव्य का देश और फिर प्रदेश है तो वास्तव में वह द्रव्य ही का है, जैसे कि किसी ने कहा कि- मेरे दास ने गधा खरीद लिया यहां पर दास भी उसी का है और गधा भी उसी का है। इस लिये षट् प्रदे न कहना चाहिये किन्तु पांच ही प्रदेश कहना चाहिये। जैसे कि-धर्म प्रदेश १, अधर्म प्रदेश २, आकाश प्रदेश ३, जीव प्रदेश ४ और स्कन्ध प्रदेश ५। इस प्रकार अविशुद्ध संग्रह नय के वचन को सुन कर

व्यवहार नय ने कहा कि जो तू ने पांच प्रदेश प्रतिपादन किये हैं वे भी ठीक नहीं है, जैसे कि पांच गोष्ठिक पुरुषों का कई जाति का द्रव्य जैसे हिरण्य, सुवर्ण, धन अथवा धान्य साधारण साझी हों, यदि उसी प्रकार पांच प्रदेश साधारण हों, तब तो तेरा कहना युक्ति संगत है, लेकिन वे तो पृथक् २ हैं, इस लिये तेरा कहना युक्ति संगत नहीं है, किन्तु पांच प्रकार से प्रदेश कहने चाहिये, जैसे कि-धर्म प्रदेश यावत् स्कन्ध प्रदेश। इस प्रकार व्यवहार नय के वचन को सुन कर—

ऋजु सूत्र नय ने कहा कि—तेरा वाक्य भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक २ द्रव्य के पांच २ प्रदेश मानने से २५ हो जाते हैं, इस लिये यह कथन सिद्धान्त बाधित है। इस लिये ऐसा न कहना चाहिये, किन्तु मध्य में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश यावत् स्यात् स्कन्ध प्रदेश। क्योंकि वर्तमान में जिसकी अस्ति है उसी की अस्ति है, जिसकी नास्ति है उसी की नास्ति है। जो पदार्थ है वह अपने गुण में सदैव काल विद्यमान है, क्योंकि पांचों द्रव्य साधारण नहीं हैं, इस लिये स्यात् शब्द का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार ऋजुसूत्र नय के वचन को सुन कर-

शब्द नय ने कहा कि-यदि स्यात् शब्द का ही सर्वत्र प्रयोग किया जायगा तो अनवस्था दोष की प्राप्ति होजायगी। जैसे कि-स्यात् धर्म प्रदेश, स्यात् अधर्म प्रदेश इत्यादि। जैसे देवदत्त राजा का भी भृत्य है और वही अमात्य का भी है।

---

* विशुद्ध संग्रह नय भेद को विकल्प नहीं मानता।

इसी प्रकार आकाशादि प्रदेश भी जानना चाहिये। इस लिये ऐसा न कहना चाहिये, किन्तु ऐसा कहना चाहिये कि जो धर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही धर्मात्मक है इसी प्रकार जो स्कन्ध है वह प्रदेश नोस्कन्धात्मक है। इत्यादि इस प्रकार शब्द नय के वचनों को सुन कर—

समभिरूढ़ नय ने कहा कि–यह भी वाक्य युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि इस स्थान पर दो समासों की प्राप्ति है, जैसे कि—तत्पुरुष और कर्मधारय। क्योंकि–'धम्मे पएसे—से पएसे धम्मे'–इन वाक्यों में दो समासोंका बोध होता है। यदि धर्म शब्द को सप्तम्यन्त माना जाय तब तत्पुरुष समास होता है। जैसे कि–'बने हस्ती' इत्यादि। यदि प्रथमान्त माना जाय तब कर्मधारय समास होता है। जैसे कि—'नीलेसु उत्पलेसु नीलोत्पलम्' अलुक् समास की अपेक्षा से भी दो समास सिद्ध होते हैं। जैसे कि–'कण्ठे कालः।' इत्यादि। इस लिये नहीं जाना जाता, कि तू कौन से समास के आश्रय होकर प्रतिपादन करता है? क्योंकि—यदि तत्पुरुष मान लिया जाय तब दोषापत्ति आती है, जैसे कि 'धम्मे पएसे' धर्म शब्द को सप्तम्यन्त तत्पुरुष के मानने से भेदापत्ति सिद्ध होती है, यथा 'कुण्डे बदराणि।' इत्यादि। यदि अभेद में सप्तमी मानी जाय यथा—'घटे रूपम्' तब दोनों पद सप्तम्यन्त मालूम होने से संशयात्मक दोष उत्पन्न होता है, इस लिये तत्पुरुष समास तो किसी प्रकार सिद्ध ही नहीं हो सकता। यदि कर्मधारय है तो विशेष से कहना चाहिये। जैसे कि—

धर्मश्च स प्रदेशश्च स इति। 'समानाधिकरणः कर्मधारयः' इति वचनात्।

इस लिये ऐसा कहना चाहिये कि–मेरे मत में प्रदेश धर्मास्तिकाय है, क्योंकि वह उस से तो पृथक् है, लेकिन उसके देश से पृथक् नहीं है। इसी प्रकार नोस्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिये। इस प्रकार समभिरूढ नय के वचन को सुन कर–

एवंभूत नय ने कहा कि–जो जो तू ने सब संपूर्ण प्रतिपूर्ण निरविशेष एक ग्रहण वस्तु वर्णन की हैं वे सभी एक ही नामसे मेरे मत में ग्राह्य हैं, क्योंकि–मेरे मत में देश और प्रदेश दोनों ही अवस्तु हैं, भेद है नहीं। यदि द्वितीय पक्ष ग्राह्य है तब धर्म शब्द और प्रदेश शब्द पर्यायवाची सिद्ध हुए। दोनों शब्दों का युगपत् उच्चारण करना युक्ति से बाधित है। क्योंकि दोनों एक ही अर्थ के बोधक हैं, और एक उच्चारण करने से द्वितीय शब्द निरर्थक हो जावेगा। इस लिये एक अखंडरूप वस्तु ही ग्राह्य हो सकती है।

इस प्रकार यह सातों नयों का संक्षेप स्वरूप है। ये सातों नय अपना २ मत निरपेक्षता से वर्णन करते हुए दुर्नय हो जातेहैं 'सौगतादि समयवत्' और परस्पर सापेक्ष होते हुए सन्नय हो जाते हैं। उन सतों नयों का जो परस्पर सापेक्ष कथन है, वही सम्पूर्ण जैन मत है। क्योंकि जन मत अनेक नयात्मक है, एक नयात्मक नहीं। जैसे कि—स्तुतिकार ने भी कहा है कि—

"उदधाविव सर्वसिन्धवः, समुदीर्णास्त्वभिनाथदृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्ववोदधिः ॥१॥"

'हे नाथ! जैसे सब नदियां समुद्र में एकत्र होजाती हैं, इसी प्रकार आप के मत में सब नय एक साथ हो जाते हैं। किन्तु आपका मत किसी भी नय में समावेश नहीं हो सकता। जैसे कि समुद्र किसी एक नदी में नहीं समाता इसी प्रकार सभी वादियों का सिद्धान्त तो जैन मत है, लेकिन सम्पूर्ण जैन मत किसी वादी के मत में नहीं है।'

जिस प्रकार तीनों दृष्टान्तों के द्वारा सप्त नयों का स्वरूप दिखलाया गया है, उसी प्रकार सब पदार्थों में इन को घटा लेना चाहिये।

इस प्रकार प्रदेशका दृष्टान्त यहां पूर्ण हुआ और नय प्रमाणका वर्णन भी यहां पूर्ण हुआ। अब इसके अनन्तर संख्या प्रमाण जानना चाहिये—

संख्या प्रमाण।

से किं तं संखप्पमाणे? अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा-नामसंखा ठवणासंखा दव्वसंखा ओवम्मसंखा परिमाणसंखा जाणणासंखा गणणासंखा भावसंखा।

से किं तं नामसंखा? जस्स णं जीवस्स वा जाव, से तं नामसंखा।

से किं तं ठवणासंखा? जण्णं कट्ठकम्मे वा पोत्थकम्मे वा जाव, से तं ठवणासंखा। नामठवणाणं को पइविसेसो?❀ नाम [पाएणं] आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा होज्जा।

से किं तं दव्वसंखा? दुविहा पराणत्ता, तं जहा-आगमओ य नोआगमो य जाव, से किं तं जाणयसरीर-भविअसरीरवइरित्ता दव्वसंखा? तिविहा पराणत्ता, तं जहा-एगभविए बद्धाउए अभिमुहणामगोत्ते अ। एगभविए णं भंते! एगभविएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? जहराणेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। बद्धाउए णं भंते! बद्धाउएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? ज० अं०, उ० पुव्वकोडीतिभागं। अभिमुहनामगोए णं भंते! अभिमुहनामगोएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? जहराणेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। इयाणिं को णओ कं संखं इच्छइ, तत्थ नेगमसंगहववहारा तिविहं संखं इच्छंति, तंजहा—एगभवियं बद्धाउअं अभिमुहनामगोत्तं च। उज्जुसुओ दुविहं संखं इच्छइ, तंजहा—बद्धाउअं च अभिमुहनामगोत्तं च। तिरिण सद्दणया अभिमुहनामगोत्तं संखं इच्छंति, से तं जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा, से तं नोआगमओ दव्व-संखा, से तं दव्वसंखा।

पदार्थ—(से किं तं संखप्पमाणे?) सङ्ख्याप्रमाण किसे कहते हैं? (संखप्पमाणे) जिसके द्वारा गणना की जाय उसे सङ्ख्याप्रमाण * कहते हैं, और वह (अट्ठविहे पएणत्ते,)

---

*प्राकृत भाषा के "शषोः सः" सूत्रसे 'शङ्ख' के 'श' को 'स' आदेश होजाता है। अतः यहाँ पर 'संखा' शब्द से 'सङ्ख्या' और 'शङ्ख' दोनों ही का ग्रहण किया जाता है। जैसे कि 'गो' शब्द से पशु, भूमि इत्यादि का। यथा—"गोशब्दः पशुभूम्यम्बु, वाग्दिगर्थप्रयोगवान्। मन्द-प्रयोगे दृष्ट्यम्बुवज्रस्वर्गादिवाचकः ॥१॥" इसी प्रकार यहाँ पर भी 'संखा' प्राकृत में होने से 'सङ्ख्या' और 'शङ्ख' की प्रतीति होने से दोनों ही का ग्रहण किया गया है। इसलिये सुज्ञ जन

आठ प्रकार की कही गई है। (तं जहा-) जैसे कि—(नामसंखा) नाम संख्या १, (ठवणसंखा) स्थापना संख्या २, (दव्वसंखा) द्रव्य संख्या ३, (ओवम्मसंखा) औपम्य-उपमान संख्या ४. (परिमाणसंखा) परिमाण संख्या ५, (जाणणासंखा) ज्ञान संख्या ६, (गणणासंखा) गणना संख्या ७, और (भावसंखा) भाव संख्या ८।

(से किं तं नामसंखा ?) नाम* संख्या किसे कहते है ? (नामसंखा) नाम संख्या उसे कहते हैं कि, (जस्स णं जीवस्स वा जाव) जिस किसीका अथवा जीव का (से तं नामसंखा।) यही नाम संख्या है।

(से किं तं ठवणसंखा ?) स्थापना संख्या किसे कहते हैं ? (ठवणसंखा) स्थापना संख्या उसे कहते हैं कि (जण्णं कट्ठकम्मे वा) जो काष्ठ का कर्म हो अथवा (पोत्थकम्मे वा) पुस्तक का कर्म हो (जाव) यावत् (से तं ठवणसंखा।) यही स्थापना संख्या है।

(नामठवणाणं) नाम और स्थापना में (को पइविसेसो ?) कौन प्रतिविशेष है ? (नाम [पाएणं]) प्रायः नाम हो है, क्योंकि यह (आवकहियं) आयुपर्यन्त होता है, और (ठवणा) स्थापना (इत्तरिया वा होज्जा) स्वल्प काल भी होता है और (आवकहिया वा होज्जा।) आयुपर्यन्त भी होता है।

(से किं तं दव्वसंखा ?) द्रव्य संख्या किसे कहते हैं ? (दव्वसंखा) द्रव्य संख्या (दुविहा पण्णत्ता,) दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ य) आगम से और (नोआगमओ य,) नो आगम से (जाव) यावत्।

(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा ?) ज्ञशरीर, भव्य शरीर और व्यतिरिक्त द्रव्य संख्या किसे कहते हैं ? (जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा) ज्ञशरीर, भव्य शरीर और व्यतिरिक्त द्रव्य संख्या (तिविहा पण्णत्ता,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(एगभविए) जिस जीव को मृत्यु के पश्चात् विना अन्तर शंख में उत्पन्न होना है उसे एकभविक शंख कहते हैं, (बद्धाउए) जिसने शंख भव की आयु उपार्जन करली है उसे बद्धायुष्क कहते हैं, (अभिमुहनामगोत्ते अ।) और अभिमुख हो गया है नाम और गोत्र जिसका उसे अभिमुखनामगोत्र कहते हैं।

(एगभविए णं भंते !) हे भगवन् ! अब एक भवका वर्णन कीजिए (एगभविएत्ति) एक भव (कालओ केवच्चिरं होइ ?) काल से कितने समय का होता है ? (जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और (उक्कोसेणं पुव्वकोडी,) उत्कृष्ट से पूर्व क्रोड वर्ष प्रमाण।

(बद्धाउए णं भंते !) हे भगवन् ! अब बद्धायुष्क जीव का वर्णन कीजिए (बद्धा-

उयत्ति) बद्धायुष्क भाव में (कालओ केवचिरं होइ ?) काल से कितने समय तक रह सकता है ? (जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट से (पुव्वकोडी-तिभागं,) पूर्व क्रोड वर्ष के तीसरे भाग * प्रमाण।

(अभिमुहनामगोए णं भंते !) हे भगवन् ! अभिमुखनामगोत्र वाला (अभिमुहनामगो-एत्ति) अभिमुखनामगोत्र के भाव में (कालओ केवचिरं होइ ?) कितने काल तक रह सकता है ? (जहन्नेणं एक्कं समयं) जघन्य से एक समय (उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।) उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण।

(इयाणीं) इस समय (को णओ) कौन २ नय (कं संखं) किस २ शंख को (इच्छइ) चाहता है—(तत्थ णेगमसंगहववहारा) उन सातों नयों में से नैगम, संग्रह और व्यवहार (तिविहं संखं) तीन प्रकार के शंख को (इच्छंति,) चाहते हैं †, (तं जहा-) जैसे कि-(एगभविअं) एक भविक (बद्धाउअं) बद्धायुष्क (अभिमुहनामगोत्तं च,) और अभिमुख-नामगोत्र को।

(उज्जुसुओ दुविहं) ‡ऋजुसूत्र दो प्रकार के (संखं इच्छइ) शंख को चाहता है, (तं जहा-) जैसे कि—(बद्धाउअं च) बद्धायुष्क और (अभिमुहनामगोत्तं च) अभिमुख नाम-गोत्र को। (तिण्णि सद्दनया) तीनों शब्द नय ÷ सिर्फ (अभिमुहनामगोत्तं संखं) अभिमुख नामगोत्र शंख को (इच्छंति) चाहते हैं। (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा ।) यही ज्ञशरीर, भव्यशरीर और व्यतिरिक्त द्रव्य संख्या है। (से तं नोआगमओदव्वसंखा ।) यही नोआगम द्रव्य संख्या है। (से तं दव्वसंखा।) और इसी को द्रव्य संख्या कहते हैं।

---

* अर्थात् अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु के शेष रहने पर परभव की आयु का बन्धन होता है और वह उत्कृष्ट से पूर्वक्रोड के तीसरे भाग में होता है। इस लिये जब से किसी जीव ने शङ्ख भव की आयु का बन्धन किया है, तब से उसे बद्धायुष्क कहते हैं।

† जैसे कि व्यवहार में राज्य के योग्य कुमार को राजा अथवा घृत के योग्य घड़े को घी का घड़ा कहते हैं उसी प्रकार ये तीनों नय स्थूलदृष्टि से तीनों प्रकार के शंख मानते हैं।

‡ क्योंकि यह नय पूर्व नयों की अपेक्षा विशेष शुद्ध है। इसका मत यह है कि यदि एक भविक जीव शंख माना जाय तो अतिप्रसङ्ग दोष की प्राप्ति होगी, क्योंकि वह भाव शंख से बहुत अन्तर पर है।

÷ ये नय अतीव शुद्ध हैं। इस लिये इनके मत में प्रथम दोनों प्रकार के शंख भाव शंख के अन्तर पर होने से अकार्य रूप हैं। यद्यपि नयों में भाव की ही प्रधानता है, तथापि अतिप्रसङ्ग की निर्वृत्ति करते हुए और भाव शंख के समीप होने से तीसरे को भी मानते हैं।

भावार्थ—जिसके द्वारा संख्या—गणना की जाय उसे संख्या प्रमाण कहते हैं और वह आठ प्रकार से वर्णन किया गया है। जैसे कि–नाम संख्या १, स्थापना संख्या २, द्रव्य संख्या ३, उपमान संख्या ४, परिमाण संख्या ५, ज्ञान संख्या ६, गणना संख्या ७, और भाव संख्या ८। नाम संख्या और स्थापना संख्या का स्वरूप पूर्व कथित आवश्यक स्वरूप की तरह जानना चाहिये।

द्रव्य संख्या भी आगम से और नो आगम से वर्णन की गई है। तथा ज्ञशरीर, भव्यशरीर और व्यतिरिक्त द्रव्य संख्या तीन प्रकार से वर्णित है। जैसे कि–जिसे एकभव के अनन्तर मृत्यु प्राप्त कर शंख में उत्पन्न होना है उसे एकभविक शंख कहते हैं। इसमें द्विभविक त्रिभविकादि भवों की गणना नहीं है, क्यों कि वह भाव शंखके बहुत ही अन्तर पर है ? तथा जिसने शंख आयु का बन्धन कर लिया है उसे बद्धायुष्क शंख कहते हैं और जो भाव शंख के सन्मुख है उसे अभिमुखनामगोत्रकर्मपूर्वक शंख कहते हैं।

एकभविक शंख की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट क्रोड पूर्व वर्ष की होती है। बद्धायुष्क की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट क्रोड पूर्व के तीसरे भाग की होती है। तथा असंख्येय वर्षों की स्थिति वाले जीव मृत्यु प्राप्तकर देवयोनि में ही प्राप्त होते हैं, शंखमें नहीं। इसी लिये उत्कृष्ट पद में पूर्व क्रोड उपादान कारण है। अभिमुखनामगोत्र पूर्वक जीव जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह कर भाव शंख को प्राप्त हो जाता है।

नैगम, संग्रह और व्यववहार नय स्थूल दृष्टि से तीनों शंखों को मानते हैं। ऋजुसूत्र नय के मत में दो शंख और शेष तीन शब्द नयों के मत में केवल तृतीय शंख ही ग्राह्य है, क्योंकि वही भाव शंख प्राप्त होने योग्य है।

इस प्रमाण से केवली तीन काल के ज्ञाता सिद्ध किये गये हैं। क्योंकि कतिपय मत सर्वज्ञ को तीन काल के ज्ञाता नहीं मानते।

संख्या प्रमाण के अनन्तर अब उपमान प्रमाण का वर्णन किया गया जाता है–

औपम्य संख्या प्रमाण।

से किं तं ओवम्मसंखा ? चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–अत्थि संतयं संतएणं उवमिज्जइ, अत्थि संतयं असं-

तएणं उवमिज्जइ, अत्थि असंतयं संतएणं उवमिज्जइ, अत्थि असंतयं असंतएणं उवमिज्जइ; तत्थ संतयं संतएणं उवमिज्जइ जहा-संता अरिहंता संतएहिं पुरवरेहिं संतएहिं कवाडेहिं संतएहिं वच्छेहिं उवमिज्जइ, तं जहा—

पुरवरकवाडवच्छा, फलिहभुत्रा दुंदुहित्थणियघोसा ।
सिरिवच्छंकिअवच्छा, सव्वे वि जिणा चउव्वीसं* ॥१॥

संतयं असंतएणं उवमिज्जइ जहा-संताइं नेरइयतिरक्खजोणियमणुस्सदेवाणं आउयाइं असंतएहिं पलिओवमसागरोवमेहिं उवमिज्जंति २ ।

असंतयं संतएणं उवमिज्जइ तं जहा—

परिजूरियपेरंतं, चलंतबिंटं पडंतनिच्छीरं ।
पत्तं व वसणपत्तं, कालप्पत्तं भणइ गाहं ॥ १ ॥
जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हेऽवि अ होहिहा जहा अम्हे ।
अप्पाहेइ पडंतं, पंडुयपत्तं किसलयाणं ॥ २ ॥
णवि अत्थि णवि अ होही, उल्लावो किसलपंडुपत्ताणं ।
उवमा खलु एस कया, भवियजणविबोहणट्ठाए ॥ ३ ॥

असंतयं असंतएहिं उवमिज्जइ जहा- खरविसाणो तहा ससविसाणो + । से तं ओवम्मसंखा ।

पदार्थ—(से किं तं ओवम्मसंखा ?) औपम्य-उपमान संख्या किसे कहते हैं ? (ओवम्मसंखा) किसी वस्तु का उपमा के द्वारा प्रमाण जानना उसे औपम्य संख्या कहते हैं, और वह (चउविहा पएणत्ता,) चार प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(अत्थि संतयं) विद्यमान पदार्थ को (संतएणं) विद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है १ । (अत्थि संतयं) विद्यमान पदार्थ को (असंतएणं) अ-

* क्वचित् 'वंदा जिणे चउव्वीसं' ।

+ क्वचित् 'जहा खरविसाणं तहा ससविसाणं' ।

विद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है २, (अत्थि असंतयं) अविद्यमान पदार्थ को (असंतए) अविद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ,) उपमा दी जाती है ३,(अत्थि असंतयं)अविद्यमान पदार्थ को (असंतएणं) अविद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है ४।

(तत्थ संतयं) अब इनमें से विद्यमान पदार्थ को (संतएणं) विद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है (जहा) जैसे कि—(संता अरिहंता) विद्यमान अर्हन्तको (संतएहिं पुरवरेहिं) विद्यमान प्रधान नगरों के (संतएहिं कवाडेहिं) विद्यमान कपाटों–दर-वाजों के (संतएहिं वच्छेहिं) विद्यमान वक्षःस्थल से (उवमिज्जइ,) उपमा दी जाती है, (तं जहा-) जैसे कि

(पुरवरकवाडवच्छा, फलिहभुआ दुंदुहित्थणिअघोसा ।)
(सिरिवच्छंकिअवच्छा, सव्वेऽवि जिणा चउव्वीसं ॥ १ ॥)

प्रधान नगरके कपाटों के समान जिनके वक्षः स्थल, अर्गला के समान भुजाएं, देवदुन्दुभि या स्तनित—विद्युत् के समान शब्द और जिनका वक्षः स्थल स्वस्तिक से अङ्कित है, इसी प्रकार चौबीस तीर्थङ्कर हैं १।

(संतयं) विद्यमान पदार्थ को (असंतएणं) अविद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ,) उपमा दी जाती है, (जहा–) जैसे कि–

(संताइं नेरइअतिरिक्खजोणिअमणुस्सदेवाणं आउयाइं) नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवताओं की विद्यमान आयु (असंतएहिं पलिओवमसागरोवमेहिं) अविद्यमान जो पल्योपम और सागरोपम हैं उन से (उवमिज्जंति,) उपमाएं दी जाती हैं।

(असंतयं संतएणं) अविद्यमान को विद्यमान से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है, (तं जहा-) जैसे कि—

(परिजूरिअपेरंतं, चलंतबिंटं पडंतनिच्छीरं ।)
(पत्तं च वसणपत्तं, कालप्पत्तं भणइ गाहं ॥१॥)

बसन्त समय में जो अतिजीर्ण कल्प है वह दूध रहित परिपक्व होनेके कारण बींट से नीचे गिर जाता है। पुनः पत्रवियोग रूपी व्यसन से नष्ट हो जाता है, ऐसे गाथा कहती है ॥ १ ॥

(जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हेऽवि अ होहिहा जहा अम्हे ।)
(अप्पाहेइ पडंतं, पंडुअपत्तं किसलयाणं ॥ २ ॥)

कोई जीर्ण पत्र वृक्ष से गिरता हुआ अभिनव कान्ति रूप किशलय को कहता है कि–जैसे तुम हो वैसे ही हम पहले थे और तुम भी अब हमारे जैसे हो जाओगे। किशलयों को कहता हुआ जीर्ण पत्र नीचे गिर जाता है ॥ २ ॥

अर्थात् जैसे तुम सब जीवोंको आनन्द पहुँचाने वाले हो और अपनी श्री से अलंकृत हो उसी प्रकार हम भी पूर्व में ऐसे ही थे, और तुम भी अब हमारे जैसे हो जाओगे। क्योंकि तुम्हारा यही भाव होगा, जो इस समय हमारा हो रहा है। इस लिये अपनी ऋद्धि को देख कर अहंकार न करो और दूसरों की निन्दा मत करो।

(णवि अत्थि णवि अ होही, उल्लावो किसलपंडुपत्ताणं।)

(उवमा खलु एस कया, भविअजणविबोहणट्ठाए ॥ ३ ॥)

किशलय और जीर्ण पत्रोंका परस्पर कभी वार्त्तालाप न हुआ, न होता है और न होगा, सिर्फ भव्यजीवों के बोध के लिये निश्चय ही यह उपमा की है ॥३॥

प्रथम पक्षमें किशलयों की जो अवस्था विद्यमान है उसी प्रकार अवस्था जीर्ण पत्रों की भूत काल में थी, वर्त्तमान में नहीं। तथा द्वितीय जो जीर्णावस्था पत्रों की वर्त्तमान् में है वही दशा भविष्यत काल में किशलयों को होगी। इस प्रकार निर्वेद के वास्ते उपमा और उपमेय का स्वरूप जानना चाहिये।

चतुर्थ भंग में—(असंतयं) अविद्यमान पदार्थ की (असंतएणं) अविद्यमान पदार्थ से (उवमिज्जइ) उपमा दी जाती है। (जहा-) जैसे कि—(खरविसाणे) गधे के शृंग अविद्यमान हैं (तहा ससविसाणे।) उसी प्रकार खरगोश के शृंग भी अभाव रूप हैं और जैसे शश के शृंग अभाव रूप हैं उसी प्रकार खरके शृंग हैं। (से तं ओवम्मसंखा।) वही पूर्वोक्त उपमान संख्या का स्वरूप है, अर्थात् इसे ही उपमा संख्या कहते हैं।

भावार्थ उपमान प्रमाण भी चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-विद्यमान पदार्थों को विद्यमान पदार्थों से उपमेय करना १, विद्यमान को अविद्यमान से उपमेय करना २, अविद्यमान को विद्यमान से उपमेय करना ३, और अविद्यमान को अविद्यमान से उपमेय करना ४।

विद्यमान पदार्थ की विद्यमान पदार्थ से उपमा दी जाती है। जैसे-विद्यमान अर्हन् भगवन्तों के वक्षः स्थल की विद्यमान नगर के कपाटादि से उपमेय करना १, विद्यमान पदार्थ की अविद्यमान पदार्थ से उपमा दी जाती है। जैसे चारों गतियों के जीवों की आयु को पल्योपम और सागरोपमों से मान करना २, अविद्यमान दृष्टान्तों से विद्यमान पदार्थ को भव्यजनों के बोध के वास्ते बोधित करना। जैसे कि-वृक्ष के बींट से गिरते हुये जीर्ण पत्र ने किशलयों को कहा कि हे पल्लवो! सुनो—जैसे तुम हो इसी प्रकार हम भी थे, और जैसे इस समय हम हैं तुम भी कालान्तर में इसी प्रकार हो जाओगे। इस लिये अपनी श्री का अहंकार मत करो। तुम को जीर्ण पत्र पुनः २ कह रहा है। यद्यपि पत्रों

को परस्पर वार्त्तालाप करना असंगत है तथापि भव्यजनों के बोध के लिये इस प्रकार कहा जाता है। यह अविद्यमान पदार्थ से विद्यमान पदार्थ को उपमा देना तीसरा भंग है ३, चतुर्थ भंग वह है कि जो अविद्यमान को अविद्यमान से उपमान दिया जाय, जैसे गधेके शृंग हैं उसी प्रकार शशके विषाण हैं। क्यों कि दोनों अभाव रूप हैं ४। यही उपमा संख्या है--

अब इसके अनन्तर परिमाण संख्या का वर्णन किया जाता है।

परिमाण संख्या।

से किं तं परिमाणसंखा ? दुविहा पराणत्ता, तं जहा कालियसुयपरिमाणसंखा दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा य। से किं तं कालियसुयपरिमाणसंखा ? अणेगविहा पराणत्ता, तं जहा—पज्जवसंखा अक्खरसंखा संघायसंखा पयसंखा पायसंखा गाहासंखा* संखायसंखा सिलोगसंखा वेढसंखा निज्जुत्तिसंखा, अणुओगदारसंखा, उद्देसगसंखा अज्झयणसंखा सुअखंधसंखा अंगसंखा, से तं कालियसुयपरिमाणसंखा।

से किं तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा ? अणेगविहा पराणत्ता, तं जहा—पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा पाहुडसंखा पाहुडियासंखा पाहुडपाहुडिआसंखा वत्थुसंखा, से तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा। से तं परिमाणसंखा।

पदार्थ--(से किं तं परिमाणसंखा ?) परिमाण संख्या किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से वर्णन की गई है ? (परिमाणसंखा) जिसके † द्वारा पर्याय आदिकों की संख्या की जाय उसे परिमाण संख्या कहते हैं, वह (दुविहा) दो प्रकार से (पएणत्ता,) प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(कालियसुयपरिमाणसंखा) कालिक श्रुतपरिमाण संख्या, (दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा य।) और दृष्टिवादश्रुतपरिमाण संख्या।

(से किं तं कालिसुयपरिमाणसंखा ?) कालिकश्रुतपरिमाण संख्या किसे कहते हैं ? (कालियसुयपरिमाणसंखा) जिन २ सूत्रों को प्रथम या दूसरे प्रहर में वाचना दी जाय

* एतदन्यत्र नोपलभ्यते।

† संख्यायते अनयेति संख्या—परिमाणं पर्यवादि तद्रूपा संख्या परिमाणसंख्या।

और उनका जो परिमाण हो उसे कालिक श्रुतपरिमाण * संख्या कहते हैं, और वह (अणेगविहा पण्णत्ता,) अनेक प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि— (पज्जवसंखा) पर्यव–पर्याय संख्या, (अक्खरसंखा) अक्षर संख्या, (संघायसंखा) संघात संख्या, (पयसंखा) पद संख्या, (पायसंखा) पाद संख्या, (गाहासंखा) गाथा संख्या, (संखायसंखा) संख्यात संख्या, (सिलोगसंखा) श्लोक संख्या, (वेढसंखा) वेष्टक संख्या, (निज्जुत्तिसंखा) निर्युक्तिसंख्या , (अणुओगदारसंखा) अनुयोगद्वार संख्या, (उद्देसगसंखा) उद्देश संख्या, (अज्झयणसंखा) अध्ययन संख्या, (सुयखंधसंखा) श्रुतस्कन्ध संख्या, (अंगसंखा) अंगसंख्या, (से तं कालिअसुअपरिमाणसंखा ।) यही कालिक श्रुतपरिमाण संख्या है।

(से किं तं दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा ?) दृष्टिवादश्रुतपरिमाण संख्या किसे कहते हैं ? (दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा) दृष्टिवादश्रुतपरिमाण संख्या (अणेगविहा पण्णत्ता,) अनेक प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(पज्जवसंखा) पर्यव–पर्याय संख्या (जाव अणुओगदारसंखा) यावत् अनुयोगद्वार संख्या, (पाहुडसंखा) प्राभृति संख्या, (पाहुडिआसंखा) प्राभृतिका संख्या, (पाहुडपाहुडिआसंखा) प्राभृत प्राभृतिका संख्या, (वत्थुसंखा) वस्तु संख्या (से तं दिट्ठिवायसुअपरिमाणसंखा ।) यही दृष्टिवादश्रुतपरिमाण संख्या है और (से तं परिमाणसंखा ।) यही परिमाण संख्या है।

---

* कालिकश्रुतपरिमाणसंख्यायां पर्यवसंख्या इत्यादि, पर्यवादिरूपेण—परिमाणविशेषेण कालिकश्रुतं संख्यायत इतिभावः । इनका नाम अन्वर्थ है । जैसे–१-जिसमें पर्यायोंकी संख्या हो । २–जिसमें अक्षरों की गणना हो । ३–द्व्यादि संयोगादि व्यंजनों की गणना हो । ४–जिसमें वाक्यों के पदों की संख्या हो । अथवा–'सुप्तिङन्तं पदम् । १ । ४ । १४ । पा० ।' जिस के अन्त में सुप् और तिङ् हो उसे पद जानना चाहिये । ५–श्लोकादि के चतुर्थांश को पाद कहते हैं । इनकी जिसमें संख्या हो उसे पाद संख्या कहते हैं । ६–जिसमें गाथाओं की संख्या हो । ७–जिसमें गणना की संख्या हो । ८–जिसमें श्लोकों की संख्या हो । ९–जिसमें वेष्टक–छन्द विशेषकी संख्या हो । १०–जिसमें निर्युक्ति की संख्या हो । ११–जिसमें अनुयोग द्वार की संख्या हो । १२–जिसमें उद्देशकों की संख्या हो । १३–जिसमें अध्ययनों की संख्या हो । १४ जिसमें श्रुत स्कन्धों की गणना हो । १५—जिसमें अङ्गादिकों की संख्या हो । इनका विशेष वर्णन नन्दी और अनुयोगद्वार से जानना चाहिये । १६—जिसमें प्राभृतों की संख्या हो । १७–जिसमें प्राभृति की संख्या हो । १८—जिसमें प्राभृतप्राभृतिका की संख्या हो । १९–जिसमें जीवादि वस्तुओं की संख्या हो । ये सब पूर्वान्तर्गत श्रुताधिकारविशेष हैं । यथा—"प्राभृतादयः

भावार्थ—जिसकी गणना की जाय उसे सङ्ख्या कहते हैं, और जिसमें पर्यवादि का परिमाण हो उसे परिमाण संख्या कहते हैं। इसके दो भेद हैं, जैसे कि—कालिकश्रुत परिमाण संख्या १, और दृष्टिवादश्रुत परिमाण संख्या २।

जिन २ सूत्रों की प्रथम या दूसरे प्रहर में वाचना दी जाय और उनका जिसमें परिमाण हो उसे कालिकश्रुत परिमाण संख्या कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं, जैसे कि-पर्याय संख्या १, अक्षर संख्या २, संघात संख्या ३, पद संख्या ४, पाद संख्या ५, गाथा संख्या ६, संख्या संख्या ७, श्लोक संख्या ८, वेष्टक संख्या ९, निर्युक्ति संख्या १०, अनुयोगद्वार संख्या ११, उद्देशक संख्या १२, अध्ययन संख्या १३, श्रुतस्कन्ध संख्या १४, और अंग संख्या १५।

तथा—दृष्टिवादश्रुत परिमाण संख्या भी इसी प्रकार जानना चाहिये। लेकिन प्राभृत संख्या, प्राभृतिका संख्या, प्राभृत प्राभृतिका संख्या और वस्तु संख्या, इतना विशेष जानना चाहिये। इसी को परिमाण संख्या कहते हैं।

इसके बाद अब ज्ञान संख्या का स्वरूप वर्णन किया जाता है—

ज्ञान संख्या।

से किं तं जाणणासंखा? जो जं जाणइ, तं जहा—सद्दं सद्दिओ गणिअं गणिओ निमित्तं नेमित्तिओ कालं कालणाणी वेज्जयं वेज्जो, से तं जाणणासंखा।

पदार्थ—(से किं तं जाणणासंखा ?) ज्ञान* संख्या किसे कहते हैं ? (जाणणासंखा) ज्ञान संख्या उसे कहते हैं कि-(जो जं जाणइ,) जो जिसको जानता हो, (तं जहा-) जैसे कि-(सद्दं सद्दिओ) जो शब्द को जानता† हो उसे शाब्दिक (गणिअं गणिओ) जो गणित को जानता हो उसे गणितज्ञ, (निमित्तं नेमित्तिओ) जो निमित्त को जानता हो उसे नैमित्तिक, (कालं कालणाणी) जो काल को जानता हो उसे कालज्ञानी-कालज्ञ (वेज्जयं वेज्जो,) जो वैद्यक जानता हो उसे वैद्य कहते हैं, (से तं जाणणासंखा।) यही ज्ञान संख्या है।

---

* "ज्ञो ञः।" प्रा०। सू०। ८। २। ८३। ज्ञः सम्बन्धिनो ञस्य लुग् वा भवति। जाणं—णाणं—ज्ञानम्। इत्यादि।

† यहां पर अभेदोपचार नयके मतसे वर्णन किया जारहा है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

भावार्थ—जिसके द्वारा पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है उसे ज्ञान कहते हैं और जिसमें उसकी संख्या का परिमाण हो उसे ज्ञान संख्या कहते हैं। जैसे कि जो शब्द को जानता है वही शाब्दिक है, जो गणित को जानता है वही गणितज्ञ है, जो निमित्त को जानता है वही नैमित्तिक है, जो काल [भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान आदि] को जो जानता है वही कालज्ञानी है, जो वैद्यक जानता है वही वैद्य है। इसी को ज्ञान संख्या कहते हैं।

इसके अनन्तर अब गणना संख्या का स्वरूप जानना चाहिये—

गणना संख्या।

से किं तं गणणासंखा? एक्को गणणं न उवेइ, दुप्पभिइ संखा, तं जहा-संखेज्जए १, असंखेज्जए २, अणंतए ३,

से किं तं संखेज्जए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा-जहगणए उक्कोसए अजहगणमणुक्कोसए।

से किं तं असंखेज्जए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—परित्तासंखेज्जए जुत्तासंखेज्जए असंखेज्जासंखेज्जए।

से किं तं परित्तासंखेज्जए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—जहगणए उक्कोसए अजहगणमणुक्कोसए।

से किं तं जुत्तासंखेज्जए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—जहगणए उक्कोसए अजहगणमणुक्कोसए।

से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—जहगणए उक्कोसए अजहगणमणुक्कोसए।

से किं तं अणंतए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—परित्ताणंतए जुत्ताणंतए अणंताणंतए।

से किं तं परित्ताणंतए? तिविहे पगणत्ते, तं जहा—जहगणए उक्कोसए अजहगणमणुक्कोसए।

से किं तं जुत्ताणंतए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—जहण्णए उक्कोसए अजहण्णमणुक्कोसए ।

से किं तं अणंताणंतए ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—जहण्णए अजहण्णमणुक्कोसए ।

जहण्णयं संखेज्जयं केवइयं होइ ? दोरूवयं, तेणं परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं संखेज्जयं न पावइ ।

उक्कोसयं संखेज्जयं केवइयं होइ ? उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स परूवणं करिस्सामि-से जहानामए पल्ले सिया एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोयणसये तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्ध अंगुलं च किंचि विसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए, तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीवसमुद्दाणं उद्धारो घेप्पइ, एगो दीवे एगो समुद्दे एवं पक्खिप्पमाणेणं जावइया दीवसमुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवइए खेत्ते पल्ले आइट्ठा पढमा सलागा, एवइयाणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिया तहावि उक्कोसयं संखेज्जयं न पावइ । जहा को दिट्ठंतो ? से जहानामए मंचे सिया आमलगाणं भरिए, तत्थ एगे आमलए पक्खित्ते सेऽवि माते अण्णेऽवि पक्खित्ते सेऽवि माते अण्णेवि पक्खित्ते सेऽवि माते एवं पक्खिप्पमाणेहिं २*

---

* क्वचिदेतत् 'पक्खिप्पमाणेणं' ।

होही सेऽवि आमलए जंसि पक्खित्ते से मंचए भरिज्जिहिइ जे तत्थ आमलए न माहिइ ।

एवामेव उक्कोसए संखेज्जए रूवे पक्खित्ते जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं भवइ ।

पदार्थ—(से किं तं गणणासंखा ?) गणना संख्या किसे कहते हैं ? (गणणासंखा) जिनकी संख्या गणना के द्वारा की जाय उसे गणना संख्या * कहते हैं, (एक्को गणणं न उवेइ,) 'एक' गणन संख्याको प्राप्त नहीं होता, इस लिये (दुप्पभिइ संखा,) दो प्रभृति -दो से संख्या शुरू होती है, (तं जहा-) जैसे कि—(संखेज्जए) संख्येयक (असंखेज्जए) असंख्येयक और (अणंतए ।) अनन्तक ।

(से किं तं संखेज्जए ?) संख्येयक किसे कहते हैं ? (संखेज्जए) जिसकी संख्या की जाय, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजहण्णमणुक्कोसए) मध्यम ।

(से किं तं असंखेज्जए ?) असंख्येयक किसे कहते हैं ? (असंखेज्जए, जो संख्येयक न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है तं जहा-) जैसे कि—(परित्तासंखेज्जए) परीतासंख्येयक (जुत्तासंखेज्जए) युक्तासंख्येयक और (असंखे-ज्जासंखेज्जए ।) असंख्येयासंख्येयक ।

(से किं तं परित्तासंखेज्जए ?) परीतासंख्येयक किसे कहते हैं ? (परित्तासंखेज्जए) जो उत्कृष्ट संख्येयक न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि— (जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजह-ण्णमणुक्कोसए ।) मध्यम ।

(से किं तं जुत्तासंखेज्जए ?) युक्तासंख्येयक किसे कहते हैं ? (जुत्तासंखेज्जए) जो

---

* एतावन्त एते इति संख्यानं गणनसंख्या ।

यत एकस्मिन् घटादौ दृष्टे घटादि वस्त्विदं तिष्ठतीत्येवमेव प्रायः प्रतीतिरुत्पद्यते, नैक-संख्याविषयत्वेन, अथवा आदानसमर्पणादिव्यवहारकाले एकं वस्तु प्रायो न कश्चिद्गणयत्यतोऽसंव्य-वहार्यत्वादल्पत्वाद्वा नैको गणनसंख्यामवतरति । अर्थात्—

जैसे कि कोई एक घटादि वस्तु देख कर घटादि वस्तु का तो ज्ञान हो जाता है, लेकिन संख्या नहीं मालूम होती । तथा—लौकिक व्यवहार में भी परम स्तोक होने से देने लेने में इसकी गणना नहीं की जाती ।

उत्कृष्ट परीत न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजहण्णमणुक्कोसए ।) मध्यम ।

(से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए ?) असंख्येयासंख्येयक किसे कहते हैं ? (असंखेज्जासंखेज्जए) जो उत्कृष्ट युक्त न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि--(जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजहण्णमणुक्कोसए ।) मध्यम ।

(से किं तं अणंतए ?) अनन्तक किसे कहते हैं ? (अणंतए) जो उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि–(परित्ताणंतए) परीतानन्तक, (जुत्ताणंतए) युक्तानन्तक और (अणंताणंतए ।) अनन्तानन्तक ।

(से किं तं परित्ताणंतए ?) परीतानन्तक किसे कहते हैं ? (परित्ताणंतए) जो उत्कृष्ट अनन्तानन्तक न हो, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकारसे प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि–(जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजहण्णमणुक्कोसए ।) मध्यम ।

(से किं तं जुत्ताणंतए ?) युक्तानन्तक किसे कहते हैं ? (जुत्ताणंतए) जो परीत उत्कृष्ट न हो और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि--(जहण्णए) जघन्य (उक्कोसए) उत्कृष्ट और (अजहण्णमणुक्कोसए ।) मध्यम ।

(से किं तं अणंताणंतए ?) अनन्तानन्त किसे कहते हैं ? (दुविहे पण्णत्ते,) वह समुद्र में डालें तो जितने में वे व्याप्त हुए हों उनका एक शलाका होता है ।
दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(जहण्णए) अजहण्णमणुक्कोसए) जघन्य और मध्यम ।

(जहण्णयं संखेज्जयं) जघन्य संख्येयक (केवइयं होइ ?) कितने प्रमाण में होता है ? (दोरूवयं) दो रूप प्रमाण, (तेणं परं) उसके पश्चात् (अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) मध्यम स्थान हैं, (जाव) यावत् (उक्कोसयं संखेज्जयं) उत्कृष्ट संख्येयक (न पावइ ।) प्राप्त नहीं होता ।

(उक्कोसयं संखेज्जयं) उत्कृष्ट संख्येयक (केवइयं होइ ?) कितने प्रमाण में होता है ? (उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स) उत्कृष्ट संख्येयक का (परूवणं) प्ररूपण (करिस्सामि-) करूँगा— (से जहानामए) तद्यथा नामक—जैसे कि--(पल्ले सिया) पल्य हो, जो कि (एगं जोयण-

सयसहस्सं) एक लाख योजन (आयामविक्खंभेणं, लम्बा चौड़ा हो, और (तिण्णि जोयण-सयसहस्साइं) तीन* लाख (सोलहसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोयणसए) सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन (तिण्णि अ कोसे) और तीन कोश (अट्ठावीसं च धणुसयं) एक सौ अट्ठाईस धनुष (तेरस य अंगुलाइं अद्धं अंगुलं च) साढ़े तेरह अङ्गुलसे (किंचि विसेसाहिअं) कुछ अधिक (परिक्खेवेणं पण्णत्ते,) परिधि प्रतिपादन की गई है, पश्चात् (से णं पल्ले) उस पल्य को (सिद्धत्थयाणं भरिए,) सर्षपों से भर दिया जाय, (तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं) फिर उन सर्षपों से (दीवसमुद्दाणं) द्वीप और समुद्रों का (उद्धारो घेप्पइ) उद्धार प्रमाण निकाला जाता है, जैसे कि-(एगो दीवे एगो समुद्दो) एक २ द्वीप में और एक २ समुद्र (एवं पक्खिप्पमाणेहिं) इस† प्रकार प्रक्षेप करते—फेंकते हुए (जावइया दीवसमुद्दा) जितने द्वीप समुद्र हैं, (तेहिं सिद्धत्थएहिं) उन सरसोंसे (अप्फुण्णा) भर जायं (एस णं एवइए खेत्ते पल्ले) इतने क्षेत्र पल्य का (आइट्ठा पढमा सलागा,) प्रथम शलाका होता है, (एवइया णं सलागाणं) इतने शलाकों के (असंलप्पा लोगा) अकथनीय लोक (भरिया,) भरे हुए हैं, (तहावि) तो भी वे (उक्कोसयं संखेज्जयं) उत्कृष्ट* संख्येयक को (न पावइ,) प्राप्त नहीं होते (जहा को दिट्ठंतो ?) जैसे कोई दृष्टान्त भी है ? (से जहानामए) तद्यथा नामक—जैसे कि (मंचे सिआ) मञ्च—वार पाई हो या स्थान विशेष हो,जो कि—(आमलगाणं भरिए) आंव-लों† से भरी हुई हो (तत्थ) तदनन्तर (एगे आमलए) एक आँवला (पक्खित्ते) डाला (सेऽवि माते) वह भी समा गया (अण्णेऽवि पक्खित्ते) अन्य अन्य भी डाला (सेऽवि माते) वह भी समा गया, (अन्नेऽवि पक्खित्ते) दूसरा और भी डाला (सेऽवि माते) वह भी

---

* यहां पर मूल सूत्रकार ने ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष और १३॥ अङ्गुल की जो परिधि प्रतिपादन की है, उसे जम्बूद्वीप की जानना चाहिये। वृत्तिकार का भी यही अभिप्राय है। यथा—

"परिही तिलक्ख सोलस, सहस्स दो य सय सत्तावीसऽहिया।

कोसतिय अट्ठवीसं, धणुसय तेरंगुलद्धहियं ॥ १ ॥"

परिधिस्त्रयो लक्षाः षोडश सहस्रा द्वे शते सप्तविंशत्यधिके।

क्रोशत्रिकमष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्धाधिकानि ॥१॥

* क्योंकि वह पल्य चोटि तक भरा हुआ नहीं है इस लिये उसे उत्कृष्ट संख्येयक नहीं कहते।

† शिखा के बिना भी लौकिक रूढि है कि यह मंच चोटी तक भर गया है।

† कल्पना की जाय कि कोई देव उस पल्य में से उन सरसों को एक २ द्वीप और एक २

समा गया, (एवं पक्खिप्पमाणेहिं २) इस प्रकार प्रक्षेप करते २ (होही सेऽवि अ मलए) वही आँवला होगा (जंसि पक्खित्ते) जिसके डालने से (से मंचए) वह मञ्च (भरिज्जिहिइ) भर जायगा (जे तत्थ) जिसके बाद (आमलए) आँवला (न माहिइ,) न समा सकेगा। (एवामेव) इसी प्रकार (उक्कोसए संखेज्जए) उत्कृष्ट संख्येयक हो (रूवे पक्खित्ते) रूप प्रक्षेप करने से (जहण्णयं) जघन्य (परित्तासंखेज्जयं) परीतासंख्येयक (भवइ।) होता है ।

भावार्थ--जिसके द्वारा गणना की जाय उसे गणना संख्या कहते हैं। एक का अंक तो संख्या की गिनती में नहीं आता, इस लिये दो से गिनती शुरू होती है। इसके तीन भेद हैं-संख्येयक १, असंख्येयक २, और अनन्तक ३।

१, संख्येयक—जघन्य २, मध्यम २, और उत्कृष्ट ३।

२, असंख्येयक-जघन्य परीत असंख्येयक १, मध्यम परीत असंख्येयक २, और उत्कृष्ट परीत असंख्येयक ३; जघन्य युक्त अ ंख्येयक ४, मध्यम युक्त असंख्येयक ५, और उत्कृष्ट युक्त असंख्येयक ६; जघन्य असंख्येयक असंख्येयक ७, मध्यम असंख्येयक असंख्येयक ८, और उत्कृष्ट असंख्येयक असंख्येयक ९।

३, अनन्त--जघन्य परीतानन्त १, मध्यम परीतानन्त २, और उत्कृष्ट परीतानन्त ३; जघन्य युक्तानन्त ४, मध्यम युक्तानन्त ५, और उत्कृष्ट युक्तानन्त ६; जघन्य अनन्तानन्त ७, और मध्यम अनन्तानन्त ८, इस प्रकार संक्षेप से कुल बीस अंक वर्णन किये गये हैं। अब इन्हीं का विस्तार पूर्वक विवेचन करते हैं। जैसे-

०   ० असत्कल्पना के द्वारा चार पल्य जम्बूद्वीप प्रमाण कल्पित
 ० कर लिये जायें और उनकी परिधि ३ लाख, १६ हजार, २२७ योजन,
०   ० कोश, १२८ धनुष, १३॥ अंगुल से कुछ विशेष होती है। इनके नाम अनुक्रम से शलाका १, प्रतिशलाका २, महाशलाका ३ और अनवस्थित ४ हैं। वे एक सहस्र योजन प्रमाण गहरे और जम्बूद्वीप की वेदिका के समान ऊंचे हैं। उनमें से अनवस्थित पल्य को सर्षपों से भर दिया जाय फिर उसको असत्कल्पना के द्वारा कोई देवता उठाकर एक २ सर्षप एक २ द्वीप और एक २ समुद्र में प्रक्षेप करता जाय। जिस समय उन सब सर्षपों का अवसान आजाए तब एक सर्षप प्रथम शलाका पल्य में प्रक्षेप कर दिया जाय। तथा--जहां तक वे सब सर्षप प्रक्षेप किये थे इतने ही क्षेत्र का एक और अनवस्थित पल्य कल्पित कर लिया जाय। फिर वे सर्षप पूर्ववत् अन्य द्वीप समुद्रों में प्रक्षेप कर दिये जावें। जब एक सर्षप शेष रह जाय तब उसी शलाका पल्य में प्रक्षेप किया जाय। इसी प्रकार पूर्णतया शलाका पल्य को अनवस्थित पल्य के द्वारा भर दिया जाय तद-

नन्तर अनवस्थित पल्य को रख कर शलाका पल्य को उठा कर शेष द्वीप समुद्रों में सर्षप प्रक्षेप करें। जब एक सर्षप शेष रह जाय तब प्रतिशलाका पल्य में उसे प्रक्षेप करें। पश्चात् अनवस्थित पल्य के द्वारा प्रथम शलाका पल्य को भरना चाहिये। जब अनवस्थित और शलाका पल्य दोनों ही भर जांय तब फिर शलाका पल्य में से दूसरे द्वीप समुद्रों में सर्षप प्रक्षेप किया जाय। जब एक सर्षप रह जाय तब उसे प्रतिशलाका पल्य में प्रक्षेप कर दिया जाय। इस प्रकार अनवस्थित पल्य से शलाका पल्य भर दिया जाय और शलाका से प्रतिशलाका। पश्चात् प्रतिशलाका के सर्षप के बीज उठाकर अन्य द्वीप समुद्रों में प्रक्षेप किया जाय। जब शेष एक सर्षप रह जाय तब उसे महाशलाका नामक पल्य में रख देना चाहिये। पश्चात् शलाका पल्य में से उठा कर दूसरे द्वीप समुद्रों में बीज प्रक्षेप करने चाहियें। फिर उसका एक शेष सर्षप प्रतिशलाका में रखना चाहिये, अर्थात् इतने परिमाण का अनवस्थित पल्य कल्पित कर लेना चाहिये, और उसके द्वारा पूर्ववत् प्रथम शलाका पल्य भरना * चाहिये।

इसी प्रकार शलाका से प्रतिशलाका को और प्रतिशलाका से महाशलाका भरना चाहिये। जब चारों पल्य भर जायं तब उनके सर्षपों की एक राशि कर लेना चाहिये। क्योंकि—जब तृतीय पल्य के द्वारा भरा जाय तब द्वितीय पल्य को उसे पहले के द्वारा भरना चाहिये, और प्रथम पल्य को अनवस्थित पल्य से भरना चाहिये जब तीनों भर जायं तब अनवस्थित को भर कर पुनः चारों की एक राशि कर लैनी चाहिये, उस राशि के एक रूप अधिक को उत्कृष्ट संख्येयक कहते हैं। क्योंकि दो जघन्य संख्येयक हैं। जघन्य से अधिक उत्कृष्ट से न्यून मध्यम संख्येयक जानना चाहिये। सूत्र में जहां २ पर संख्येयक का वर्णन आता है वहां २ पर मध्यम संख्येयक ही जानना चाहिये। तथा जब उत्कृष्ट संख्येयक में एक रूप अधिक प्रक्षेप किया जाय तब उस राशि को जघन्य परीत असंख्येयक कहते हैं।

अब शेष असंख्येयक का निरूपण कियाजाता है—

---

* जब तृतीय पल्य द्वितीय पल्य के द्वारा पूर्णतया भर दिया जाय तो अनवस्थित पल्य के साथ २ प्रथम शलाका पल्य भी भर देना चाहिये। जब शलाका पल्य भी पूर्णतया भर जाय। तदफिर अनवस्थित के साथ ही प्रतिशलाका पल्य भरना चाहिये। जब वह भी पूर्ण भर जाय तब अनवस्थित को भी भर कर चारों की एक राशि कर लेनी चाहिये, उस राशि में से एक सर्षप न्यून करने से उत्कृष्ट संख्येयक होता है।

असंख्येयासंख्येयक ।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं न पावइ ।

उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केवइयं होइ ? जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयं परित्तासंखेज्जमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसं परित्तासंखेज्जयं होइ, अहवा जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं होइ ।

जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं केवइयं होइ ? जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, अहवा उक्कोसए परित्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्ते जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, आवलियावि तत्तिआ चेव, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं न पावइ ।

उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं केवइयं होइ ? जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ, अहवा जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ ।

जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं केवइयं होइ ? जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं

ठाणाइं जाव उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं ण पावइ ।

उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं केवइयं होइ ? जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ, अहवा जहण्णयं परित्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ ।

पदार्थ—(तेण परं) उसके बाद (अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) मध्यम स्थान हैं, (जाव) यावत् (उक्कोसयं परित्तासंखेज्जं) उत्कृष्ट परीतासंख्येयक (न पावइ) नहीं प्राप्त होता (उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केवइयं होइ ?) उत्कृष्ट परीतासंख्येयक कितने प्रमाण में होता है ? (जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं) जघन्य परीतासंख्येयक को (जहण्णयं परित्तासंखेज्जमेत्ताणं रासीणं) सिर्फ जघन्य परीतासंख्येयक की राशि से (अण्णमण्णब्भासो) परस्पर गुणित कर (रूवूणो) एक रूप न्यून (उक्कोसं परित्तासंखेज्जयं होइ,) उत्कृष्ट परीतासंख्येयक होता है, (अहवा) अथवा (रूवूणं) एक न्यून (जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं) जघन्य युक्तासंख्येयक (उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं) उत्कृष्ट * परीतासंख्येयक (होइ ।) होता है ।

(जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं) जघन्य युक्तासंख्येयक (केवइयं होइ ?) कितने प्रमाण में होता है ? (जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं) जघन्य परीतासंख्येयक मात्र राशि का (अण्णमण्णब्भासो) उसी को उसी के साथ गुणा करने से (पडिपुण्णो) प्रतिपूर्ण (जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं) जघन्य युक्तासंख्येयक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (उक्कोसए परित्तासंखेज्जए) परीतासंख्येयक में (रूवं पक्खित्तं) रूप प्रक्षेप करने–जोड़ने से (जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं) जघन्य युक्तासंख्येयक (होइ) होता है, (आवलिआवि तत्तिआ चेव,) आवलिका का प्रमाण भी उतना ही होता है, † (तेण परं) तत्पश्चात् (अजहण्णमणुक्को-

---

* अर्थात् जितने जघन्य परीतासंख्येयक के रूप हों उनको परस्पर गुणा कर उनमें एक न्यून करने से उत्कृष्ट परीतासंख्येयक होता है । जैसेकि–असत्कल्पनया जघन्य परीत राशिके पांच ५ रूप पांच ५ वार स्थापन कर लिये जायँ ५×५×५×५×५=३१२५ पश्चात् प्रथम पांच को द्वितीय पांच से गुणा करने पर—५×५=२५ होते हैं । इसी संख्या को तीसरे पांच से गुणा करने पर—२५×५=१२५ होते हैं । इसी प्रकार शेष अंकों को गुणा करने से १२५×५×५=३१२५ होते हैं । इन में से यदि एक न्यून कर दिया जाय तो उत्कृष्ट परीत असंख्येयक होता है, जैसे कि—३१२५—१=३१२४ ।

† जघन्य युक्ता संख्येयक के जितने सरसों लब्ध हों उतने ही आवलिका के समय होते हैं ।

सयाइं ठाणाइं) मध्यम स्थान हैं (जाव) यावत् (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (जुत्तासंखिज्जं) युक्तासंख्येयक को (न पावइ ।) नहीं प्राप्त होता।

(उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं) उत्कृष्ट युक्तासंख्येयक (केवइयं होइ ?) कितना होता है ? (जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं) जघन्य युक्तासंख्येयक से (आवलिआ) आवलिका को (गुणिआ अण्णमण्णब्भासो) परस्पर गुणा करने से (रूवूणो) एक न्यून (उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं) उत्कृष्ट युक्तासंख्येयक (होइ,) होता है। (अहवा जहण्णयं) अथवा जघन्य (असंखेज्जासंखेज्जयं) असंख्येयासंख्येयक का (रूवूणं) एक न्यून (उक्कोसयं उत्कृष्ट (जुत्तासंखेज्जयं) युक्तासंख्येयक (होइ ।) होता है।

(जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं) जघन्य असंख्येयासंख्येयक (केवइयं होइ ?) कितना होता है ? (जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं) जघन्य युक्तासंख्येयक के साथ (आवलिआ) आवलिका की राशि को (गुणिआ अण्णमण्णब्भासो) परस्पर गुणा करने से (पडिपुण्णो) परिपूर्ण (जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं) जघन्य असंख्येयासंख्येयक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (उक्कोसए जुत्तासंखेज्जए) उत्कृष्ट युक्तासंख्येयक में (रूवं पक्खित्तं) रूप प्रक्षेप करने-जोड़ने से (जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं) जघन्य असंख्येयासंख्येयक (होइ,) होता है, (तेण परं) तत्पश्चात् (अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) मध्यम स्थान हैं (जाव) यावत् (उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं) उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक को (ण पावइ ।) नहीं प्राप्त होता।

(उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं) उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक (केवइयं होइ ?) कितना होता है ? (जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं) जघन्य असंख्येयासंख्येयक मात्र राशि को (अण्णमण्णब्भासो) उसी के साथ परस्पर गुणा करने से (रूवूणो) एक न्यून (उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं) उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक (होइ, होता है, (अहवा) अथवा (रूवूणं) एक न्यून (जहण्णयं परित्ताणंतयं) जघन्य परीतानन्तक (उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं) उत्कृष्ट * असंख्येयासंख्येयक (होइ ।) होता है।

---

* अन्ये त्वाचार्या उत्कृष्टमसंख्येयासंख्येयकमन्यथा प्ररूपयन्ति, तथाहि—जघन्यासंख्येयासंख्येयकराशेर्वर्गः क्रियते, तस्यापि वर्गराशेः पुनर्वर्गो विधीयते, तस्यापि वर्गवर्गराशेः पुनरपि वर्गो निष्पद्यते, एवं च वारत्रयं वर्गे कृतेऽन्येऽपि प्रत्येकमसंख्येयस्वरूपा दश राशयस्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, तद्यथा—

"लोगागासपएसा, धम्माधम्मेगजीवदेसा य ।
दव्वट्ठिआ निओआ, परोया चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥
ठिइबंधज्झवसाणा, अणुभागा जोगच्छेअपलिभागा ।

भावार्थ—उस के पश्चात् वहां तक अजघन्योत्कृष्टस्थान ही है जहां तक कि परीत असंख्यात नहीं होता। तथा उत्कृष्ट परीत असंख्येयक वह होता है जो जघन्य परीत असंख्येयक को जघन्य परीत असंख्येयक की राशि के साथ परस्पर गुण किया जाय फिर उस में से एक रूप न्यून कर दिया जाय। जैसे कि—५ ×, ५ ×, ५ ×, ५ ×, ५ = इस राशि में से प्रथम पांचवें अंक को पाँच के साथ गुणा किया तब २५ हुए, फिर २५ को अगले पांच से गुणा किया तब १२५ हुए, फिर १२५ को ५ से गुणा किया तो ६२५ हुए, फिर ६२५ को ५ से गुणा किया तब ३१२५ हुए, अथवा जघन्य युक्त संख्येयक में से यदि एक रूप न्यून कर दिया जाय तब भी उत्कृष्ट परीत असंख्येयक होता है।

तथा—जघन्य युक्त असंख्येयक उसे कहते हैं जो जघन्य युक्त परीत असंख्येयक राशि को उसी के साथ अर्थात् परस्पर गुणा किया जाय, अथवा उत्कृष्ट परीत असंख्येयक में यदि एक रूप प्रक्षेप किया जाय तब भी जघन्य

दोण्ह य समाण समया, असंखपक्खेवया दसउ ॥ २ ॥"

इदमुक्तं भवति—लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशास्तथा धर्मास्तिकायस्य अधर्मास्तिकायस्यैकस्य च जीवस्य यावन्तः प्रदेशाः 'दव्वट्ठिआ निओअ'त्ति—सूक्ष्माणां बादराणां चानन्तकायिकवनस्पतिजीवानां शरीराणीत्यर्थः 'परोया चेव' त्ति, अनन्तकायिकान् वर्जयित्वा शेषाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः प्रत्येकशरीरिणः सर्वेऽपि जीवा इत्यर्थः, ते चासंख्येया भवन्ति, 'ठिइबंधज्झवसाण' त्ति, स्थितिबन्धस्य कारणभूतानि अध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येयान्येव, तथाहि—ज्ञानावरणस्य जघन्योऽन्तमुहूर्तप्रमाणः स्थितिबन्धः, उत्कृष्टस्तु त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः मध्यमपदे त्वेकद्वित्रिचतुरादिसमयाधिकान्तमुहूर्तादिकोऽसंख्येयभेदः, एषां च स्थितिबन्धानां निर्वर्तकानि अध्यवसायस्थानानि प्रत्येकं भिन्नान्येव, एवं च सत्येकस्मिन्नपि ज्ञानावरणेऽसंख्येयानि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि लभ्यन्ते, एवं दर्शनावरणादिष्वपि वाच्यमिति। 'अणुभाग' त्ति, अनुभागाः—ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यमध्यमादिभेदभिन्ना रसविशेषाः, एतेषां चानुभागविशेषाणां निर्वर्तकान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति, अतोऽनुभागविशेषा अप्येतावन्त एव द्रष्टव्याःकारणभेदाश्रितत्वात् कार्यभेदानां, 'जोगच्छेयपलिभाग' त्ति, योगो—मनोवाक्कायविषयं वीर्यं तस्य केवलिप्रज्ञाच्छेदेन प्रतिविशिष्टा निर्विभागा भागा योगच्छेदप्रतिभागाः, ते च निगोदादीनां संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां जीवानामश्रिता जघन्यादिभेदभिन्ना असंख्येया मन्तव्याः। 'दुण्ह य समाण समय' त्ति, द्वयोश्च समयोः—उत्सर्पिण्यवसर्पिणीकालस्वरूपयोः समया असंख्येयस्वरूपाः, एवमेते प्रत्येकमसंख्येयस्वरूपाः दश प्रक्षेपाः पूर्वोक्ते वारत्रयवर्गिते राशौ प्रक्षिप्यन्ते, इत्थं च यो राशिपिण्डितः सम्पद्यते स।

युक्त असंख्येयक होता है, और एक आवलिका के समय भी इतने ही प्रमाण में होते हैं। फिर यावत्पर्यन्त उत्कृष्ट स्थानक प्राप्त नहीं हुआ तावत्पर्यन्त मध्यम स्थानक ही होते हैं, और यदि जघन्य युक्त असंख्येयक के साथ एक आवलिका के समयों की राशि को परस्पर गुणा किया जाय तब फिर उसमें से एक रूप न्यून करने से जघन्य युक्त असंख्येयक होता है।

अथवा जघन्य असंख्येयक असंख्येयक में से एक रूप न्यून कर दें तब उत्कृष्ट युक्त असंख्येयक होता है, जघन्य युक्त असंख्येयक के साथ आवलिका के समयों को परस्पर गुणा किया जाय तब जो प्रतिपूर्ण राशि हो उसे ही जघन्य असंख्येयासंख्येयक कहते हैं, अथवा उत्कृष्ट युक्त असंख्येयक में यदि एक रूप प्रक्षेप करें तब भी जघन्य असंख्येयासंख्येयक ही होता है। तथा—जहां तक उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येय न हो वहां तक मध्यम असंख्येयासंख्येयक होता है। यदि जघन्य असंख्येयासंख्येयक की राशि को परस्पर गुणा करके फिर उसमें से एक रूप न्यून कर दिया जाय तब उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक होता है, अथवा जघन्य परीत अनन्त में से यदि एक रूप न्यून कर दिया तब भी उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक होता है।

तथा—किसी २ आचार्य का ऐसा मत है कि--जो असंख्येयक २ राशि है उसी का वर्ग करना, फिर उस वर्ग की जितनी राशि आवे उसका भी फिर वर्ग करना, पुनः उस वर्ग की जो राशि आवे उसका भी वर्ग करना। इस तरह तीन वर्ग करके फिर उस वर्ग की राशि में दश असंख्येयक राशि प्रक्षेप करने चाहियें। जैसे कि—

"लोगागासपएसा, धम्माधम्मेगजीवदेसा य।
दव्वट्ठिआ निओआ, पत्तेआ चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥
ठिइबंधज्झवसाणा, अणुभागा जोगच्छेअपलिभागा।
दोण्ह य समाण समया असंखपक्खेवया दस उ ॥ २ ॥"

लोकाकाश के प्रदेश १, धर्म के प्रदेश २, अधर्म के प्रदेश ३, एक जीव के प्रदेश ४, द्रव्यार्थिक निगोद—सूक्ष्म साधारण वनस्पति के शरीर ५, अनन्तकाय को छोड़कर शेष प्रत्येक कायिक पांचों जातियों के जीव ६, ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्धन के असंख्येयक अध्यवसायों के स्थानक ७, अध्यवसायों का विशेष उत्पन्न करने वाला असंख्यात लोकाकाश की राशि प्रमाण अनुभाग ८, योग प्रतिभाग ९, और दोनों कालों के समय १०; जब ये दश प्रक्षेप

कर दिये जायं तब फिर उस राशि का तीन बार वर्ग करना चाहिये। फिर उन में से एक रूप न्यून करने से उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक होता है। योग प्रतिभाग उसे कहते हैं जो मन वचन काया के योग हैं। उनका केवली द्वारा कल्पित प्रतिभाग रूप जो एक अंश है उसी को योग प्रतिभाग कहते हैं। स्थिति बन्धन करने वाले अध्यवसाय प्रत्येक २ असंख्येयक होते हैं, इस लिये वे ग्रहण किये गये हैं। इस प्रकार असंख्यातों का वर्णन किया गया।

अब अनन्त का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है—

अनन्त के भेद।

जहण्णयं परित्ताणंतयं केवइयं होइ ? जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसए परित्ताणंतयं ण पावइ।

उक्कोसयं परित्ताणंतयं केवइयं होइ ? जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ।

जहण्णयं जुत्ताणंतयं केवइयं होइ ? जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए परित्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ, अभवसिद्धियावि तत्तिआ होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्ताणंतयं ण पावइ।

उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केवइयं होइ ? जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ, अहवा जहण्णयं अणंताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ, ।

जहण्णयं अणंताणंतयं केवइयं होइ ? जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिआ अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं अणंताणंतयं होइ, अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं अणंताणंतयं होइ, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं, से तं गणणा संखा ।

पदार्थ--(जहण्णयं परित्ताणंतयं केवइयं होइ ?) जघन्य परीत अनन्तक कितने प्रमाण में होता है ? (जहण्णयं) जघन्य (असंखेज्जासंखेज्जयं) असंख्येयासंख्येयक (मेत्ताणं रासीणं) मात्र राशि को (अण्णमण्णब्भासो) परस्पर गुणा करने से (पडिपुण्णो) प्रतिपूर्ण (जहण्णयं) जघन्य (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (उक्कोसए) उत्कृष्ट (असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं) असंख्येयासंख्येयक में यदि एक रूप प्रक्षेप कर दिया जाय तो भी (जहण्णयं) जघन्य (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (होइ,) होता है, (तेण परं) उस के पश्चात् (अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) अजघन्योत्कृष्ट ही स्थान है (जाव) यावत् (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (ण पावइ) नहीं प्राप्त होते ।

(उक्कोसयं) उत्कृष्ट (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (केवइयं) कितने प्रमाण में (होइ ?) होता है ? (जहण्णयं) जघन्य (परित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं) परीत अनन्तक मात्र राशि को (अण्णमण्णब्भासो) परस्पर गुणा करके उसका (रूवूणो) एक रूप न्यून (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (जहण्णयं) जघन्य (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक का (रूवूणं) एक रूप न्यून (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (परित्ताणंतयं) परीत अनन्तक (होइ ।) होता है ।

(जहण्णयं) जघन्य (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक (केवइयं होइ ?) कितने प्रमाण में होता है ? (जहण्णयं) जघन्य (परित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं) अजन परीततक मात्र

राशि को (अरणमरणब्भासो) परस्पर अभ्यास करने से (पडिपुरणो) प्रतिपूर्ण (जहरणयं) जघन्य (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (उक्कोसए) उत्कृष्ट (परित्ताणंतए) परीत अनन्तक में (रूवं पक्खित्तं) एक रूप प्रक्षेप करने से (जहरणयं) जघन्य (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक (होइ,) होता है, तथा (अभवसिद्धियावि तत्तिया होइ,) अभव्यसिद्धिक जीव भी उतने ही होते हैं, (तेणं परं) उसके पश्चात् (अजहरणमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) अजघन्योत्कृष्ट स्थान हैं (जाव) यावत् पर्यन्त (उक्कोसयं जुत्ताणंतयं) उत्कृष्ट युक्त अनन्तक को (न पावइ ।) नहीं प्राप्त होता ।

(उक्कोसयं जुत्ताणंतयं) उत्कृष्ट युक्तानन्तक (केवइयं होइ ?) कितने प्रमाण में होता है ? (जहरणएणं जुत्ताणंतएणं) जघन्य युक्त अनन्तक के साथ (अभवसिद्धिया गुणिया अरणमरणब्भासो) अभव्य सिद्धिक जीवों की राशि को परस्पर गुणा करनेसे (रूवूणो) एक रूप न्यून (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (रूवूणं) एक रूप न्यून (जहरणयं) जघन्य (अणंताणंतयं) अनन्तानन्तक (उक्कोसयं) उत्कृष्ट (जुत्ताणंतयं) युक्त अनन्तक (होइ,) होता है ।

(जहरणयं) जघन्य (अणंताणंतयं) अनन्तानन्तक (केवइयं) कितने प्रमाण में (होइ ?) होता ? (जहरणएणं जुत्ताणंतएणं) जघन्य युक्तानन्तक के साथ (अभवसिद्धिया गुणिया अरणमरणब्भासो) अभव्य सिद्धिक जीवों के प्रमाण को परस्पर गुणा करने से (पडिपुरणो) प्रतिपूर्ण (जहरणयं अणंताणंतयं) जघन्य अनन्तानन्तक (होइ,) होता है, (अहवा) अथवा (उक्कोसए) उत्कृष्ट (जुत्ताणंतए) युक्त अनन्तक में (रूवं पक्खित्तं) एक रूप प्रक्षेप करने से (जहरणयं) जघन्य (अणंताणंतयं) अनन्तानन्तक (होइ,) होता है, (तेण परं) तत्पश्चात (अजहरणमणुक्कोसयाइं ठाणाइं) अजघन्योत्कृष्ट-मध्यम स्थान होते हैं, अर्थात् मध्यम अनन्तानन्तक होते हैं। (से तं गणणासंखा) यही गणना संख्या है ।

यद्यपि किसी २ आचार्य के मत में अनन्तों के नव ही भेद वर्णन किये गये हैं लेकिन वे सूत्रविहित नहीं है, और सूत्र में जहां कहीं अनन्तों का वर्णन किया गया है वहां पर मध्यम अनन्तों का ही स्वरूप जानना चाहिये ।

भावार्थ—जघन्य असंख्येयासंख्येयक मात्र राशि को परस्पर गुणा करने से जो प्रतिपूर्ण अंक हों वे जघन्य परीत अनन्तक होते हैं, अथवा उत्कृष्ट असंख्येयासंख्येयक राशि में एक रूप और प्रक्षेप कर दिया जाय तो भी परीत अनन्तक होता है । तथा-जहां तक उत्कृष्ट परीत अनन्तक नहीं होता वहां तक मध्यम परीत अनन्तक ही रहता है ।

उत्कृष्ट परीत अनन्तक को जघन्य परीत अनन्तक राशि के साथ परस्पर

गुणा करके एक रूप न्यून कर दिया जाय तब उत्कृष्ट परीत अनन्तक होता है, अथवा जघन्य युक्तानन्तक में से यदि एक रूप न्यून कर दें तब भी उत्कृष्ट परीत अनन्तक हो जाता है।

तथा—जघन्य परीत अनन्तक राशि को उसी के साथ गुणा करें तो प्रतिपूर्ण युक्तानन्तक होता है, अथवा उत्कृष्ट परीत अनन्तक में एक और प्रक्षेप कर दें तो भी जघन्य युक्तानन्तक ही होता है। तथा उतनी ही अभव्य जीवों की राशि जानना चाहिये। तत्पश्चात् जहां तक उत्कृष्ट युक्त अनन्तक नहीं होता वहां तक मध्यम युक्त अनन्तक ही रहता है।

यदि जघन्य युक्त अनन्तों की राशि को अभव्यों की राशि के साथ परस्पर गुणा करके उसमें से एक रूप न्यून कर दें तब उत्कृष्ट युक्त अनन्तक होता है, अथवा जघन्य अनन्त अनन्त की राशि में से यदि एक रूप न्यून कर दिया जाय तो भी उत्कृष्ट युक्त अनन्तक होता है।

जघन्य युक्त अनन्तक की राशि के साथ अभव्य जीवों की राशि को परस्पर गुणा करने से प्रतिपूर्ण जघन्य अनन्तानन्त होता है, अथवा यदि उत्कृष्ट युक्त अनंत की राशि में एक रूप और प्रक्षेप कर दिया जाय तो भी जघन्य अनंतानंत होता है, तत्पश्चात् अजघन्योत्कृष्ट—मध्यम अनन्तानन्त ही होता है, उत्कृष्ट अनंतानंत नहीं होता। इस प्रकार मूल सूत्र से सिद्ध है। लेकिन—

किसी २ आचार्य का मत है कि-जघन्य अनन्तों का तीन वार वर्ग करके फिर उसमें षट् अंक अनंतों के प्रक्षेप करने चाहिये। जैसे कि—

सिद्धा निगोयजीव, वणस्सई कालपुग्गला चेव।
सव्वमलोगागासं, छप्पेतेऽणंतपक्खेवा ॥ १ ॥

सिद्ध १, निगोद के जीव २, वनस्पति ३, तीनों कालों के समय ४, सर्व पुद्गल ५, और अलोकाकाश ६, ये षट् प्रक्षेप करना चाहिये। फिर सब राशि का तीन वार वर्ग करना चाहिये, तो भी उत्कृष्ट अनन्तानन्तक नहीं होता यदि उसमें केवल ज्ञान और केवल दर्शन के पर्याय प्रक्षेप कर दिये जायं तब उत्कृष्ट अनन्तानन्तक हो जाता है। इस प्रकार सब पदार्थों को केवल ज्ञान और केवल दर्शन के अन्तर्गत कर दिया है, कोई भी पदार्थ इससे बाहिर नहीं है।

लेकिन सूत्र में उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रतिपादन नहीं किया गया है, वहां पर तो मध्यम अनन्तानन्तक पर्यन्त ही गणन संख्या की पूर्ति कर दी है, यहीं

गणन संख्या का स्वरूप है।

अब इसके आगे भाव संख्या--शंख जाननाचाहिये।

भावसंख्या [शंख*] विषय।

से किं तं भावसंखा ? जे इमे जीवा संखगइनाम-गोत्ताइं कम्माइं वेदेति (न्ति) से तं भावसंखा, से तं संखप्पमाणे से तं भावपमाणे, से तं पमाणे। पमाणेत्ति पयं समत्तं। (सूत्र १५०)

(से किं तं भावसंखा ?) भाव शंख किसे कहते हैं ? (जे इमे जीवा) जो इस लोकके जीव (संखगइनामगोत्ताइं) शंख गति नाम गोत्र (कम्माइं) कर्मादिकों को (वेदिंति) वेदते हैं (से तं भावसंखा) उसी को भाव शंख कहते हैं। (से तं संखापमाणे) यही संख्या प्रमाण है, तथा-(से तं भावपमाणे,) यही भाव प्रमाणका वर्णन है (से तं पमाणे।) और यही प्रमाण है। (पमाणेत्ति पयं समत्तं।) यहां पर ही प्रमाण पद की समाप्ति होगई है। [सू० १५०]

भावार्थ—जो जीव नीच गोत्र और तिर्यग योनि के भाव में शंख नामक जीव की गति को भोगता हो और उसी के अनुकूल जिसे नामादिक कर्मों की प्रकृतियों का उदय प्राप्त हुआ हो, उसी को भाव शंख कहते हैं। यही संख्या प्रमाण का वर्णन है। इस तरह इस स्थान पर भाव संख्या का वर्णन पूर्ण होते हुये प्रमाण द्वार समाप्त हो जाता है।

इसके अनन्तर वक्तव्यता का स्वरूप जानना चाहिये—

वक्तव्यता विषय।

से किं तं वत्तव्वया ? तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—स-समयवत्तव्वया परसमयवत्तव्वया ससमयपरसमयव-त्तव्वया।

---

* यद्यपि 'संख्या' शब्द गणना का भी वाचक है, किन्तु पूर्वमें भला प्रकार से सिद्ध कर चुके हैं कि—प्राकृत भाषा में संख्या शब्द शंख का भी वाचक है, इस लिये यहां पर 'भाव संख्या' शब्द द्वीन्द्रिय जीव का ही वाचक जानना चाहिये।

से किं तं ससमयवत्तव्वया ? जत्थ णं ससमए आघविज्ज पराणविज्जइ परूविज्जइ दंसिज्जइ निदंसिज्जइ उवदंसिज्जइ, से तं ससमयवत्तव्वया।

से किं तं परसमयवत्तव्वया ? जत्थ णं परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ, से तं परसमयवत्तव्वया।

से किं तं ससमयपरसमयवत्तव्वया ? जत्थ णं ससमए परसमए आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ, से तं ससमयपरसमयवत्तव्वया इयाणिं को णओ कं वत्तव्वयं इच्छइ ?

तत्थ नेगमसंगहववहारा तिविहं वत्तव्वयं इच्छंति, तं जहा–ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं ससमयपरसमयवत्तव्वयं। उज्जुसुओ दुविहं वत्तव्वयं इच्छइ, तं जहा–ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं। तत्थ णं जा सा ससमयवत्तव्वया सा ससमयं पविट्ठा, जा सा परसमयवत्तव्वया सा परसमयं पविट्ठा। तम्हा दुविहा वत्तव्वया, नत्थि तिविहा वत्तव्वया। तिरिण सद्दणया एगं ससमयवत्तव्वयं इच्छंति, नत्थि परसमयवत्तव्वया कम्हा ? जम्हा परसमए अणट्ठे अहेऊ असब्भावे अकिरिए उम्मग्गे अणुवएसे मिच्छादंसणमितिकट्टु, तम्हा सव्वा ससमयवत्तव्वया, नत्थि परसमयवत्तव्वया, नत्थि ससमयपरसमयवत्तव्वया, से तं वत्तव्वया। (सू०१५१)

पदार्थ—(से किं तं वत्तव्वया ?) वक्तव्यता किसे कहते हैं ? और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन की गई है (वत्तव्वया) अध्ययनादि विषयों के अर्थों का यथा–सम्भव विवेचन करना उसे वक्तव्यता कहते हैं, अथवा गाथादिकों की अनुकूलता पूर्वक अर्थ का जो विवेचन है उसे वक्तव्यता कहते हैं और वह (तिविहा पएणत्ता,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि–(ससमयवत्तव्वया) स्वसमय वक्तव्यता

अर्थात् जिसमें स्वसिद्धान्त का विवेचन हो (परसमयवत्तव्वया) परसमयवक्तव्यता अर्थात् जिसमें अन्य मतका विवेचन हो और (ससमयपरसमयवत्तव्वया) स्वसमय परसमय की वक्तव्यता अर्थात् जिसमें स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त दोनों का विवेचन हो ।

(से किं तं ससमयवत्तव्वया ?) स्वसमय वक्तव्यता किसे कहते है ? (ससमयवत्तव्वया) स्वसमय वक्तव्यता उसे कहते हैं (जत्थ णं*) जहां पर (ससमए) स्वसिद्धान्त का (आघविज्जइ) व्याख्यान किया जाता है, (पण्णविज्जइ) प्रतिपादन किया जाता है, (परूविज्जइ) स्वरूप की प्ररूपणा की जाती है, (दंसिज्जइ) सामान्य प्रकार से धर्मास्तिकाय आदि का निदर्शन किया जाता है, (निदंसिज्जइ) दृष्टान्त के द्वारा सिद्धि की जाती हैं (उवदंसिज्जइ) उपनय के द्वारा उसका स्वरूप निरूपण किया जाता है (से तं ससमयवत्तव्वया ।) यही पूर्वोक्त स्वसमय वक्तव्यता है ।

(से किं तं परसमयवत्तव्वया ?) परसमय—परमत वक्तव्यता किसे कहते हैं ? (ससमयवत्तव्वया) परसमय की वक्तव्यता उसे कहते हैं (जत्थ णं) जिस में (परसमए) परमत का † स्वरूप (आघविज्जइ) प्रतिपादन किया जाय (जाव) यावत् (उवदंसिज्जइ,) निगमन के द्वारा उसका स्वरूप दिखलाया जाय (से तं परसमयवत्तव्वया ।) यही परसमयवक्तव्यता है ।

(से किं तं ससमयपरवत्तव्वया ?) स्वसमय परसमय वक्तव्यता किसे कहते हैं ? (ससमयपरसमयवत्तव्वया) स्वसमयपरसमयवक्तव्यता उसे कहते जैसे कि—(जत्थ णं) जहाँ पर (ससमए) स्वसमय और (परसमए) परसमय (आघविज्जइ) प्रतिपादन किया जाता है (जाव) यावत् (उवदंसिज्जइ,) निगमन के द्वारा दिखलाया जाता है, (से तं) वही (ससमयपरसमयवत्तव्वया ।) स्वसमयपरसमयवक्तव्यता है । (इयाणिं) इस समय (को णओ कं वत्तव्वयं इच्छइ ?) कौन २ नय किस किस वक्तव्यता को मानता है ?

(तत्थ णेगमसंगहववहारा) उन सातों नयों में से नैगम नय १, संग्रह नय २, और व्यवहार नय ३ (तिविहं वत्तव्वयं) तीनों प्रकार की वक्तव्यता को (इच्छंति,) मानते हैं, (तं जहा-) जैसे कि—(ससमयवत्तव्वयं) स्वसमय की वक्तव्यता (परसमयवत्तव्वयं) परसमय की वक्तव्यता औ (ससमयपरसमयवत्तव्वयं) स्वसमय परसमय की वक्तव्यता, तथा (उज्जुसुओ) ऋजुसूत्र नय (दुविहं) दो प्रकार की (वत्तव्वयं) वक्तव्यता को (इच्छइ,) मानता है, (तं जहा-) जैसे कि—(ससमयवत्तव्वयं) स्वसमय की वक्तव्यता और (परसमयवत्तव्वयं,) परसमय की वक्तव्यता, (तत्थ णं जा सा) उन वक्तव्यताओं में से जो वह

---

* 'णं' मिति वाक्यालङ्कारे,—'णं' वाक्य से अलङ्कार अर्थ में होता है ।

(ससमयवत्तव्वया) स्वसमयवक्तव्यता है (सा ससमयं पविट्ठा,) वह स्वसमय प्रविष्ट हो जाती है, अर्थात् प्रथम वक्तव्यता के अन्तर्भूत है, और (जा सा परसमयवत्तव्वया) जो परसमय की वक्तव्यता है (सा परसमयं पविट्ठा,) वह परसमय में प्रविष्ट होती है, अर्थात द्वितीय वक्तव्यता के अन्तर्भूत होती है, (तम्हा दुविहा वत्तव्वया,) इस लिये यह दो ही प्रकार की वक्तव्यता को ग्रहण करता है, (नत्थि तिविहा वत्तव्वया) तीनों प्रकार की वक्तव्यताओं को नहीं। तिण्णि) तीनों (सद्दणय) शब्द नय (एगं ससमयं वत्तव्वयं) एक स्वसमय वक्तव्यता को ही (इच्छंति) मानते हैं, [क्योंकि तीनों नय के मत में] (नत्थि परसमयवत्तव्वया,) परसमय की वक्तव्यता नहीं होती, (कम्हा ?) क्यों ? (जम्हा) इस लिये कि—(परसमय) परसमय का जो कथन है वह (अणट्ठे) अनर्थ रूप है, अर्थात् कतिपय वादी आत्मादि पदार्थों की ही नास्ति कहते है, और (अहेऊ) अहेतु रूप है तथा (असब्भावे) असद्भाव रूप भी है, और (अकिरिए) अक्रिया रूप है और (उम्मग्गे) परसमय उन्मार्ग भी है, (अणुवएसे) अनुपदेश रूप भी है, (मिच्छादंसिणमिति कट्टु,) परसमय मिथ्यारूप है, इस करके; (तम्हा) और इसी लिये (ससमयवत्तव्वया) स्वसमय की ही वक्तव्यता है, (णत्थि परसमयवत्तव्वया) परसमय की वक्तव्यता नहीं होती, (से तं वत्तव्वया) यही वक्तव्यता है।

भावार्थ—अध्ययनादि के विषय-प्रनिनियत अर्थ को वक्तव्यता कहते हैं, इसके तीन भेद हैं, जैसे कि—स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और उभयसमयवक्तव्यता।

स्वसमय की वक्तव्यता उसे कहते हैं जैसे-पंचास्तिकाय का वर्णन करना और परसमय की वक्तव्यता उसका नाम है जो स्वमत के अतिरिक्त अन्य मतों की व्याख्या करनी और उभय मत की वक्तव्यता वह है, जैसे कि-"आगारमावसंता वा, आरण्णा वावि पव्वया। इमं दरसणमावन्ना सव्वदुक्खा विमुच्चइ ॥१॥" इस गाथा का तात्पर्य यह है कि घर में वा अटवी में बसता हुआ अथवा दीक्षित होकर हमारे मत को ग्रहण करने वाला दुखों से विमुक्त हो जाता है। इस गाथा का जो अर्थ है वह उसी के मतानुसार हो जाता है। इस लिये यह उभयसमयों की वक्तव्यता है, फिर नैगम १, संग्रह, २ और व्यवहार ३, इन तीनों नयों के मत में तीनों ही वक्तव्यता होती हैं। ऋजुसूत्र नयके मतमें दो वक्तव्यता और तीनों शब्द नयों के मत में केवल स्वसमय की ही वक्तव्यता है। क्योंकि सातों नयों में पूर्व नयों से उत्तर नय विशुद्ध हैं।

अब इसके अनन्तर अर्थाधिकार के विषय में कहते हैं—

अर्थाधिकार विषय

से किं तं अत्थाहिगारे ? जो जस्स अज्झयणस्स अत्थाहिगारो, तं जहा—

सावज्जजोगविरई, उक्कित्तण गुणवओ य पडिवत्ती ।
खलियस्स निंदणा वणतिगिच्छ गुणधारणा चेव ॥१॥

से तं अत्थाहिगारे । (सू० १५२)

पदार्थ—(से किं तं अत्थाहिगारे ?) अर्थाधिकार किसे कहते हैं ? (अत्थाहिगारे) अर्थाधिकार उसे कहते हैं कि–(जो जस्स अज्झयणस्स) जो जिस अध्ययन को (अत्थाहिगारो,) अर्थाधिकार हो, (तं जहा-) जैसे कि–(सावज्जजोगविरई) सावद्य योग की निवृत्ति रूप प्रथमाध्याय है (उक्कित्तण) चतुर्विंशति स्तवरूप द्वितीयाध्याय है (गुणवओ य पडिवत्ती) गुणवान् की प्रतिपत्ति रूप तृतीय वन्दनाध्याय है, (खलियस्स निंदणा) पापोंकी आलोचना रूप प्रतिक्रमण चतुर्थ अध्याय है, और (वणतिगिच्छ) व्रणचिकित्सा रूप–कायोत्सर्ग नाम का पांचवां अध्याय है, (गुणधारणा चेव ॥१॥) गुणधारणा रूप प्रत्याख्यान नामक छठा अध्याय है ॥ १ ॥ (से तं अत्थाहिगारे ।) वही * अर्थाधिकार है । (सू० १५२)

भावार्थ—अर्थाधिकार उसे कहते हैं जो जिस अध्ययन के अर्थ का अधिकार हो, जैसे कि–आवश्यक सूत्र के ६ अध्याय हैं, वे उसी के अर्थाधिकार रूप होते हैं । इसी प्रकार अन्य सूत्रों के विषय में भावार्थ जानना चाहिये ।

अर्थाधिकार और वक्तव्यता में सिर्फ इतना ही भेद है कि—अर्थाधिकार अध्ययन के आदि पद से आरम्भ होकर सब पदों में अनुवर्त्तता है, जैसे कि–पुद्गलास्तिकाय का प्रत्येक परमाणु मूर्त्तमान् है, और वक्तव्यता यह है, कि जैसे उसी के देशादि का निरूपण करना । (सू० १५२)

इसके बाद समवतार का स्वरूप जानना चाहिये—

* विशेष अधिकार प्रथम भाग सू० ५८ से जानना चाहिये ।

समवतार विषय ।

से किं तं समोआरे ? छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—णामसमोआरे ठवणासमोआरे दव्वसमोआरे खेत्तसमोआरे

कालसमोआरे भावसमोआरे । नामठवणाओ पुव्वं * भणियाओ जाव से तं भवियसरीरदव्वसमोआरे ।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमो-आरे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—आयसमोआरे परसमो-आरे तदुभयसमोयारे, सव्वदव्वावि णं आयसमोआरेणं आयभावे समोअरंति, परसमोआरेणं जहा कुंडे बदराणि-तदुभयसमोआरेणं जहा घरे खंभो आयभावे अ, जहा घडे गीवा आयभावे अ ।

अहवा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आयसमोआरे अ तदुभयसमो-आरे अ । चउसट्ठिआ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं बत्तासिआए समोयरइ आयभावे अ, बत्तीसिया आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ तदुभयस-मोयारेणं सोलसियाए समोयरइ आयभावे अ, सोलसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोयारेणं अट्ठभाइयाए समोयरइ आयभावे अ, अट्ठभाइया आय-समोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेण चउभा इयाए समोअरइ आयभावे अ, चउभाइआ आयसमोआ-रेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं अद्धमाणीए समोअरइ आयभावे अ, अद्धमाणी आयसमोआरेणं आय-भावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेण माणीए समोअरइ आय-भावे अ, से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमो-आरे । से तं नोआगमओ दव्वसमोआरे, से तं दव्वसमोआरे

---

* क्वचित् 'वण्णाओ', पाठः ।

पदार्थ—(से किं तं समोआरे ?) समवतार किसे कहते हैं ? (समोआरे) वस्तुओं* का स्वपर उभय भाव में चिन्तन करना, अर्थात् यह वस्तु आत्मभाव, परभाव अथवा उभय भाव में अन्तर्भूत कैसे होती है, उसीको समवतार कहते हैं, और वह (छव्विहे पण्णत्ते,) षट् प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(नामसमोआरे) नाम समवतार (ठवणासमोआरे) स्थापना समवतार (दव्वसमोआरे) द्रव्य समवतार (खेत्तसमोआरे) क्षेत्र समवतार (कालसमोआरे) काल समवतार और (भावसमोआरे) भाव समवतार।

(नामठवणाओ) नाम और स्थापना (पुव्वं भणिआओ) पूर्व वर्णन की गई है (जाव) यावत् (से तं भवियसरीरदव्वसमोआरे।) यही भव्य द्रव्य शरीर समवतार है।

(से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे ?) ज्ञशरीर और भव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्य समवतार किसे कहते हैं ? (जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे) ज्ञशरीर-भव्य शरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य समवतार (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(आयसमोआरे) आत्मसमवतार (परसमोआरे) परसमवतार और (तदुभयसमोआरे,) तदुभयसमवतार। (सव्वदव्वावि णं†) सभी द्रव्य (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार के विचार से (आयभावे समोअरंति) आत्मभाव अपने ही भाव में समवतीर्ण होते हैं (परसमोआरेणं) परसमवतार के विचार से परभाव में भी रहते हैं, (जहा कुंडे बदराणि,) जैसे कुण्ड में बदरी फल, (तदुभयसमोआरेणं) तदुभय—दोनों समवतार के विचार से (जहा घरे खंभो आयभावे अ) जैसे कि—घर में स्तम्भ—खंभा, अतः यह परभाव तथा आत्मभाव दोनों ही में है, और (जहा) जैसे (घडे गीवा) घट में ग्रीवा, जो कि कपालादि के समुदाय में और (आयभावे य) आत्मभाव में भी है।

(अहवा) अथवा (जाणयसरीर) ज्ञशरीर (भवियसरीर) भव्य शरीर (वइरित्ते) व्यतिरिक्त (दव्वसमोआरे) द्रव्य समवतार (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(आयसमोआरे अ) आत्मसमवतार और (तदुभयसमोआरे अ,) तदुभयसमवतार, (चउसट्ठिया) चतुःषष्टिकाचार पल प्रमाण (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मिकभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होती है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (बत्तीसिआए) द्वात्रिंशिका अष्ट पल प्रमाण में (समोयरइ) समवतीर्ण होती है (आयभावे अ,) आत्मभाव में तथा

---

* समवतरणं—वस्तूनां स्वपरोभयेष्वन्तर्भावचिन्तनं समवतारः।

† 'अपि' शब्द समुच्चय वाचक तथा 'णं' वाक्य के अलङ्कारार्थ जानना चाहिये।

(बत्तीसिआ) द्वात्रिंशिका (आयसमोयारेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होती है, और (तदुभयसमोयारेणं) तदुभयसमवतार से (सोलसिआए) षोडशिका—१६ पल प्रमाण (समोयरइ आयभावे अ,) आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, फिर (सोलसिया) षोडशिका (आयसमोयारेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होती है, और (तदुभयसमोयारेणं) तदुभय समवतार से (अट्ठभाइयाए) अष्टभागिका (समोयरइ आयभावे अ,) आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, फिर (अट्ठभाइया) अष्टभागिका (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ) समवतीर्ण होती है, लेकिन (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (चउभाइयाए) चतुर्भागिका—६४ पल प्रमाण (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, (चउभाइया) चतुर्भागिका (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होती है, और (तदुभयसमोयारेणं) तदुभयसमवतार से (अद्धमाणीए) अर्द्ध माणिका—१२८ पल प्रमाण में (समोयरइ आयभावे य,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, (अद्धमाणी) अर्द्ध माणिका (आयसमोयारेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे समोयरइ) आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, (तदुभयसमोयारेणं) तदुभयसमवतार से (माणीए) माणिका १५६ पल प्रमाण में (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होती है, (से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसमोआरे।) यही पूर्वोक्त ज्ञशरीर, भव्यशरीर, व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार है, और (से तं णोआगमओ दव्वसमोयारे।) यही नोआगम से द्रव्यसमवतार है। तथा (से तं दव्वसमोयारे।) यही द्रव्यसमवतार है।

भावार्थ—किसी भी वस्तु का स्वरूप आत्मभाव, पर [illegible] अथवा तदुभय भाव में समवतरण हो उसे समवतार कहते हैं। इसके ६ [illegible], जैसे कि—नाम समवतार १, स्थापनासमवतार २, द्रव्यसमवतार ३, [illegible] समवतार ४, कालसमवतार ५, और भावसमवतार ६। नाम और स्थापना का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये। ज्ञशरीर, भव्यशरीर और व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार भी तीन प्रकार से वर्णन किया गया है, जैसे कि—सब द्रव्य अपने गुण की अपेक्षा आत्मभाव में समवतीर्ण होते हैं, किन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा परस्वरूप में भी समवतीर्ण होते हैं, जैसे कि—कुंड में बदरी फल, अथवा घर में स्तम्भ। इस प्रकार उभय स्वरूप में भी समवतीर्ण होते हैं। परन्तु आत्मभाव में ऐसे समवतरण होते हैं,

† निश्चय से सभी द्रव्य अपने ही स्वरूप में होते हैं पृथक् कोई नहीं होता, लेकिन व्यवहार से पृथक् भी होते हैं।

जैसे घट में ग्रीवा। यदि ऐसी शंका की जाय कि परसमवतरण तो होती ही नहीं, तो उसका सूत्रकार उत्तर देते हैं कि वास्तव में समवतार दो ही होते हैं, जैसे कि—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार। तृतीय पररूप समवतार केवल नाम मात्र ही वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा जैसे चतुःषष्टिका चार पल प्रमाण आत्म-समवतार में भी रहती है और तदुभय समवतार की अपेक्षा द्वात्रिंशिका आठ पल प्रमाण में भी होती है, इसी प्रकार मानी पर्यन्त जानना चाहिये। यही ज्ञ-शरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार नो आगम से द्रव्यसमवतार है। यही द्रव्यसमवतार है।

इसके बाद क्षेत्रसमवतार का वर्णन किया जाता है—

क्षेत्रसमवतार।

से किं तं खेत्तसमोआरे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ, भरहे वासे आय-समोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं जंबूद्दीवे समोयरइ आयभावे अ, जंबूद्दीवे आयसमो-आरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं तिरियलोए समोअरइ आयभावे अ, तिरियलोए आयसमोआरेणं आय-भावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं लोए समोअरइ, आयभावे * अ, से तं खेत्तसमोआरे।

पदार्थ—(से किं तं खेत्तसमोआरे ?) क्षेत्रसमवतार किसे कहते हैं ? (खेत्तसमो-आरे) क्षेत्र समवतार (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(आयसमोआरे अ) आत्मसमवतार और (तदुभयसमोआरे अ,) तदुभयसम-वतार (भरहे वासे) भारतवर्ष (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से

* इतः 'लोए आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं अलोए समोयरइ आयभावे अ' इत्यधिकं क्वचित्।

(जंबूदीवे) जम्बूद्वीप में (समोयरइ आयभावे अ) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है, (जंबूदीवे) जम्बूद्वीप (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (तिरियलोए) तिर्यक् लोक (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है, (तिरिअलोए) तिर्यक् लोक में (आयसमोआरेण) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं तदुभयसमवतार से (लोए) लोक में (समोअरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में भी समवतीर्ण होता है, (से तं खेत्तसमोआरे।) यही क्षेत्रसमवतार है।

भावार्थ— क्षेत्रसमवतार उसे कहते हैं जो लघु क्षेत्र का प्रमाण बृहत्क्षेत्र समवतीर्ण किया जाय। इसके दो भेद हैं—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार। आत्मसमवतार उसे कहते हैं जो अपने ही स्वरूप में हो, जैसे कि— भारतवर्ष आत्मसमवतार से आत्मभाव में अर्थात् अपने ही क्षेत्र में समवतीर्ण होता है।

तथा तदुभयसमवतार उसे कहते हैं जो आत्म स्वरूप और पर स्वरूप दोनों में हो, जैसे कि—भारतवर्ष, तदुभयसमवतार से जम्बूद्वीप में समवतीर्ण होता है और आत्मभाव में भी इसी प्रकार अलोक पर्यन्त जानना चाहिये। यही क्षेत्रसमवतार है।

इसके बाद अब कालसमवतार का वर्णन किया जाता है-

कालसमवतार।

से किं तं कालसमोआरे? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा— आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ, समए आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं आवलिआए समोयरइ आयभावे अ, एवमाणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे ऊऊ अयणे संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससयसहस्सं पुव्वंगे पुव्वे तुडिअंगे तुडिए अडडंगे अडडे अववंगे अववे हूहूअंगे हूहूए उप्पलंगे उप्पले पउमंगे पउमे णलिणंगे णलिणे अच्छनि-

उरंगे अच्छनिउरे अउअंगे अउए नउअंगे नउए पउअंगे पउए चूलिअंगे चूलिआ सीसपहेलिअंगे सीसपहेलिआ पलिओवमे सागरोवमे आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीसु समोयरइ आयभावे अ, ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं पोग्गलपरिअट्टे समोयरइ आयभावे अ, पोग्गलपरिअट्टे आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं तीतद्धाअणागतद्धासु समोयरइ आयभावे अ, तीतद्धाअणागतद्धाउ आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं सव्वद्धाए समोयरइ आयभावे अ। से तं कालसमोआरे।

पदार्थ—(से किं तं कालसमोआरे ?) कालसमवतार किसे कहते हैं ? (कालसमोआरे) अतिसूक्ष्म समय का बृहत् समय में अवतरण करना—इसी का नाम कालसमवतार है ; और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि—(आयसमोआरे अ) आत्मसमवतार और (तदुभयसमोआरे अ) तदुभयसमवतार, (समए आयसमोआरेणं समय आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (आवलिआए) आवलिका में (समोयरइ आयभावे अ) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है, († एवमाणा पाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते पक्खे मासे) इसी प्रकार आन, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास (ऊऊ) ऋतु (अयणे) अयन (संवच्छरे) सम्वत्सर (जुगे) युग (वाससए) सौ वर्ष (वाससहस्से) हजार वर्ष (वाससयसहस्से) लाख वर्ष (पुव्वंगे) पूर्वाङ्ग (पुव्वे) पूर्व (तुडिअंगे) त्रुटिताङ्ग (तुडिए) त्रुटित (अडडंगे) अडडाङ्ग (अडडे) अडड (अववंगे) अववाङ्ग (अववे) अवव (हूहूअंगे) हुहुअङ्ग (हूहूए) हुहु (उप्पलंगे) उत्पलाङ्ग (उप्पले) उत्पल (पउमंगे) पद्माङ्ग (पउमे) पद्म (णलिणंगे) नलिनाङ्ग (णलिणे) नलिन (अच्छनिउरंगे) अच्छनिकुराङ्ग (अच्छनिउरे) अच्छनिकुर (अउअंगे) अयुताङ्ग (अउए) अयुत (नउअंगे)

† इन सब का विशेष वर्णन इसी भाग के पृ० ६२—६४ से जानना चाहिये।

नयुताङ्ग (नउए) नयुत (पउअंगे) प्रयुताङ्ग (पउए) प्रयुत (चूलिअंगे) चूलिकाङ्ग (चूलिया) चूलिका (सीसपहेलिअंगे) शीर्षप्रहेलिकाङ्ग (सीसपहेलिआ) शीर्षप्रहेलिका। (पलिओवमे सागरोवमे) पल्योपम सागरोपम (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (ओसप्पिणीउस्सप्पिणीसु) अवसर्पिणी उत्सर्पिणी में (समोयरइ आयभावे अ) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है (ओसप्पिणीउस्सप्पिणीओ) अवसर्पिणी उत्सर्पिणी (आय समोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (पोग्गलपरिअट्टे) पुद्गलपरावर्त्त में (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है, (पोग्गलपरिअट्टे) पुद्गलपरावर्त्त (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होता है और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (तीतद्धाअणागतद्धासु) अतीत और भविष्यत काल में (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है, (तीतद्धाअणागतद्धाउ आयसमोआरेणं) अतीत और भविष्यत्काल आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ) समवतीर्ण होता है और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (सव्वद्धाए) सभी काल में (समोयरइ आयभावे अ।) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है। (से तं कालसमोआरे।) यही कालसमवतार है।

भावार्थ—न्यून से न्यून समय का सभी काल में समवतरण करना उसे काल समवतार कहते हैं। इसके दो भेद हैं—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार। आत्मसमवतार उसे कहते हैं जो अपने ही भाव में हो, जैसे कि—'आन' आत्मसमवतार से अपने ही रूपमें समवतीर्ण होता है। तथा तदुभयसमवतार उसे कहते हैं जो परस्वरूप और आत्मभाव, दोनों में हो, जैसे—'आन' तदुभयसमवतार से आत्मभाव में भी है और परस्वरूप से 'प्राण' में भी समवतीर्ण होता है। इसी प्रकार सब काल का स्वरूप जानना चाहिये। इसी को कालसमवतार कहते हैं।

अब भावसमवतार का वर्णन किया जाता है—

भावसमवतार।

से किं तं भावसमोआरे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आयसमोआरे अ तदुभयसमोआरे अ। कोहे आयसमोआरेणं आयभावे समोअरइ, तदुभयसमोआरेणं माणे

समोयरइ आयभावे अ, एवं माणे माया लोभे रागे मोहणिज्जे अट्ठकम्मपयडीओ आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं छव्विहे भावे समोयरइ आयभावे अ, एवं छव्विहे भावे, जीवे जीवत्थिकाए आयसमोआरेणं आयभावे समोयरइ, तदुभयसमोआरेणं सव्वदव्वेसु समोअरइ आयभावे अ। एत्थ संगहणीगाहा--

कोहे माणे माया, लोभे रागे य मोहणिज्जे अ।
पगडीभावे जीवे, जीवत्थिकाय दव्वा य ॥१॥

से तं भावसमोआरे। से तं समोआरे। से तं उवक्कमे। उवक्कम इति पढमं दारं (सू० १५३)

पदार्थ--(से किं तं भावसमोआरे ?) भावसमवतार किसे कहते हैं ? (भावसमोआरे) भावसमवतार (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि--(आयसमोआरे अ) आत्मसमवतार और (तदुभयसमोआरे अ,) तदुभयसमवतार (कोहे) क्रोध (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ) समवतीर्ण होता है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (माणे) मान में (समोयरइ आयाभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होता है (एवं) इसी प्रकार (माणे माया लोभे रागे) मान, माया लोभ, राग को जानना चाहिये, तथा--(मोहणिज्जे अट्ठकम्मपयडीओ) मोहनीय कर्म की आठ कर्म प्रकृतियें (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होती हैं, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (छव्विहे भावे) क्षायोपशमिकादि छह प्रकार के भाव में (समोयरइ आयभावे अ,) और आत्मभाव में समवतीर्ण होती है (एवं छव्विहे भावे,) इसी तरह छह प्रकार के भाव जानने चाहिये, (जीवे) जीव (जीवत्थिकाए) जीवास्तिकाय (आयसमोआरेणं) आत्मसमवतार से (आयभावे) आत्मभाव में (समोयरइ,) समवतीर्ण होतो है, और (तदुभयसमोआरेणं) तदुभयसमवतार से (सव्वदव्वेसु समोअरइ आयभावे अ) सब द्रव्य और आत्मभाव में समवतीर्ण होतो हैं, (एत्थ संगहणीगाहा--) यहां पर एक संग्रह गाथा † भी है--

† जिन अधिकारों का संग्रह कर के गाथा रूप में संक्षेप से वर्णन किया जाता है उसे संग्रहणी गाथा कहते हैं।

(कोहे माणे माया, लोभे रागे य मोहणिज्जे अ। पगडीभावे जीवे, जीवत्थिकाय दव्वा य ॥१॥) क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और मोहनोय कर्म, प्रकृतियें, भाव, जोव, जीवास्तिकाय और द्रव्य, ये सभी आत्मसमवतार से अपने ही स्वरूप में रहते हैं और तदुभयसमवतार से परस्वरूप में भी होते हैं। (से तं भावसमोआरे।) यही भावसमवतार है। (से तं समोआरे) यही समवतार है। (से तं उवक्कमे।) यही उपक्रम है। (उवक्कम इति पढमं दारं।) उपक्रम नामक प्रथम द्वार समाप्त हुआ। (सू० १५२)

भावार्थ-भावसमवतार के दो भेद हैं, आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार आत्मसमवतार उसे कहते हैं जो अपने ही स्वरूप में हो, जैसे कि-'क्रोध' आत्मसमवतार के अपने ही स्वरूप में समवतीर्ण होता है।

तथा तदुभयसमवतार उसे कहते हैं जो स्वरूप और पररूप दोनों में हो। जैसे कि--'क्रोध' तदुभयसमवतार से आत्मभाव में भी है और पर स्वरूप से मानमें समवतीर्ण होता है। इसी प्रकार जीवोस्तिकाय आदि सभी द्रव्यों को जानना चाहिये।

"अत्र च प्रस्तुते आवश्यके विचार्यमाणे सामायिकाद्यध्ययनमपि क्षायोपशमिकभावरूपत्वात् पूर्वोक्तेष्वानुपूर्व्यादिभेदेषु क्व समवतरतीति निरूपणीयमेव, शास्त्रकारप्रवृत्तेरन्यत्र तथैव दर्शनात्, तच्च सुखावसेयत्वादिकारणात् सूत्रे न निरूपितम् साधर्म्यागतत्वात्स्थानशून्यत्वार्थं किंचिद्धयेमेव निरूपयामः। तत्र सामायिकं चतुर्विंशतिस्तव इत्याद्युत्कीर्तनविषयत्वात् सामायिकाद्यध्ययनमुत्कीर्तनानुपूर्व्यां समवतरति, तथा गणनापूर्व्यां च, तथाहि-पूर्वानुपूर्व्या गण्यमानमिदं प्रथमं; पश्चानुपूर्व्या तु षष्ठम्, अनानुपूर्व्या तु द्वयादिस्थानवृत्तित्वादनियतमिति प्रागेवोक्तम्। नाम्नि च औदयिकादिभावभेदात्षण्णामपि प्रागुक्तम्, तत्र सामायिकाध्ययनं श्रुताज्ञनरूपत्वेन क्षायोपशमिकभाववृत्तित्वात्क्षायोपशमिकभावनाम्नि समवतरति। आह च भाष्यकार:-

" छव्विहनामे भावे, खओवसमिए सुय समोयरइ।
जं सुयनाणावरणक्खओवसमियं तयं सव्वं ॥१॥"

प्रमाणे च द्रव्यादिभेदैः प्रागिनर्णीते जीवभावरूपत्वाद्भावप्रमाणे इदं समवतरतीति। उक्तञ्च-

"दव्वाइचउब्भेयं, पमीयए जेण तं पमाणंति।
इणमज्झयणं भावोत्ति भाव माणे समोयरइ।"

भावप्रमाणं च गुणनयसंख्याभेदतस्त्रिधा प्रोक्तं । तत्रास्य गुणसंख्याप्रमाणयोरेवावतारो, नयप्रमाणे तु यद्यपि—

"आसज्ज उ सोयारं, नए नयविसारओ बूया।"

इत्यादिवचनात् क्वचिन्नयसमवतार उक्तः, तथापि साम्प्रतं तथाविधनयविचाराभावाद्वस्तुवृत्त्याऽनवतार एव, यत इदमप्युक्तम् ।

"मूढनइयं सुयं कालियं तु न नया समोयरंति इह" इत्यादि । महामतिनाऽप्युक्तम् 'मूढनइयं तु न संपइ नयप्पमाणावआरो से' त्ति, गुणप्रमाणमपि जीवाजीवगुणभेदता द्विधा प्रोक्तं तत्रास्य जीवोपयोगरूपत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः, तस्मिन्नपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदतस्त्रयात्मके अस्य ज्ञानरूपतया ज्ञानरूपप्रमाणेऽवतारः । तत्रापि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदाच्चतुर्विधे प्रकृताध्ययनस्याप्तोपदेशरूपतया आगमेऽन्तर्भावः, तस्मिन्नपि लौकिकलोकोत्तरभेदभिन्ने परमगुरुप्रणीतत्वेन लोकोत्तरे, तत्रापि आत्मागमानन्तरागमपरंपरागमभेदात्त्रिविधेऽप्यस्य समवतारः, संख्याप्रमाणेऽपि नामादिभेदभिन्ने प्रागुक्ते परिमाणसंख्यायामस्यावतारः, वक्तव्यतायामपि स्वसमयवक्तव्यतायामिदमवतरति, यत्रापि परोभयसमयवर्णनं क्रियते तत्रापि निश्चयतया स्वसमयवक्तव्यतैव ।"

अर्थात् यद्यपि उपक्रम द्वारमें शास्त्रकार की प्रवृत्ति सामायिकादि षट् अध्यायोंके समवतार के विषय में है तथापि सुगमता के कारण सूत्रकार ने उनका वर्णन नहीं किया, अतः वृत्तिकार स्थान शून्य रहने से स्वयं इसका किंचिन्मात्र वर्णन करते हैं—

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव इत्यादि उत्कीर्तन के विषय होने से उत्कीर्तनानुपूर्वी में समवतीर्ण होते हैं। इसी प्रकार गणनानुपूर्वी जानना चाहिये। क्योंकि गणन विषय होने से पूर्वानुपूर्वी या पश्चानुपूर्वी होती है। तथा—औदयिकादि भावों की अपेक्षा सामायिकाध्ययन श्रुतज्ञान रूप होने से क्षायोपशमिकादि षट् प्रकार के भाव में समवतीर्ण होता है। पूर्वोक्त द्रव्यादि भेदतया प्रमाण द्वार की अपेक्षा जीव भाव रूप होने से † सामायिकाध्ययन भाव प्रमाण

---

† आगम में भी कहा है —

"दव्वाइचउब्भेयं, पमीयए जेण तं पमाणंति ।
इणमज्झयणं भावोत्ति (प) माणे समोयइ ॥ १ ॥"

द्रव्यादिचतुर्भेदं, प्रमीयते येन तत्प्रमाणमिति ।
[illegible]

में समवतीर्ण होता है क्योंकि जीव भावप्रमाण में ग्रहण किया गया है। तथा—भावप्रमाण के गुण, नय और संख्या यों तीन भेद होनेसे गुण और संख्या प्रमाण में समवतीर्ण होता है। यद्यपि नयविचार की अपेक्षा परमार्थ से कचित् समवतार ‡ होता है, लेकिन उसी प्रकार नयविचार के अभाव से † अनवतार ही होता है। तथा गुण प्रमाण के दो भेद होने से इसका जीव गुण प्रमाण में समवतीर्ण होता है, तथा इसके ज्ञान, दर्शन और चारित्र, यों तीन भेद होने से ज्ञान प्रमाण में समवतीर्ण होता है। फिर प्रत्यक्षादि ज्ञानगुण के चार भेद होने से यह अध्याय आत्मोपदेश रूप आगम प्रमाण में समवतीर्ण होता है। पश्चात् आगम के दो भेद होने से इसका लोकोत्तरिक आगम में समवतार होता है। तथा लोकोत्तरिक आगम के तीन भेद आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम होने से इसका तीनों ही में समवतीर्ण होता है, और संख्या प्रमाण के आठ भेद होने से इसका परिमाण संख्या में समवतीर्ण होता है, तथा तीन वक्तव्यताओं में से स्वसमय की वक्तव्यता में इसका समवतीर्ण होता है। यद्यपि उभय समय की वक्तव्यताओं में से स्वसमय की वक्तव्यता में भी समवतीर्ण होता है लेकिन निश्चय से स्वसमय की वक्तव्यता ही जानना चाहिये। क्योंकि सम्यग्दृष्टि परसमय और उभयसमय की वक्तव्यता को व्याख्यान के समय स्वसमय की कर लेते हैं। कारण कि वे एकान्तवादी नहीं होते, अनेकान्ती होते हैं। इसलिये परमार्थ से सभी अध्ययन स्वसमय की वक्तव्यता में समवतीर्ण होते हैं *। इसी प्रकार चतुर्विंशतिस्तवादिकों का जानना। इस तरह समवतार का वर्णन करते हुए उपक्रम नामक प्रथम द्वार समाप्त हुआ।

---

‡ आगम में भी कहा है—

"आसज्ज उ सोयारं, नए नयविसारओ बूया।"

[आसाद्य तु श्रोतारं नयान् नयविशारदो ब्रूयात्।]

महामतिनाप्युक्तम्—

† "मूढनइयं सुयं कालियं तु न नया समोयरंति इह।
मूढनयं तु न संपई नयप्पमाणावआरो से।"

[मूढनयिकं श्रुतं कालिकं तु न नया समवतरन्तीह।
मूढनयं तु न संप्रति नयप्रमाणावतारस्तस्य।]

* आगम में भी कहा है—

"परसमओ उभयं वा, सम्मद्दिट्ठिस्स ससमओ जेणं।
तो सव्वज्झयणाइं, ससमयवत्तव्वनिययाइं ॥१॥"

[परसमयं उभयं वा सम्यग्दृष्टेः स्वसमयो येन।
ततः सर्वाण्यध्ययनानि स्वसमयवक्तव्यानियतानि ॥१॥]

इसके बाद निक्षेपद्वार नामक तृतीय अनुयोगद्वार का स्वरूप जानना चाहिये—

निक्षेप द्वार ।

से किं तं निक्खेवे ? तिविहे पराणत्ते, तं जहा—ओहनिप्फराणे नामनिप्फराणे सुत्तालावगणिप्फराणे ।

से किं तं ओहनिप्फराणे ? चउव्विहे पराणत्ते, तं जहा—अज्झयणे अज्झीणे आए खवणा ।

से किं तं अज्झयणे ? चउव्विहे पराणत्ते तं जहा—णामज्झयणे, ठवणज्झयणे दव्वज्झयणे भावज्झयणे, णामट्ठवणाओ पुव्वं वरिणआओ ।

से किं तं दव्वज्झयणे ? दुविहे पराणत्ते, तं जहा—आगमओ अ णोआगमओ अ ।

से किं तं आगमओ दव्वज्झयणे ? जस्स णं अज्झयणेत्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं मितं परिजितं जाव एवं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वज्झयणाइं, एवमेव ववहारस्सवि संगहस्स णं एगो वा अणेगो वा जाव, से तं आगमओ दव्वज्झयणे ।

से किं तं णोआगमओ दव्वज्झयणे ? तिविहे पराणत्ते, तं जहा—जाणगसरीरदव्वज्झयणे भवियसरीरदव्वज्झयणे जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे ।

से किं तं जाणगसरीर दव्वज्झयणे ? अज्झयणपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरं ववगयचुयचावियचत्तदेहं

जीवविप्पजढं जाव अहो णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिण-दिट्ठेणं भावेणं अज्झयणेत्तिपयं आघवितं जाव उवदंसितं, जहा को दिट्ठंतो ? अयं घयकुंभे आसी अयं महुकुंभे आसी, से तं जाणगसरीरदव्वज्झयणे ।

से किं तं भवियसरीरदव्वज्झयणे ? जे जीवे जोणि-जम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आदत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं अज्झयणे त्तिपयं सेअकाले सिक्खि-स्सइ न ताव सिक्खइ, जहा को दिट्ठंतो ? अयं महु-कुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ से तं भविय-सरीर दव्वज्झयणे ।

से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झय-णे ? पत्तयपोत्थयलिहियं, से तं जाणगसरीरभवियसरीर-वइरित्ते दव्वज्झयणे, से तं णोआगमओ दव्वज्झयणे, से तं दव्वज्झयणे ।

से किं तं भावज्झयणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ अ णोआगमओ अ ।

से किं तं आगमओ भावज्झयणे ? जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झयणे ।

से किं तं नोआगमओ भावज्झयणे ?

अज्झप्पस्साणयणं, कम्माणं अवचओ उवचिआणं ।

अणुवचओ अ नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छंति ।

से तं णोआगमओ भावज्झयणे । से तं भावज्झ-यणे । से तं अज्झयणे ।

पदार्थ—(से किं तं निक्खेवे ?) निक्षेप किसे कहते हैं ? (निक्खेवे) जिन पदार्थों का स्वरूप निक्षेप द्वारा वर्णन किया जाय उसे निक्षेप कहते हैं, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(ओहनिप्फण्णे) ओघनिष्पन्न (नामनिप्फण्णे) नामनिष्पन्न और (सुत्तालावगनिप्फण्णे ।) सूत्रालापकनिष्पन्न

(से किं तं ओहणिप्फण्णे ?) ओघनिष्पन्न किसे कहते हैं ? (ओहणिप्फण्णे) जो सामान्यतया अध्ययनादि श्रुत के नाम से निष्पन्न हुए हों उसे ओघनिष्पन्न निक्षेप कहते हैं, और वह (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(अज्झयणे) अध्ययन (*अज्झीणे) अक्षीण (आए) आय—लाभ, (खवणा) † क्षपणा ।

(से किं तं अज्झयणे ?) अध्ययन किसको कहते है ? (अज्झयणे) अध्ययन‡ (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा) जैसे कि—(णामज्झयणे) नामाध्ययन (ठवणज्झयणे) स्थापनाऽध्ययन (दव्वज्झयणे) द्रव्याध्ययन (भावज्झयणे ।) भावाध्ययन । (णामट्ठवणाओ) नाम और स्थापना (पुव्वं वण्णियाओ,) पूर्व वर्णन की गई हैं ।

(से किं तं दव्वज्झयणे ?) द्रव्याध्ययन किसको कहते हैं ? (दव्वज्झयणे) द्रव्याध्ययन (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ अ) आगम से और (नोआगमओ अ ।) नोआगम से ।

(से किं तं आगमओ दव्वज्झयणे ?) आगम से द्रव्याध्ययन किसे कहते हैं ? (आगमओ दव्वज्झयणे) आगम से द्रव्याध्ययन उसे कहते हैं कि—(जस्स णं) जिसने (अज्झयणेत्ति पयं) अध्ययन रूप पद को (÷ सिक्खियं) आदि से अन्त तक सीख लिया हो (ठितं) हृदयमें अविस्मरण रूप स्थिर कर लिया हो (जितं) आवृत्ति करते हुए

---

* "अक्षीणशब्दस्य क्षः खः क्वचित् छझौ" प्रा० । अ० ८ । पा० ७ । सू० ३ । इत्यनेन क्षस्य खो भवति क्वचित् छझावपि ।

† ये चारों नाम सामायिकादि चतुर्विंशतिस्तवविशेषों के हैं । विशेष वर्णन आगे दिया गया है ।

÷ आदितः आरभ्य पठनक्रियया यावदन्तं नीतं तच्छिक्षितमुच्यते । स्थितं—अविस्मरणश्चेतसि स्थितं स्थितत्वात् स्थितमप्रच्युतमित्यर्थः । जितं—परावर्तनं कुर्वता परेण वा क्वचित्पृष्टस्य यच्छीघ्रमागच्छति तज्जितम् । विज्ञातश्लोकपदवर्णादिसंख्यां मितम् परिजितम्—परि समन्तात्सर्वप्रकारैर्जितं परिजितं परावर्तनं कुर्वतो यत्क्रमेणोत्क्रमेण वा समागच्छति ।

‡ अनुपयुक्त होनेसे द्रव्याध्ययन एक ही होता है ।

कोई पूछे तो शीघ्र उत्तर देता हो (मतं) श्लोक और पदादि वर्णों की संख्या भी जान ली हो (परिजितं जाव) यावत् अनुक्रम से पठ भी लिया हो, (एवं) इसी प्रकार (जावइया) जितने (अणुवउत्ता आगमओ) आगम से अनुपयोग युक्त पुरुष हैं (तावइयाइं दव्वज्झयणाइं ।) उतने ही द्रव्याध्ययन होते हैं। (एवमेव ववहारस्सवि,) इसी प्रकार व्यवहार नय का भी मत है, (संगहस्स णं) संग्रह नय के मत से (एगो वा अणेगो वा जाव)एक या अनेक यावत् (से तं आगमओ दव्वज्झयणे ।) यही आगमसे द्रव्याध्ययन है।

(से किं तं नोआगमओ दव्वज्झयणे ?) नोआगम से द्रव्याध्ययन किसे कहते हैं ? (नोआगमओ दव्वज्झयणे) नोआगम से जो अध्ययन क्रियायुक्त पठन-पाठन किया जाता है उसे नोआगम से द्रव्याध्ययन कहते हैं, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(जाणगसरीरदव्वज्झयणे) ज्ञशरीर द्रव्याध्ययन (भवियसरीरदव्वज्झयणे) भव्यशरीर द्रव्याध्ययन और (जाणगसरीर-भवियसरीर वइरित्ते दव्वज्झयणे) ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन।

(से किं तं जाणगसरीरदव्वज्झयणे ?) ज्ञशरीर द्रव्याध्ययन किसे कहते ? (जाणगसरीरदव्वज्झयणे) ज्ञशरीर द्रव्याध्ययन उसे कहते हैं जो (अज्झयणपयत्थाहिगार) अध्ययन के पदार्थाधिकार के (जाणयस्स) ज्ञाता का (जं सरीरं) जो शरीर हो (*ववगय) चेतना से रहित हो (चुय) श्वासोच्छ्वासादि दश प्रकार के प्राणोंसे रहित हो (चइय) प्राणों से विमुक्त हो (चत्तदेहं) देह छोड़ दिया हो (जीवविप्पजढं) आत्मा को अनेक बार छोड़ा हुआ हो, (जाव) यावत् (अहो णं) आश्चर्य है कि (इमेणं) इस (सरीर-समुस्सएणं) शरीर के समूह से (जिण दिट्ठेणं भावेणं) जिनेश्वर भगवान् के उपदेश किये हुये को अपने भाव से (अज्झयणेत्तिपदं) अध्ययन रूप एक पद का (आघवितं) ग्रहण किया हो (जाव) यावत् (उवदंसितं) सबनय और युक्तियों से उपदेश किया हो (जहा को दिट्ठंतो ?) जैसे कोई दृष्टान्त भी है ? (अयं) यह (घयकुंभे) घी का घड़ा (आसी) था

---

* व्यपगतं चैतन्यपर्यायादचैतन्यलक्षणं पर्यायान्तरं प्राप्तम्। च्युतं—उच्छ्वासनिःश्वासजीवितादिदशविधप्राणेभ्यः परिभ्रष्टम्। च्यावितं—बलीयसा आयुःक्षयेण तेभ्यः परिभ्रंशितम्। त्यक्तदेहं—'दिह उपचये' त्यक्तो देह आहारपरिणतिजनित उपचयो येन तत् त्यक्तदेहम्। जीवविप्पजढं—जीवेन—आत्मना त्रिविधम्—अनेकधा प्रकर्षेण मुक्तं—जीवविप्रमुक्तम्। पुद्गलसंघाततत्वात्समुच्छ्रयस्तेन। आघवियं—प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च द्वयोः सकाशादागृहीतम्। उवदंसितं—उपदर्शितं

(अयं) यह (महुकुंभे) मधु का घड़ा (आसी) था (से तं जाणगसरीरदव्वज्झयणे ।) यही ज्ञशरीर द्रव्याध्ययन है।

(से किं तं भवियसरीर दव्वज्झयणे ?) भव्यशरीर द्रव्याध्ययन किसे कहते हैं ? (भवियसरीरदव्वज्झयणे) भव्यशरीर द्रव्याध्ययन उसे कहते हैं जैसे (जे जीवे) जो जीव (जोणिजम्मणनिक्खंते) योनि से जन्म को प्राप्त हुआ अर्थात् योनि से बाहर निकला, (इमेणं चेव) और इस (आदत्तएणं) ग्रहण किये हुए (सरीरसमुस्सएणं) शरीर समुदाय से (जिणदिट्ठेणं भावेणं) जिनेश्वर के उपदेश किये हुए को (भावेणं) अपने भाव से (अज्झयणेत्तिपयं, अध्ययन रूप पद को (सेयकाले सिक्खिस्सइ) वह भविष्य काल में सीखेगा लेकिन (न ताव सिक्खइ) अब नहीं सीखता है, (जहा को दिट्ठंतो ?) जैसे कोई दृष्टान्त भी है ? (अयं) यह (महुकुंभे) मधु का कुंभ (भविस्सइ) होगा (अयं) यह (घयकुंभे) घृत का कुंभ (भविस्सइ,) होगा (से तं भवियसरीरदव्वज्झयणे ।) यही भव्य० शरीर द्रव्याध्ययन है।

(से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे) ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन किसे कहते हैं ? (जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे) ज्ञ-शरीर—भव्यशरीर—व्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन उसे कहते हैं जो (पत्तय) पत्रों और (पोत्थय) पत्रसंचय रूप पुस्तक (लिहियं) लिखे हुए हों, (से तं) यही (जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे) ज्ञशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन है। (से तं णोआगमओ दव्वज्झयणे ।) यही पूर्वोक्त नोआगम से द्रव्याध्ययन है। (से तं दव्वज्झयणे ।) यही द्रव्याध्ययन है।

(से किं तं भावज्झयणे ?) भावाध्ययन किसे कहते हैं ? (भावज्झयणे) जिसके द्वारा कर्मों का उपचय निवृत्त हो उसे भावाध्ययन कहते है, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया हैं, (तं जहा॰) जैसे कि—(आगमओ अ) आगम से और (*नोआगमओ अ।) नोआगम से।

(से किं तं आगमओ अ भावज्झयणे ?) आगम से भावाध्ययन किसे कहते हैं ? (भावज्झयणे) आगम भावाध्ययन उसे कहते हैं—(जाणए उवउत्ते) जो अध्ययन के अर्थ के उपयोग से युक्त है। (से तं आगमओ भावज्झयणे ।) यही आगम से भावाध्ययन होता है।

(से किं तं नोआगमओ भावज्झयणे ?) नोआगम से भावाध्ययन किसे कहते हैं ? (नोआगमओ भावज्झयणे) जिसके द्वारा कर्मों का उपचय न हो, उसे नोआगम से भावाध्ययन कहते हैं, जैसे कि-

---

* नो शब्द देशवाचक जानना चाहिये।

(अज्झप्पस्साणयणं कम्माणं अवचओ उवचिआणं । अणुवचओ अ न ... तम्हा अज्झयणमिच्छंति ॥१॥) अध्यात्म में आने के लिये उपार्जित किये हुये कर्मों का क्षय हो तथा नये कर्मों की उत्पत्ति न होना, इसी लिये आचार्य लोग 'अध्ययन' को चाहते हैं॥१॥ (से तं णोआगमओ भावज्झयणे ।) यही नोआगम से भावाध्ययन है, (से तं भावज्झयणे,) तथा यही भावाध्ययन है, (से तं अज्झयणे ।) और इसी को अध्ययन कहते हैं ।

भावार्थ—निक्षेप तीन हैं, जैसे कि–ओघनिष्पन्न १, नामनिष्पन्न २, और सूत्रालापकनिष्पन्न ३ ।

ओघनिष्पन्न चार प्रकार का है, जैसे कि–अध्ययन १, अक्षीण २, आय ३, और क्षपणा ४ ।

अध्ययन के चार भेद हैं, जैसे कि — नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३ और भाव ४ । नाम और स्थापना का स्वरूप पूर्ववत् जानना चाहिये ।

द्रव्य अध्ययन के दो भेद हैं, जैसे कि—आगम से १, और नोआगम से २ । जो अध्ययन को उपयोग पूर्वक नहीं पढ़ता है उसे आगम से द्रव्य अध्ययन कहते हैं । और नोआगम से द्रव्याध्ययन तीन प्रकार से वर्णन किया गया है, जैसे कि—ज्ञशरीर द्रव्याध्ययन १, भव्यशरीर द्रव्य अध्ययन २, ज्ञशरीर—भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन ३ । प्रथम दोनों का स्वरूप नोआगम ही है लेकिन तृतीय व्यतिरिक्त द्रव्याध्ययन वह है जो पत्र और पुस्तक रूपमें लिखा हुआ हो, इस लिये इसे नोआगम से द्रव्याध्ययन कहते हैं । तथा भावाध्ययन भी दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि—आगम से और नोआगम से, आगम से भावाध्ययन वह है जो उपयोग पूर्वक होता है और नोआगम से भावाध्ययन वह है जिसके द्वारा नूतन कर्मों का उपचय न हो और प्राचीन कर्मों का क्षय हो यही नोआगम से भावाध्ययन का स्वरूप है तथा यही भावाध्ययन है और यही अध्ययन है ।

इसके बाद अक्षीण निक्षेप का वर्णन किया जाता है—

अक्षीण द्वार ।

से किं तं अज्झीणे ? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—नामज्झीणे ठवणज्झीणे दव्वज्झीणे भावज्झीणे । नामठव-

---

१"अज्झप्पस्साणयण'—सूत्र के निपात द्वारा 'प्प' 'स्स' 'आ ण' के लोप करने से 'अज्झयण' शब्द की प्राकृत भाषा में व्युत्पत्ति होती है, लेकिन संस्कृत में 'अध्ययन' कहते हैं ।

णाओ [illegible] वरिणाओ ।

से किं तं दव्वज्झीणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ अ नोआगमओ य ।

से किं तं आगमओ दव्वज्झीणे ? जस्स णं अज्झीणेत्ति पयं सिक्खियं जियं मियं परिजियं जाव, से तं आगमओ दव्वज्झीणे ।

से किं तं नोआगमओ दव्वज्झीणे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—जाणयसरीरदव्वज्झीणे भवियसरीरदव्वज्झीणे जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे ।

से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे ? अज्झीणपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं जाव, से तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे ।

से किं तं भवियसरीरदव्वज्झीणे ? जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते जहा दव्वज्झयणे जाव, से तं भवियसरीरदव्वज्झीणे ।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे ? सव्वागाससेढी, से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे । से तं नोआगमओ दव्वज्झीणे, से तं दव्वज्झीणे ।

से किं तं भावज्झीणे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ अ नोआगमओ य ।

से किं तं आगमओ भावज्झीणे ? जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झीणे ।

से किं तं नोआगमओ भावज्झीणे ?
जह दीवा दीवसयं, पइप्पए दिप्पए अ सो दीवो ।
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवंति ॥१॥
से तं नोआगमओ भावज्झीणे । से तं भावज्झीणे, से तं अज्झीणे ।

पदार्थ—(से किं तं अज्झीणे ?) अक्षीण किसे कहते हैं ? और वह कितने प्रकार का है ? (अज्झीणे) अक्षीण उसे कहते हैं सामान्यश्रुत विशेष सामायिक चतुर्विंशतिस्तवादि का नाम हो, और वह (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(णामज्झीणे) नाम अक्षीण, (ठवणज्झीणे) स्थापना अक्षीण, (दव्वज्झीणे) द्रव्य अक्षीण और (भावज्झीणे ।) भाव अक्षीण । (नामठवणाओ) नाम स्थापना (पुव्वं वण्णिआओ,) पूर्व में वर्णन की गई है ।

(से किं तं दव्वज्झीणे ?) द्रव्य अक्षीण किसे कहते हैं ? (दव्वज्झीणे) जो द्रव्य से क्षीण न हो, वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ अ) आगम से, और (नोआगमओ अ ।) नो आगम से ।

(से किं तं आगमओ दव्वज्झीणे ?) आगम से द्रव्य अक्षीण किसे कहते हैं ? (आगमओ दव्वज्झीणे) आगम से द्रव्य अक्षीण उसे कहते हैं कि—(जस्सणं) जिसने (अज्झीणेत्तिपयं) अक्षीण रूप एक पद को (सिक्खियं) प्रारम्भ से अन्त तक सीख लिया हो, (जियं) आवृत्ति करते हुए कोई पूछे तो शीघ्र उत्तर देता हो उसे जित कहते हैं, (मियं) पदादि श्लाकों के वर्णों की संख्या जानता हो । (परिजितं जाव) आवृत्ति करते हुए कोई उलट पुलट पूछे तो सब प्रकार उत्तर देता हो, यावत् (से तं आगमओ दव्वज्झीणे ।) यही आगम से द्रव्य अक्षीण है ।

(से किं तं नोआगमओ दव्वज्झीणे ?) नो आगम से द्रव्याक्षीण किसे कहते हैं ? (नोआगमओ दव्वज्झीणे) नोआगम से द्रव्याक्षीण (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(जाणयसरीरदव्वज्झीणे,) ज्ञशरीर द्रव्याक्षीण (भवियसरीरदव्वज्झीणे) भव्यशरीर द्रव्याक्षीण और (जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे ।) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अक्षीण ।

(से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे ?) ज्ञशरीर द्रव्याक्षीण किसे कहते हैं ? (जाणयसरीरदव्वज्झीणे) ज्ञशरीर द्रव्याक्षीण उसे कहते हैं जो (अज्झीणपयत्थाहिगारजाणयस्स) अक्षीण शब्द पदार्थाधिकार के ज्ञाता का (जं सरीरं) जो शरीर [illegible]

चत्तदेहं) व्यपगत, जीव से च्युत, त्यागा, त्यक्तदेह हो, (जहा दव्वज्झीणे) जैसा द्रव्य अध्ययन में वर्णन किया गया है (तहा भाणिअव्वं) उसी प्रकार कथन करना चाहिये, (जाव) यावत् (से तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे ।) यही ज्ञशरीर द्रव्याक्षीण है ।

(से किं तं भविअसरीरदव्वज्झीणे ?) भव्यशरीर द्रव्याक्षीण किसे कहते हैं ? (भविअसरीरदव्वज्झीणे) भव्यशरीर द्रव्याक्षीण उसे कहते हैं कि-(जे जीवे) जो जीव (जोणिजम्मणनिक्खंते) योनि से निकल कर जन्म को प्राप्त हुआ. (जहा दव्वज्झयणे,) जैसे द्रव्य अध्ययन अर्थात् शेष स्वरूप द्रव्य अध्ययनवत् जानना चाहिये । (जाव) यावत् (से तं भविअसरीरदव्वज्झीणे ।) यही भव्यशरीर द्रव्याक्षीण है ।

(से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते० ?) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्याक्षीण किसे कहते हैं ? (जाणय०) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य अक्षीण उसे कहते हैं, कि —(सव्वागाससेढी) लोकालोकाकाश के सब श्रेणियों से प्रदेशों का अपहरण किया जाय तो भी क्षीण नहीं हो सकते, (से तं जाणय०) यही ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्याक्षीणता है । (से तं नोआगमओ दव्वज्झीणे ।) यही नो आगम से द्रव्याक्षीण है । (से तं दव्वज्झीणे ।) यही द्रव्याक्षीण है ।

(से किं तं भावज्झीणे ?) भाव अक्षीण किसे कहते हैं ? (भावज्झीणे) जो भाव से क्षीण न हो उसे भाव अक्षीण कहते हैं, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ य) आगम से और (नोआगमओ य ।) नो आगम से ।

(से किं तं आगमओ भावज्झीणे ?) आगम से भाव अक्षीण किसे कहते हैं ? (आगमओ भावज्झीणे) आगमसे भावाक्षीण उसे कहते हैं कि-(जाणए उवउत्ते) जो अक्षीण के अर्थ को * उपयोग पूर्वक जानता हो, (से तं आगमओ) यही आगम से (भावज्झीणे ।) भाव अक्षीण है ।

(से किं तं नोआगमओ भावज्झीणे ?) नोआगम से भाव अक्षीण किसे कहते हैं ?

---

* अत्र वृद्धा व्याचक्षते—यस्माच्चतुर्दशपूर्वविदः आगमोपयुक्तस्यान्तर्मुहूर्त्तमात्रोपयोगकाले ये ऽर्थोपलम्भोपयोगपर्यायास्ते प्रतिसमयमेकैकापहारेणानन्ताभिरप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्नापह्रियन्ते, अतो भावाक्षीणतेहावसेया ।

चतुर्दश पूर्व जानने वाले के उपयोग मात्र एक अन्तर्मुहूर्त्त काल में जितने पर्याय होते हैं वे अनन्त काल चक्रों से भी अपहरण नहीं हो सकते, क्योंकि वे अनन्त हैं । यही भावाक्षीणता यहां पर जानना चाहिये ।

(नोआगमओ भावज्झीणे ? नो आगम से भावाक्षीण उसे कहते हैं-कि जो श्रुत ज्ञान का दान करने से श्रुत का क्षय न हो वही नो आगम से भाव अक्षीणता है।

(जह दीवा दीवसयं पइप्पए दिप्पए अ सो दीवो। दीवसमा आयरिया दिप्पंति परं च दीवेंति ॥१॥) जैसे कि दीपक स्वयं प्रकाशमान रहते हुए सैकड़ों दूसरे दीपकों को प्रकाशमान करता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज स्वयं दीपक के समान देदीप्यमान हैं और दूसरों को अर्थात् शिष्य वर्ग को देदीप्यमान करते हैं।

(से तं नोआगमओ भावज्झीणे।) यही नोआगम से भावाक्षीण है। (से तं भावज्झीणे।) यही * भावाक्षीण है। (से तं अज्झीणे।) यही अक्षीण है।

भावार्थ—भावाक्षीणता के चार भेद हैं,-नामाक्षीण, स्थापनाक्षीण, द्रव्याक्षीण और भावाक्षीण। नाम और स्थापना पूर्ववत् जानना चाहिये। द्रव्याक्षीण दो प्रकार से प्रतिपादन की गई, जैसे कि—आगम से और नोआगम से। जो अक्षीण शब्द को उपयोग पूर्वक जानता हो उसे आगम अक्षीण कहते हैं। तथा-नोआगम से अक्षीण पूर्ववत् तीन प्रकार से जानना चाहिये, सिर्फ व्यतिरिक्त तृतीय भेद में सब आकाश की श्रेणियें ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वे अनन्त होने से किसी प्रकार भी क्षीण नहीं हो सकतीं। तथा—भावाक्षीणता के दो भेद हैं जैसे कि—आगम से और नोआगम से। आगम से भाव अक्षीण उसे कहते हैं जो अक्षीण शब्द के अर्थ को उपयोग पूर्वक जानता हो, और आगम से भाव अक्षीण उसे कहते हैं जो किसी प्रकार भी व्यय करने से क्षीण न हो, जैसे-एक दीपक से सैकड़ों दूसरे दीपक प्रदीप्त किये जाते हैं परन्तु असली दीपक किसी प्रकार भी नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार आचार्य महाराज श्रुत का दान—पठन—पाठन करते हुए आप भी दीप्त रहते हैं, और दूसरों को अर्थात् शिष्य वर्ग को भी प्रकाशमान करते हैं। श्रुत का क्षीण न होना यही भावाक्षीण है। अतः यही नोआगम से भाव अक्षीणता है। भावाक्षीण तथा अक्षीण का वर्णन यहां समाप्त होता है।

इसके अनन्तर आय-लाभ का स्वरूप जानना चाहिये-

आय।

से किं तं आए ? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—नामाए

---

* अत्र च नोआगमतो भावाक्षीणता श्रुतदायकाचार्योपयोगस्यागमत्वाद्वाक्काययोगयोरचानागमत्वान्नोशब्दस्य मिश्रवचनत्वाद्भावनीयेति वृद्धा व्याचक्षते।

ठवणाए दव्वाए भावाए। नामठवणाओ पुव्वं भणिआओ।

से किं तं दव्वाए ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ अ नोआगमओ अ।

से किं तं आगमओ दव्वाए ? जस्स णं आयत्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं मितं परिजितं जाव कम्हा ? अणुवओगो दव्वमितिकट्टु, नेगमस्स णं जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइया ते दव्वाया जाव, से तं आगमओ दव्वाए।

से किं तं नोआगमओ दव्वाए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—जाणगसरीरदव्वाए भवियसरीरदव्वाए जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए।

से किं तं जाणगसरीरदव्वाए ? आयपयत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुयचावियचत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे जाव, से तं जाणगसरीरदव्वाए।

से किं तं भविअसरीरदव्वाए ? जे जीवे जोणिजम्मणणिक्खंते जहा दव्वज्झयणे जाव, से तं भवियसरीरदव्वाए।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—लोइए कुप्पावयणीए लोगुत्तरिए।

से किं तं लोइए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते अचित्ते मीसए अ।

से किं तं सचित्ते ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—दुपयाणं चउप्पयाणं अपयाणं दुपयाणं दासाणं दासीणं चउ-

प्पयाणं आसाणं हत्थीणं अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं आए, से तं सचित्ते ।

से किं तं अचित्ते ? सुवण्णरयय मणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणाणं संतसावएज्जस्स आए, से तं अचित्ते ।

से किं तं मीसए ? दासाणं दासीणं आसाणं हत्थीणं समाभरिआउज्जालंकियाणं आए, से तं मीसए, से तं लोइए ।

से किं तं कुप्पावयणिए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा· सचित्ते अचित्ते मीसए अ तिण्णिवि जहा लोइए जाव, से तं मीसए, से तं कुप्पावयणिए ।

से किं तं लोगुत्तरिए ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा— सचित्ते अचित्ते मीसए अ ।

से किं तं सचित्ते ? सीसाणं सिस्सणियाणं, से तं सचित्ते ।

से किं तं अचित्ते ? पडिग्गहाणं वत्थाणं कंबलाणं पायपुंछणाणं आए, से तं अचित्ते ।

से किं तं मीसए ? सिस्साणं सिसणियाणं सभंडोवगरणाणं आए, से तं मीसए, से तं लोगुत्तरिए, से तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए, से तं नोआगमओ दव्वाए, से तं दव्वाए ।

से किं तं भावाए ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगमओ अ नोआगमओ अ ।

से किं तं आगमओ भावाए ? जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावाए ।

से किं तं नोआगमओ भावाए ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पसत्थे अ अपसत्थे अ।

से किं तं पसत्थे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-णाणाए दंसणाए चरित्ताए से तं पसत्थे।

से किं तं अपसत्थे ? चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-कोहाए माणाए मायाए लोभाए, से तं अपसत्थे, से तं णोआगमओ भावाए, से तं भावाए, से तं आए।

पदार्थ—(से किं तं आए ?) आय किसे कहते हैं ? (आए) जो अप्राप्त की प्राप्ति हो उसे आय-लाभ कहते हैं, और वह (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(नामए) नाम आय (ठवणा) स्थापना आय (दव्व ए) द्रव्य आय और (भावाए)भाव आय। (नामठवणाओ, नाम और स्थापना (पुव्वं भ.णिआओ।) पूर्व में वर्णन की गई है।

(से कि तं दव्वाए ?) द्रव्य आय किसे कहते हैं ? (दव्वाए) जिसे द्रव्य की प्राप्ति हो उसे द्रव्य आय कहते हैं, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है,(तं जहा-) जैसे कि-(आगमओ अ) आगमसे और (नोआगमओ अ।) नो आगम से।

(से किं तं आगमओ दव्वाए ?) आगम से द्रव्य आय किसे कहते हैं ? (आगम-ओ०) आगम से द्रव्य आय उसे कहते हैं कि (जस्सणं) जिसने (आयत्तिपदं) 'आय' रूप एक पद को (सिक्खिअं) सीख लिया हो (ठितं) हृदय में स्थित कर लिया हो (जितं) अनुक्रम से पढ़ भी लिया हो (मितं) श्लोकादि अक्षरों के प्रमाण को जान लिया हो (परिजितं) अननुक्रम से भी पढ़ लिया हो (जाव) यावत्, कम्हा ?) क्यों ? (अणुवओगो दव्वमितिकट्टु,) द्रव्य अनुपयुक्त होने से, (नेगमस्स णं, नैगमनय के मत से (जावइया) जितने (अणुवउत्ता आगमओ) आगम से अनुपयुक्त हैं (तावइया) उतने ही (ते दव्वाया) वे द्रव्याय हैं (जाव) * यावत् (से तं आगमओ दव्वाए।) यही आगम से द्रव्य आय है।

(से किं तं नोआगमओ दव्वाए ?) नोआगम से द्रव्याय किसे कहते हैं ? (नोआग-मओ दव्वाए) नोआगम से द्रव्याय (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि-(जाणगसरीरदव्वाए) ज्ञशरीर द्रव्य आय (भवियसरीरदव्वाए) भ-

* 'जाव' यावत् शब्द पूर्वमें वर्णन किये हुये अधिकार का सूचक है। इसी प्रकार सर्वत्र

भव्यशरीर द्रव्य आय (जाणयसरीरवइरित्ते दव्वाए ।) और ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य आय ।

(से किं तं जाणगसरीरदव्वाए ?, ज्ञशरीर द्रव्याय किसे कहते हैं ? (जाणग०) ज्ञ-शरीर द्रव्य आय उसे कहते हैं कि-(आयपयत्थाहिगारजाणयस्स) आयपदार्थाधिकार के जानने वाले का (जं सरीरयं) जो शरीर है, जो कि (ववगय) चैतन्यसे रहित हो अथवा (चुअ) च्युत हुआ हो (चाविय) दश प्रकार के प्राणों से रहित हुआ हो या (चत्तदेहं) देह छोड़ दिया हो (जहा) जैसे (दव्वज्झयणे,) द्रव्य अध्ययन, (से तं जाणगसरीरदव्वाए ।) यही ज्ञशरीर द्रव्य आय है ।

(से किं तं भवियसरीरदव्वाए ?) भव्यशरीर द्रव्य आय किसे कहते हैं (भविय-सरीरदव्वाए) भव्यशरीर द्रव्य आय उसे कहते हैं कि—(जे जीवे) जो जीव (जोणिजम्म-णनिक्खंते) योनि से निकल कर जन्म को प्राप्त हुआ हो (जहा दव्वज्झयणे,) † द्रव्य अध्ययन के समान, (से तं भवियसरीरदव्वाए ।) यही भव्यशरीर द्रव्य आय है ।

(से किं तं जाणग० वइरित्ते दव्वाए ?, ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य आय किसे कहते हैं ? (जाणग० वइरित्ते दव्वाए) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य आय (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि— (लोइए, लौकिक (कुप्पावयणिए) कुप्रावचनिक और (लोगुत्तरिए ।) लोकोत्तरिक ।

(से किं तं लोइए ?) लौकिक किसे कहते हैं ? (लोइए) जो सांसारिक लाभ हो उसे लौकिक कहते हैं, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(सचित्ते) सचित्त (अचित्ते) अचित्त (मीसए अ ।) और मिश्र ।

(से किं तं सचित्ते ?) सचित्त किसे कहते हैं ? (सचित्ते) जो सचित्त पदार्थ का लाभ हो उसे सचित्त कहते हैं, और वह (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रति-पादन किया गया है, (तं जहा) जैसे कि—(दुपयाणं) दो पांव वालों का (चउप्पयाणं) चार पैर वालों का (अपयाणं) और बिना पैर वालों का । (दुपयाणं) दो पैर वालों का जैसे-(दासाणं) दास-सेवकों और (दासीणं) दासियों-सेवकनियों का (चउप्पयाणं, चतु-ष्पदों का, जैसे-(आसाणं) अश्व-घोड़ों और (हत्थीणं) हस्तियों का (अपयाणं) बिना पैर वालों का, जैसे-(अंबाणं) आम्र और (अंबाडगाणं) अम्बाडियों का (आए,) लाभ, (से तं सचित्ते ।) इसी को सचित्त आय कहते हैं ।

(से किं तं अचित्ते ?) अचित्त आय किसे कहते हैं ? (अचित्ते) जिस अचित्त वस्तु

---

† शेष अधिकार द्रव्य अध्ययन के अनुसार जानना चाहिये ।

का लाभ हो उसे अचित्त कहते हैं, जैसे कि—(सुवएणा) सोना (रयय) चान्दी (मणि) मणि (मोत्तिश्र) मौक्तिक—माता (संख) शंख (सल) शिला बहुमूल्य पत्थर अथवा राज्याभिषेक योग्य पदार्थ (पवाल) प्रवाल—मूंगा, († रत्तरयणाणं) पद्मराग रत्न—(* संतसावएजस्स) विद्यमान द्रव्य का (आए) लाभ होना (से तं अचित्ते।) यही अचित्त लाभ है।

(से किं तं मीसए ?) मिश्र लाभ किसे कहते हैं ? (मीसए) मिश्र लाभ उसे कहते हैं जैसे-(दासाणं दासीणं) दास और दासियों का (आसाणं हत्थीणं) अश्व और हस्तियों का (समाभरिआउज्जालंकियाणं) सोने तथा साङ्कलादि झल्लरी प्रमुख आभूषणों से विभूषित का (आए,) लाभ होना, (से तं मीसए,) इसी को मिश्रलाभ कहते हैं, (से तं लोइए।) यही लौकिक लाभ है।

(से किं तं कुप्पावयणिए ?) कुप्रावचनिक लाभ किसे कहते हैं ? (कुप्पावयणिए) जिससे कुप्रावचनिक लाभ हो, और वह (तिविहे पएणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(सचित्ते) सचित्त (अचित्ते) अचित्त (मीसए अ।) और मिश्र। (तिरिणवि) उक्त तीनों हो (जहा लोइए,) लौकिक जैसे होते हैं, (जाव) यावत् (से तं मीसए।) यही मिश्र है। (से तं कुप्पावयणिए।) और इसे ही कुप्रावचनिक कहते हैं।

(से किं तं लोगुत्तरिए ?) लोकोत्तरिक लाभ किसे कहते हैं ? (लोगुत्तरिए) लोकोत्तरिक लाभ (तिविहे पएणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(सचित्त अचित्त मीसए अ।) सचित्त अचित्त और मिश्र।

(से किं तं सचित्ते ?) सचित्त किसे कहते हैं ? (सचित्ते) सचित्त, जैसे-(सीसाणं सिस्सणिआणं) शिष्य और शिष्यानिओं साध्वियों का, (से तं सचित्ते।) इसी को सचित्त कहते हैं।

(से किं तं अचित्ते ?) अचित्त किसे कहते हैं ? (पडिग्गहाणं वत्थाणं) वस्त्र पात्र (कंबलाणं) कम्बलों का (पायपुंछणाणं) पादप्रोञ्छनादिकों का (आए,) लाभ होना, (से तं अचित्ते।) यही अचित्त है।

(से किं तं मीसए ?) मिश्र किसे कहते हैं ? (मीसए) मिश्र जैसे-(सिस्साणं सिस्साणिआणं) शिष्य और शिष्यनियों का (सभंडोवगरणाणं आए,) भाण्डोपकरण सहित लाभ होना, (से तं मीसए,) इसी को मिश्र कहते हैं, (से तं लोगुत्तरिए,) यही लोको-

† रक्तरत्नानि पद्मरागरत्नानि।

* 'संत'—सद्—विद्यमान, 'सावएजस्स'—स्वापतेयं—द्रव्यं।

सारिक है, (से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए,) यही ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य आय है। (से तं नोआगमओ दव्वाए,) यही नोआगम से द्रव्याय है और (से तं दव्वाए।) यही द्रव्य आय है ।

(से किं तं भावाए ?) भाव आय किसे कहते हैं ? (भावाए) जो भाव से लाभ हो, और वह (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(आगमओ अ।) आगम से और (नोआगमओ अ।) नोआगम से।

(से किं तं आगमओ भावाए ?) आगम से भाव लाभ किसे कहते हैं ? (आगमओ भावाए) आगम भाव लाभ उसे कहते हैं कि-(जाणए उवउत्ते,) जो उपयोग पूर्व जानता हो, (से तं आगमओ भावाए ।) यही आगम से भाव लाभ है।

(से किं तं नोआगमओ भावाए ?) नोआगम से भाव लाभ किसे कहते हैं ? (नोआगमओ भावाए) नोआगम से भाव आय (दुविहे पण्णत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है (तं जहा-) जैसे कि-(पसत्थे अ) प्रशस्त और (अपसत्थे य।) अप्रशस्त।

(से किं तं पसत्थे ?) प्रशस्त किसे कहते हैं ? (पसत्थे) प्रशस्त (तिविहे पण्णत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि-(णाणाए) ज्ञान आय (दंसणाए) दर्शन आय और (चारित्ताए,) चारित्र आय, (से तं पसत्थे ।) यही प्रशस्ताय है ।

(से किं तं अपसत्थे ?) अप्रशस्त किसे कहते हैं ? (अपसत्थे) अप्रशस्त (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(कोहाए) क्रोध आय (माणाए) मान आय (मायाए) माया आय (लोहाए,) लोभ आय, (से तं अपसत्थे ।) यही अप्रशस्त है। और (से तं णोआगमओ भावाए,) यही नोआगम से भाव आय है, (से तं भावाए ।) यही भाव आय है (से तं आए ।) और यही आय है।

भावार्थ—लाभ चार प्रकार का है, जैसे कि-नाम लाभ, स्थापना लाभ, द्रव्य लाभ और भाव लाभ। नाम और स्थापना का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये। द्रव्य लाभ दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, जैसे कि-आगम से और नोआगम से। शेष वर्णन प्राग्वत् जानना चाहिये, सिर्फ व्यतिरिक्त तृतीय भेद के तीन भेद हैं, लौकिक, लोकोत्तरिक और कुप्रावचनिक। लौकिक आय, जैसे-सचित्त द्विपादि, अचित्त सुवर्णादि, मिश्र दास दासी अश्व झल्लरीप्रमुख अलंकृत किये हुए का लाभ होना। इसी प्रकार कुप्रावचनिक लाभ जानना चाहिये। लोकोत्तरिक आय, जैसे-सचित्त शिष्यादि, अचित्त वस्त्रादि, मिश्र भाण्डोपकरण सहित शिष्यादि।

भाव आय के दो भेद हैं, जैसे कि-आगम से और नोआगम से। आगम

से उपयोग पूर्वक तथा नोआगम से प्रशस्त अप्रशस्त रूप होता है। जैसे कि— ज्ञान दर्शन और चारित्र का लाभ प्रशस्त लाभ और क्रोध मान माया लोभ का लाभ अप्रशस्त लाभ होता है। इस तरह से यहाँ पर नोआगम से भाव आय, भावआय, और आय का वर्णन समाप्त हुआ—

इसके बाद अब क्षपणा का स्वरूप कहते हैं—

झवणा ।

से किं तं झवणा ? चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा— नामज्झवणा ठवणज्झवणा दव्वज्झवणा भावज्झवणा। नामठवणाओ पुव्वं भणिआओ

से किं तं दव्वज्झवणा ? दुविहा पण्णत्ता, तं जहा— आगमओ अ नोआगमओ अ।

से किं तं आगमओ दव्वज्झवणा ? जस्स णं झवणे-तिपयं सिक्खियं ठियं जियं मियं परिजिअं जाव, से तं आगमओ दव्वज्झवणा ।

से किं तं नोआगमओ दव्वज्झवणा ? तिविहा पण्ण-त्ता, तं जहा—जाणयसरीरदव्वज्झवणा भवियसरीरदव्व-ज्झवणा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ।

से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा ? झवणापयत्था-हिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगयचुअचाविअचत्तदेहं सेसं जहा दव्वज्झयणे जाव, से तं जाणयसरीरदव्व-ज्झवणा ।

से किं तं भविअसरीरदव्वज्झवणा ? जे जीवे जोणि-जम्मणणिक्खंते, सेसं जहा दव्वज्झयणे जाव, से तं भवि-असरीरदव्वज्झवणा ।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ? जहा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए तहा भाणिअव्वा जाव, से तं मीसिआ, से तं लोगुत्तरिआ, से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा, से तं नोआगमओ दव्वज्झवणा, से तं दव्वज्झवणा।

से किं तं भावज्झवणा ? दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-आगमओ अ णोआगमओ अ।

से किं तं आगमओ अ भावज्झवणा ? दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावज्झवणा।

से किं तं नोआगमओ भावज्झवणा ? पसत्था य अपसत्था य।

से किं तं पसत्था ? तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—नाणज्झवणा दंसणज्झवणा चरित्तज्झवणा, से तं पसत्था।

से किं तं अपसत्था ? चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा कोहज्झवणा माणज्झवणा मायज्झवणा लोहज्झवणा, से तं अपसत्था। से तं नोआगमओ भावज्झवणा, से तं भावज्झवणा, से तं झवणा, से तं ओहनिप्फण्णे।

पदार्थ—(से किं तं झवणा ?) क्षपणा किसे कहते हैं ? और वह कितने प्रकार से प्रतिपादन की गई है। (झवणा) क्षपणा उसे कहते हैं जिससे कर्म की निर्जरा हो, और वह (चउव्विहा पण्णत्ता,) चार प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(नामज्झवणा) नामक्षपणा (ठवणज्झवणा) स्थापना क्षपणा (दव्वज्झवणा) द्रव्य क्षपणा और (भावज्झवणा।) भाव क्षपणा। (नामठवणाओ पुव्वं भणिआओ।) नाम और स्थापना का स्वरूप पूर्व में वर्णन किया जा चुका है।

(से किं तं दव्वज्झवणा ?) द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (दव्वज्झवणा) द्रव्यक्षपणा (दुविहा पराणत्ता,) दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ य) आगम से और (नोआगमओ य ।) नोआगम से ।

(से किं तं आगमओ दव्वज्झवणा ?) आगम से द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (आगमओ दव्वज्झवणा) आगम से द्रव्य क्षपणा उसे कहते हैं कि (जस्स णं) जिसने (झवणेत्तिपदं) क्षपणा रूप पद को (सिक्खिदं) सीख लिया हो या (ठियं) हृदय में स्थित कर लिया हो वा (जियं) अनुक्रम से पढ़ भी लिया हो अथवा (मयं) अक्षरों को परिमाण भी जानता हो या (परिजिअं) अननुक्रम से पढ़ लिया हो (जाव) यावत् (से तं आगमओ दव्वज्झवणा) यही आगम से द्रव्य क्षपणा है ।

(से किं तं नोआगमओ दव्वज्झवणा ?) नोआगम से द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (नोआगमओ दव्वज्झवणा) नोआगम से द्रव्य क्षपणा (तिविहा पराणत्ता,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(जाणयसरीरदव्वज्झवणा) ज्ञशरीर द्रव्य क्षपणा, (भवियसरीरदव्वज्झवणा) भव्यशरीर द्रव्य क्षपणा, (जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य क्षपणा ।

(से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा ?) ज्ञशरीर द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (जाणयसरीरदव्वज्झवणे) ज्ञशरीर द्रव्य क्षपणा उसे कहते हैं कि—(झवणापयत्थाहिगारजाणयस्स) क्षपणा पदार्थाधिकार जानने वाले का (जं सरीरयं) शरीर, जो कि—(ववगय) चेतना से रहित हुआ हो या (चुए) श्वासोच्छ्वासादि से रहित हुआ हो अथवा (चाविय) जबरदस्ती दश प्राणों से अलग हुआ हो या (चत्तदेहं) त्यक्तशरीर हो (सेसं) शेष (जहा दव्वज्झवणे,) द्रव्य अध्ययन जैसे, अर्थात् शेष स्वरूप द्रव्य अध्ययनानुसार जानना चाहिये, (जाव) यावत् (से तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा ।) यही ज्ञशरीर द्रव्य क्षपणा है ।

(से किं तं भवियसरीरदव्वज्झवणा ?) भव्यशरीर द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (भवियसरीरदव्वज्झवणा) भव्य शरीर द्रव्य क्षपणा उसे कहते हैं कि-(जे जीवे) जो जीव (जोणिजम्मणणिक्खंते) योनि से निकल कर जन्म को प्राप्त हुआ (सेसं जहा दव्वज्झवणे.) शेष वर्णन द्रव्य अध्ययनवत् जानना (जाव) यावत् (से तं भविअसरीरदव्वज्झवणा ।) यही भव्य शरीर द्रव्य क्षपणा है ।

(से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा ?) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य क्षपणा किसे कहते हैं ? (जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा)

ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य क्षपणा (जहा जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ते दव्वाए) जैसे ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य आय होती है (तहा भाणिअव्वा) उसी प्रकार कहना चाहिये, (जाव) यावत् (से तं मीसिआ,) यही मिश्र क्षपणा है। (से तं लोगुत्तरिआ) यही लोकोत्तरिक है, (से तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा,) यही ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य क्षपणा है, (से तं नोआगमओ दव्वज्झवणा,) यही नोआगम से द्रव्य क्षपणा है, और (से तं दव्वज्झवणा) यही द्रव्य क्षपणा है।

(से किं तं भावज्झवणा ?) भाव क्षपणा किसे कहते हैं ? (भावज्झवणा) भाव क्षपणा (दुविहा पण्णत्ता,) दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि -- (आगमओ अ) आगम से और (णोआगमओ य।) नोआगम से।

(से किं तं आगमओ भावज्झवणा ?) आगम से भाव क्षपणा किसे कहते हैं ? (आगमओ भावज्झवणा) आगम से भाव क्षपणा उसे कहते हैं कि (जाणए उवउत्ते,) जो क्षपणा शब्द के अर्थ को उपयोग पूर्वक जानता हो, (से तं आगमओ भावज्झवणा।) यही आगम से भाव क्षपणा है।

(से किं तं णोआगमओ भावज्झवणा ?) नोआगम से भाव क्षपणा किसे कहते हैं ? (णोआगमओ भावज्झवणा) नोआगम से भाव क्षपणा (दुविहा पण्णत्ता,) दो प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(पसत्था य) प्रशस्त और (अपसत्था य,) अप्रशस्त।

(से किं तं पसत्था ?) प्रशस्त किसे कहते हैं ? (पसत्था) प्रशस्त क्षपणा (तिविहा पण्णत्ता,) तीन प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(नाणज्झवणा) ज्ञान क्षपणा (दंसणज्झवणा) दर्शन क्षपणा (चरित्तज्झवणा,) चारित्र क्षपणा, (से तं पसत्था।) यही प्रशस्त क्षपणा है।

(से किं तं अपसत्था ?) अप्रशस्त किसे कहते हैं ? (अपसत्था) अप्रशस्त (चउव्विहा पण्णत्ता,) चार प्रकार से प्रतिपादन की गई है, (तं जहा-) जैसे कि-(कोहज्झवणा, क्रोध क्षपणा (माणज्झवणा) मान क्षपणा (मायज्झवणा) माया क्षपणा (लोहज्झवणा,) लोभ क्षपणा (से तं अपसत्था,) यही अप्रशस्त क्षपणा है। (से तं नोआगमओ भावज्झवणा) और यही नोआगम से भाव क्षपणा है, (से तं भावज्झवणा) यही भाव क्षपणा है, (से तं ओहनिप्फरणे।) और यही ओघनिष्पन्न है।

भावार्थ—क्षपणा उसे कहते हैं जिससे कर्म्म की निर्जरा हो। इसके चार भेद हैं, नामक्षपणा, स्थापनाक्षपणा, द्रव्यक्षपणा और भावक्षपणा। नाम और स्थापना पूर्ववत् जानना चाहिये। तथा--ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य

ओघ के समान जानना चाहिये। भाव क्षपणा के दो भेद हैं, आगम से और नो आगम से। आगम से भाव क्षपणा उसे कहते हैं जो क्षपणा शब्द के अर्थ को उपयोग पूर्वक जानता हो। तथा–नोआगम से भाव क्षपणा दो प्रकार की है, प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त क्षपणा उसे कहते हैं जो ज्ञान दर्शन चारित्र रूप हो, और अप्रशस्त उसे कहते हैं जो क्रोध मान माया लोभ रूप हो। इसी को नोआगम से भाव क्षपणा, तथा यही भाव क्षपणा, और यही क्षपणा है। इस तरह पूर्वोक्त सभी अधिकार ओघनिष्पन्न निक्षेप के हैं।

इसके बाद नामनिष्पन्न निक्षेप का स्वरूप प्रतिपादन किया जाता है–

नामनिष्पन्न निक्षेप।

से किं तं नामनिप्फण्णे? सामाइए, से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–णामसामाइए ठवणासामाइए दव्वसामाइए भावसामाइए। णामठवणाओ पुव्वं भणिआओ। दव्वसामाइएवि तहेव जाव, से तं भवियसरीर-दव्वसामाइए।

से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए? दव्वपत्तयपोत्थयलिहियं। से तं जाणयसरीरभविय-सरीरवइरित्ते दव्वसामाइए। से तं नोआगमओ दव्वसामाइए। से तं दव्वसामाइए।

से किं तं भावसामाइए? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा आगमओ य नोआगमओ य।

से किं तं आगमओ भावसामाइए? जाणए उवउत्ते, से तं आगमओ भावसामाइए।

से किं तं नोआगमओ भावसामाइए?

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥१॥

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥२॥
जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
ण हणइ न हणावेइ अ, सममणाति तेण सो समणो
णत्थिय से कोइ वेसो, पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु ।
एएण होइ समणो, एसो अन्नोऽवि पज्जाओ ॥४॥
उरगगिरिजलणसागरनहतलतरुगणसमो अ जो होइ ।
भमरमियधरणिजलरुहरविपवणसमो अ सो समणो ५
तो समणोजइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो
सयणे अ जणे य समो, समो अ माणावमाणेसु ॥६॥
से तं नोआगमओ भावसामाइए, से तं भावसा-
माइए, से तं सामाइए, से तं नामनिप्फण्णे ।

पदार्थ (से किं तं नामनिप्फण्णे ?) नामनिष्पन्न निक्षेप किसे कहते हैं ? (नामनि-प्फण्णे) पूर्व कथित जो अक्षीणाद्यध्ययन के नाम से विशेषतया निष्पन्न हुए हों उस को नामनिष्पन्न निक्षेप कहते हैं, जैसे कि (सामाइए,) सामायिक, (से) वह (समासओ) संक्षेप से (चउव्विहे पण्णत्ते,) चार प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(णामसामाइए) नाम सामायिक (ठवणासामाइए) स्थापना सामायिक (दव्वसामाइए) द्रव्य सामायिक और (भावसामाइए ।) भावसामायिक । (णामठवणाओ) नाम और स्थापना (पुव्वं भणिआओ ।) पूर्व वर्णन की गई है । (दव्वसामाइएवि) द्रव्य सामायिक भी (तहेव ।) उसी प्रकार जानना चाहिये । (जाव) यावत् (से तं भविअ-सरीरदव्वसामाइए ।) यही भव्य शरीर द्रव्य सामायिक है ।

(से किं तं जाणगसरीर भविय० ?) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य सामा-यिक किसे कहते हैं ? (जाणय०) ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक उसे कहते हैं (पत्तयपोत्थयलिहियं,) जो पत्र अथवा पुस्तक रूप लिखा हुआ हो, (से तं जा-णयसरीर०) यही ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक है, (से तं णोआगमओ दव्व०) यही नोआगम से द्रव्य सामायिक है, (से तं दव्वसामाइए ।) और यही द्रव्य सामायिक है ।

(से किं तं भावसामाइए ?) भाव सामायिक किसे कहते हैं ? (भावसामाइए) जो आत्मिक सामायिक हो उसे भाव सामायिक कहते हैं, (दुविहे पएणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपान की गई है, (तं जहा-) जैसे कि—(आगमओ अ) आगम से और (नोआगमओ य।) नोआगम से।

(से किं तं आगमओ भावसामाइए ?) आगम से भाव सामायिक किसे कहते हैं ? (आगमओ भावसामाइए) आगम से भाव सामायिक उसे कहते हैं जो सामायिक का शब्दार्थ (जाणए उवउत्ते,) उपयोग पूर्वक जानता हो, (से तं आगमओ भावसामाइए ।) यही आगम से भाव सामायिक है।

(से किं तं नोआगमओ भावसामाइए ?) नोआगम से भाव सामायिक किसे कहते हैं ? (नोआगमओ भावसामाइए) नोआगम से भाव सामायिक निम्न प्रकार जानना चाहिये। (जस्स) जिसकी (* सामाणिओ अप्पा) आत्मा सब प्रकार के व्यापार से निवृत्त होकर (संजमे) मूल गुण रूप संयम में (णियमे) उत्तर गुण रूप नियम में और (तवे) अनशनादिक तप में हो, (तस्स) उसकी (†सामाइयं) सामायिक (होइ) होती है, (इइ) इस प्रकार (केवलिभासियं ॥१॥) केवलि भगवान् ने कहा है।

(जो समो सव्वभूएसु) जिसका सब जीवों में सम—मैत्री भाव है, (तसेसु थावरेसु य।) त्रस और स्थावरों में। (तस्स) उसकी (सामाइयं) सामायिक (होइ) होती है (इइ केवलिभासियं ॥२॥) इस प्रकार केवलि भगवान् ने कहा है।

(जह) जैसे (मम) मुझको (ण पिअं दुक्खं) दुःख प्रिय नहीं है (जाणिअ एमेव) इस प्रकार जान कर (सव्वजीवाणं।) सब जीवों का, (न हणइ) न मारता है (न हणावेइ य) न मरवाता है (सम मणइ) समान मानता है (तेण) इस कारण से (सो समणो ॥३॥) वह श्रमण साधु है।

---

* सामानिकः—सन्निहित आत्मा सर्वकालं व्यापारात्।

† जीवेषु च समत्वं संयमसान्निध्यप्रतिपादनात् पूर्वश्लोकेऽपि लभ्यते, किन्तु जीवदयामूलत्वाद्धर्मस्य तत्प्राधान्यख्यापनाय पृथगुपादानमिति।

चशब्दात् घ्नतश्चान्यान्न समनुजानीत—च शब्द से हिंसा करते हुए को अच्छा न समझे। तदेवं सर्वजीवेषु समत्वेन सममणतीति 'समण' इत्येकः पर्यायो दर्शित, एवं समो मनोऽस्येति समना इत्यन्योऽपि पर्यायो भवत्येवेति दर्शयन्नाह।

अर्थात् समभावपन से जो सब जीवों को समान मानता है, वही 'श्रमण' है, यह भी एक व्युत्पत्ति उक्त शब्द की होती है, इसी प्रकार जिसका मन समान है, वही 'श्रमण' है, यह भी इस

(णत्थि य से कोइ वेसो) किसी के साथ उसका द्वेष नहीं है (पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु ।) और सब जीवों के साथ प्रेम है। (एएण) इस कारण (होइ समणो) श्रमण होता है (एसो) यह (अण्णोऽवि पज्जाओ ॥ ४ ॥) भी दूसरा पर्याय है ॥ ४ ॥ अब अन्य प्रकार से साधु की उपमा घटाते हैं।

*(उरग) सर्पके समान (गिरि) पर्वत के समान (जलण) अग्नि के समान (सागर) समुद्र के समान (नहतल) आकाश के तुल्य (तरुगणसमो अ जो होइ।) वृक्षों के समूह के समान जो हो। और (भमर) भ्रमर समान (मिय) मृग समान (धरणि) पृथिवी समान (जलरुह) कमल समान (रवि) सूर्य समान (पवणसमो अ) और पवन के समान हो (सो) वही (समणो ॥ ५ ॥) श्रमण है ॥ ५ ॥ इस लिये 'श्रमण वही हो सकता है जिसका शोभन मत है'। इसी का आगे वर्णन किया जाता है—

(तो समणो) इस लिये वही श्रमण है (जइ सुमणो) यदि शुभ मन हो (भावेण य) और भाव से (जइ) अगर (न होइ पावमणो।) पाप मन वाला न हो, (सयणे य जणे य समो) स्वजन और सामान्य मनुष्यों में समान (समो अ माणावमाणेसु॥६॥) मान और

---

* अहि के समान—जैसे सर्प स्वयं घर नहीं बनाता लेकिन दूसरों के किये हुए बिल में रहता है, इसी प्रकार साधु भी एक जगह नहीं ठहरते क्यों कि उनके घर तो है ही नहीं, इसी लिये उन्हें उरग – सर्प की उपमा दी गई है।

समशब्दः सर्वत्र योज्यते।—सम शब्द का सब जगह सम्बन्ध जानना चाहिये।

पर्वत के समान—परीषहों को सहन करने में पर्वत के समान अकम्प।

अग्नि के समान—जैसे अग्नि तृण काष्ठ आदि से तृप्त नहीं होती, इसी प्रकार साधु भी सूत्रार्थ से तृप्त नहीं होते।

सागर के समान—जैसे समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार साधुभी ज्ञानादि रत्नयुक्त होने से अपनी मर्यादा उल्लंघन नहीं करते अर्थात् गम्भीर रहते हैं।

आकाश के समान—जैसे कि आकाश का तलिया सब जगह से आलम्बन रहित है, इसी प्रकार साधु होते हैं अर्थात् वे कोई आश्रय नहीं लेते।

वृक्षों के समूह समान—जैसे वृक्षों के सुख दुःख का विकार नहीं दीखता, इसी प्रकार साधु भी सुख दुःख में विकारवान् नहीं होते।

भ्रमर—अनियत वृत्ति होने से। मृग—संसार के भय से उद्विग्न। पृथिवी—सब खेद सहन करने से। कमल—जल में रहता हुआ भिन्न है, इसी प्रकार साधु विषय रूपी कीचड़ में लिप्त नहीं होते। सूर्य—धर्मास्तिकायादिलोकमधिकृत्याविशेषेण प्रकाशकत्वात्; पवन—अप्रतिबद्धविहारी होने से।

अपमान में समान हो, (से तं नोआगमओ भावसामाइए,) यही * नोआगम से भाव-सामायिक है, (से तं भावसामाइए ।) यही भाव सामायिक है (से तं सामाइए ।) यही सामायिक है । (से तं नामनिप्फन्ने ।) यही नामनिष्पन्न निक्षेप है ।

भावार्थ-जिस वस्तु का नाम रूप निष्पन्न हुआ हो उसे नामनिष्पन्न निक्षेप कहते हैं, जैसे कि सामायिक । इसके चार भेद हैं- नाम स्थापना द्रव्य और भाव । नाम स्थापना और द्रव्य सामायिक पूर्ववत् जानना चाहिये । ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक उसे कहते हैं जो पत्र अथवा पुस्तक रूप लिखी हुई हो । इसी को नोआगम से द्रव्य सामायिक अथवा द्रव्य सामायिक कहते हैं ।

भाव सामायिक के दो भेद हैं,-आगम से और नोआगम से । जो सामायिक शब्द के अर्थ को उपयोग पूर्वक जानता है उसे आगम से भाव सामायिक कहते हैं । नो आगम से भाव सामायिक निम्न प्रकार जानना चाहिये । जैसे—

जिसकी आत्मा सब प्रकार के व्यापार से निवृत्त होकर मूलगुण रूप संयम, उत्तर गुण रूप नियम तथा अनशनादिक तप में लीन है, उसी की सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान् ने प्रतिपादन किया है ॥ १ ॥

जो त्रस और स्थावर आदि सब प्राणियों को अपने समान मानता है उसी की सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान् ने कथन किया है ॥ २ ॥

जैसे कि मुझे किसी जीव की हिंसा करने को, करवाने को अथवा करते हुए को अनुमोदन करने का दुःख प्रिय नहीं है, इस प्रकार सर्व जीवों को जान कर समान मानता है, इस कारण वह श्रमण है ॥ ३ ॥

किसी जीव के साथ द्वेष नहीं है बल्कि सभी के साथ प्रीति है, इससे भी वह श्रमण है । यहां दूसरा पर्याय रूप है ॥ ४ ॥

तथा जो सर्प, पहाड़, अग्नि, सागर, आकाश का तलिया, वृक्षों के समूह,

---

* "इह च ज्ञानक्रियारूपं सामायिकाध्ययनं नोआगमतो भावसामायिकं भवत्येव, ज्ञानक्रिया-समुदाये आगमस्यैकदेशवृत्तित्वात्, नोशब्दस्य च देशवचनत्वाद्, एवं च सति सामायिकवतः साधोरपीह नोआगमतो भावसामायिकत्वेनोपन्यासो न विरुध्यते, सामायिकतद्वतोरभेदोपचारादिति भावः"

अर्थात् यहां पर ज्ञान क्रिया रूप सामायिक अध्ययनको नोआगमसे भावसामायिक जानना चाहिये । क्योंकि ज्ञान और क्रियाऐं आगम की एक देश होने से भावसामायिक होती हैं । तथा-नोशब्द देशवाचक है । इसी प्रकार सामायिक करने वाला और साधु दोनों ही को नोआगम से

भंवर, मृग, पृथिवी, कमल, सूर्य, और पवन इत्यादि उपमाओं के समान होता है वही श्रमण है ॥ ५ ॥

इस कारण वही श्रमण है जिसका शुभ मन है और जो भाव से भी पाप नहीं करता, तथा जिसका स्वजन और सामान्य मनुष्य, तथा मान और अपमान में सम भाव हो ॥ ६ ॥

इसी को नोआगम से भाव सामायिक कहते हैं। और यही सामायिक है। यही नामनिष्पन्न निक्षेप है।

इसके बाद सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप इस प्रकार जानना चाहिये—

सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप।

से किं तं सुत्तालावगनिप्फण्णे? इआणिं सुत्तालावयनिप्फण्णं निक्खेवं इच्छावेइ से अ पत्तलक्खणोऽवि ण णिक्खिप्पइ, कम्हा? लाघवत्थं, अत्थि इओ तइए अणुओगदारे अणुगमेत्ति, तत्थ णिक्खित्ते इहं णिक्खित्ते भवइ, इहं वा णिक्खित्ते तत्थ णिक्खित्ते भवइ, तम्हा इहं ण णिक्खिप्पइ तहिं चेव निक्खिप्पइ, से तं निक्खेवे। (सू० १५४)

पदार्थ—(से किं तं सुत्तालावगनिप्फण्णे ?) सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप किसको कहते हैं ? (सुत्तालावगनिप्फण्णे) 'करेमि भंते सामाइयं' इत्यादि सूत्रालापकों के नाम स्थापनादि भेद भिन्न से जो न्यास है उसे सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप कहते हैं। (इआणिं) इस समय (सुत्तालावगनिप्फण्णं निक्खेवं) सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेपकी (इच्छावेइ) इच्छा उत्पन्न होती है, (से अ पत्तलक्खणोऽवि) उसका लक्षण प्राप्त होने पर भी (ण णिक्खिप्पइ,) निक्षेप * नहीं किया जाता है, (कम्हा ?) क्यों ? (लाघवत्थं) लाघवार्थ होने से (अत्थि इओ तइए) इसके आगे तृतीय (अणुओगदारे) अनुयोगद्वार (अणुगमेत्ति,) अनुगम है (तत्थ णिक्खित्ते) वहां निक्षेप करने से (इहं णिक्खित्ते भवइ,) यहां निक्षेप होता है, (इहं वा णिक्खित्ते) अथवा यहां पर निक्षेप करने से (तत्थ णिक्खित्ते भवइ,) वहां निक्षेप होता है, (तम्हा) इस कारण (इहं ण णिक्खिप्पइ) यहां पर निक्षेप नहीं

* सूत्रालापक निक्षेप के द्वारा वर्णन नहीं किया जाता।

किया जाता (तहिं चेव निक्खिप्पइ,) वहां † पर ही किया जायगा, (से तं निक्खेवे) यही निक्षेप है। (सू० १५२)

भावार्थ—'करेमि भंते ! सामाइयं' इत्यादि सूत्रालापकों का नाम स्थापनादि भेदभिन्न जो न्यास है उसे सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप कहते हैं। इस समय यहां पर इस निक्षेप के कहने की इच्छा होती है, लेकिन लक्षण प्राप्त होजाने पर भी नहीं कहा जाता, क्योंकि लाघवार्थ होने से। इस लिये तृतीय अनुयोग नामक अनुयोगद्वार में बर्णन किया जायगा। वहां पर निक्षेप करने से यहां पर निक्षेप होता है, अथवा यहां पर निक्षेप करने से वहां पर होता है। इस लिये यहां पर नहीं करते हुए वहां पर ही इसका निक्षेप किया जायगा। यहां पर निक्षेप नामक द्वितीय अनुयोगद्वार समाप्त होता है।

इसके बाद अब तृतीय अनुयोगद्वार इस प्रकार जानना चाहिये—

अनुगम।

से किं तं अणुगमे? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्ताणुगमे अ निज्जुत्तिअणुगमे अ।

से किं तं निज्जुत्तिअणुगमे ? तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे सुत्तप्फासिअनिज्जुत्तिअणुगमे।

से किं तं निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे ? अणुगए, से तं निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे।

से किं तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे ? इमाहिं दोहिं मूलगाहाहिं अणुगंतव्वो, तं जहा-

उद्देसे१ निद्देसे अ२ निग्गमे३ खेत्त४ काल५ पुरिसे य६।

---

† सूत्र का उच्चारण किये बिना सूत्रालापक नहीं हो सकता, इस लिये यहां पर सूत्र का उच्चारण न होने से वर्णन नहीं किया गया। सिर्फ निक्षेप का सामान्य भेद होने से नाम मात्र [illegible] किया गया है।

कारण७ पच्चय८ लक्खण९, नए१० समोआरणाणुमए११ ॥ १ ॥

किं१२ कइविहं१३ कस्स१४ कहिं१५, केसु१६ कहं१७ किच्चिरं हवइ कालं१८ ।

कइ१९ संतर२० मविरहियं२१ भवा२२ गरिस२३ फासण२४ निरुत्ती२५ ॥ २ ॥ से तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे ।

पदार्थ—(से किं तं अणुगमे ?) अनुगम किसे कहते हैं ? (अणुगमे) जो सूत्र के अनुकूल व्याख्या हो, अथवा जिसके द्वारा सूत्र की व्याख्या की जाती हो या गुरु वाचनादि देते हों उसे अनुगम कहते हैं, और वह (दुविहे पराणत्ते,) दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि – (सुत्ताणुगमे अ) सूत्रानुगम, जो सूत्र का व्याख्यान रूप हो और (निज्जुत्तिअणुगमे अ ।) निर्युक्त्यनुगम ।

(से किं तं निज्जुत्तिअणुगमे ?) निर्युक्त्यनुगम किसे कहते हैं ? (निज्जुत्तिअणुगमे) जिस निर्युक्ति की व्याख्या की जाय उसे * निर्युक्त्यनुगम कहते हैं, और वह (तिविहे पराणत्ते,) तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, (तं जहा-) जैसे कि—(निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे) निक्षेप निर्युक्त्यनुगम (उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे) उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम, और († सुत्तप्फासिअनिज्जुत्तिअणुगमे ।) सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम ।

(से किं तं निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे ?) निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम किसे कहते हैं ? (निक्खेवनिज्जुत्तिअणुगमे) निक्षेपादि द्वारा जिस निर्युक्ति की व्याख्या की जाय उसे

---

* निर्युक्त्यनुगमश्च—नितरां युक्ताः—सूत्रेण सह लोलीभावेन सम्बद्धा निर्युक्ता अर्थास्तेषां युक्तिः—स्फुटरूपतापादनम् । एकस्य युक्तशब्दस्य लोपान्निर्युक्तिः—नामस्थापनादिप्रकारैः सूत्रविभजनेत्यर्थः, तद्रूपोऽनुगमस्तस्य वा अनुगमो—व्याख्यानं निर्युक्त्यनुगमः ।

अर्थात् नामस्थापनादि से अत्यन्त ही सूत्र के साथ अर्थ का जो सम्बन्ध है उसकी व्याख्या करना या नामस्थापनादि द्वारा विस्तारपूर्वक विभागतया जो सूत्र के व्याख्यान की पद्धति हो, उसी को निर्युक्त्यनुगम कहते हैं ।

† अर्थात् जो निर्युक्ति सूत्र को स्पर्श करती हो उसे सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम कहते हैं । सूत्रं स्पृशन्तीति सूत्रस्पर्शिका सा चासौ निर्युक्तिश्च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिः ।

निक्षेप निर्युक्त्यनुगम * कहते हैं। (अणुगए) पूर्ववत् जानना चाहिये। (से तं निक्खेव निज्जुत्तिअणुगमे।) यही निक्षेप निर्युक्त्यनुगम है।

(से किं तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे?) उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम किसे कहते हैं? (उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे) व्याख्या किये हुए सूत्र की व्याख्या विधि को समीप करना उसे उपोद्घात कहते हैं उसी की निर्युक्ति का व्याख्यान करना उसे उपोद्घात † निर्युक्ति कहते हैं। इसका स्वरूप (इमाहिं) इन (दोहिं मूलगाहाहिं) दो मूलगाथाओं से (अणुगंतव्वो,) जानना चाहिये, (तं जहा-) जैसे कि—

(उद्देसे१ निद्देसे अ२, निग्गमे३ खेत्त४ काल५ पुरिसे य६।
कारण७ पच्चयो८ लक्खण ९, नए१० समोआरणाणुमए११ ॥ १ ॥
किं१२ कइविहं१३ कस्स१४ कहिं१५, केसु१६ कहं१७ किच्चिरं हवइ कालं१८।
कइ१९ संतर२० मविरहियं२१, भवा२२ गरिस२३ फासण२४ निरुत्ती२५॥२॥)

उद्देश १, निर्देश २, निर्गम ३, क्षेत्र ४, काल ५, पुरुष ६, कारण ७, प्रत्ययन ८, लक्षण ९, नय १०, समवतार में अनुमत होना ११, ॥ १ ॥

किसको १२, कितने प्रकार को १६, किसकी १३, कहाँ पर १५, किस में १७, किस प्रकार १७, कितने समय तक काल होता है १८, कितनो १९, अन्तर सहितपना २०, अविरहपन २१, भव २२, आकर्ष २३, स्पर्शना २४, और निरुक्ति २५, ॥ २ ॥
(से तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे।) यही उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम है।

भावार्थ—जो व्यवस्था सूत्र के अनुकूल होती है, उसे अनुगम कहते हैं। उसके दो भेद हैं, जैसे कि—सूत्रानुगम और निर्युक्त्यनुगम। जिस सूत्र के साथ अर्थ को अत्यन्त निकालना हो पश्चात् उसकी व्याख्या की जाय उसे निर्युक्त्यनुगम कहते हैं। वह तीन प्रकार का है, जैसे कि—निक्षेप निर्युक्त्यनुगम १, उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम २ और सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम ३। निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम पूर्व में प्रतिपादन किया गया है, और उपोद्घात निर्युक्त्यनुगम उसे कहते हैं जो सूत्र से पूर्व अध्याय फिर उद्देश फिर सूत्र की व्याख्या की जाय जिससे कि

---

* अत्रैव प्रागावश्यकसामायिकादिपदानां नामस्थापनादिनिक्षेपद्वारेण यद्व्याख्यानं कृतं तेन निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगतः—प्रोक्तो द्रष्टव्यः।

अर्थात् पूर्व आवश्यक और सामायिकपदों की नामस्थापनादि निक्षेप द्वारा जो व्याख्या की गई है उसे ही निक्षेप निर्युक्त्यनुगम जानना चाहिये।

† उपोद्घननं—व्याख्येयस्य सूत्रस्य व्याख्याविधिसमीपीकरणमुपोद्घातस्तस्य तद्विषया वा निर्युक्तिस्तद्रूपस्तस्य वा अनुगमः उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः।

सूत्र का बोध सरल हो। उपोद्घात नियुक्त्यनुगम का स्वरूप यह है कि उसके २५ लक्षण हैं, जो प्रश्नोत्तर के रूप में नीचे दिये जाते हैं—

(१) उद्देश किसे कहते हैं ? जिसका उद्देश किया जाय अथवा जो सामान्य नाम रूप हो उसे उद्देश कहते हैं। जैसे कि—अध्ययन।

(२) निर्देश किस को कहते हैं ? जिसका निर्देश किया जाय अथवा जो विशेष अभिधान पूर्वक हो, जैसे कि सामायिक।

(३) निर्गम किसे कहते हैं ? जो वस्तु जहां से निकली हो उसे निर्गम कहते हैं, जैसे कि—आवश्यक से सामायिक निकली है।

(४) किस क्षेत्र से सामायिक की उत्पत्ति हुई है ? व्यवहार नय से समय क्षेत्र से।

(५) * किस काल में सामायिक की उत्पत्ति हुई है ?

(६) किस पुरुष से सामायिक शब्द निकला है ? सर्वज्ञ पुरुषों ने सामायिक का प्रतिपादन किया है, अथवा व्यवहार नय से भारत वर्ष की अपेक्षा श्रीऋषभदेव भगवान् ने सामायिक चारित्र प्रतिपादन किया है, लेकिन एवम्भूत नय से सामायिक चारित्र अनादि है।

(७) † किस कारण से गौतमादि गणधरों ने सामायिक को श्रवण किया है ? संयति भाव की सिद्धि के लिये।

(८) किस प्रत्यय से भगवान् ने इसका उपदेश दिया है ? और किस प्रत्यय से गणधरों ने इसका श्रवण किया है ? ÷ केवल ज्ञानसे भगवान् ने सामा-

---

* सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप का वर्णन आगे किया जायगा। आवश्यक सूत्र में कहा है—"वइसापसुद्धएकारसीए पुव्वण्हदेसकालम्मि। महसेणवणुज्जाणे अणंतर परंपरं सेसं" वैशाखशुक्लैकादश्यां पूर्वाण्हदेशकाले। महासेनवनोद्याने अनन्तरं परम्परं शेषम्।

अर्थात् अनन्तर, परम्पर और शेष, तीनों प्रकार की, वैशाख शुक्ल ग्यारस के दिन महासेन नामक बन के उद्यान—बगीचे में मध्यान्ह के समय की।

† "गोयमाई सामाइयं तु किं कारणं निसामिति।"—गौतमादयः सामायिकं तु किं कारणं निशाम्यन्ति।

÷ "केवलनाणित्ति अहं अरिहा सामाइयं परिकहेइ। तेसिंपि पच्चओ खलु सव्वन्नु तो निसामिंति ॥१॥"—केवलज्ञानीत्यहमर्हन् सामायिकं परिकथयति। तेषामपि प्रत्यया खलु सर्वज्ञस्ततो निशाम्यन्ति ॥ १ ॥

यिक चारित्र प्रतिपादन किया है और उसी प्रत्यय से भव्य जीवों ने श्रवण किया है।

(९) सामायिक का लक्षण क्या है? * श्रद्धा, विज्ञान, विरति और मिश्र लक्षण होते हैं।

(१०) नयों के मत से सामायिक कैसे होती है? व्यवहार नय से पाठ रूप सामायिक होती है, तीन शब्द नयों से जीवादि वस्तु का ज्ञान होना पाठ रूप सामायिक होती है।

(११) नयों में सामायिक का समवतार कैसे होता है? ÷ अनुपयुक्त सामायिक का समवतार नैगम नय और व्यवहार नय से अनेक द्रव्य रूप है, संग्रह और ऋजुसूत्र नयसे अनुपयुक्त जितने सामायिक के द्रव्य हों उनका एक ही द्रव्य मानते हैं। तीनों शब्द नयों से अनुपयुक्त रूप सामायिक कोई वस्तु नहीं है, लेकिन उपयोग रूप सामायिक तीनों नयों से वस्तु रूप है।

(१२) सामायिक क्या वस्तु है? † जीव का गुण है।

(१३) सामायिक कितने प्रकार से प्रतिपादन की गई है? तीन प्रकार से जैसेकि—

---

* सम्यक्त्व सामायिक का तत्त्वों पर श्रद्धा रखना, श्रुत सामायिक का जीवादिकों का परिज्ञान होना, चारित्र सामायिक का सावद्य विरति रूप और देशविरति सामायिक का विरत्य-विरति रूप है। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। जीवाजीवाश्रव०—तत्त्वार्थसूत्र अ० १, सू० २–३।

आगम में भी कहा है—'सद्दसण जाणणा खलु विरई मीसं च लक्खणं कहए'—श्रद्धानं ज्ञानं खलु विरतिर्मिश्रं च लक्षणं कथयति।

÷ "तवसंजमो अणुमओ, निग्गंथं पवयणं च ववहारो। सद्दुज्जुसुयाणं पुण निव्वाणं संजमो चेव॥ १"॥—तपः संयमोऽनुमतो नैर्ग्रन्थ्यं प्रवचनं च व्यवहारः। शब्दर्जुसूत्राणां पुनर्निर्वाणं संयमश्चैव। अर्थात् व्यवहार नय से तपः, संयम, निर्ग्रन्थ और प्रवचन रूप सामायिक होती है, लेकिन शब्द और ऋजुसूत्र नय के मत से संयम और मोक्ष रूप सामायिक होती है।

† 'जीवो गुणपडिवन्नो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामाइयं'—जीवो गुणप्रतिपन्नो नयस्य द्रव्यार्थिकस्य सामायिकम्। "सामाइयं च तिविहं सम्मत्तसुयं तहा चरित्तं च"—सामायिकं च त्रिविधं सम्यक्त्वं श्रुतं तथा चरित्रं च। 'जस्स सामाणिओ अप्पा'—यस्य सामानिकः (सन्निहित) आत्मा। "खेत्तदिसाकालगइभवियसण्णिउस्सासदिट्ठिमाहारे"—क्षेत्रदिकाजगतिभव्यसंज्ञ्युच्छ्वासदृष्टमाहारः।

जैसे कि-सम्यक्त्वसामायिक, श्रुतसामायिक और चारित्रसामायिक।

(१४) किस जीव को सामायिक होती है? जिसकी आत्मा सब प्रकार के व्यापार से निवृत्त हुई हो अर्थात् समभाव युक्त हो।

(१५) सामायिक कहां कहां होती है? क्षेत्र, दिशा, काल, गति, भव्य, संज्ञी, सम्यग्दृष्टि, श्वासोच्छ्वास और आहारक आदि अनेक हैं।

(१६) किस किस में सामायिक होती है? सब द्रव्यों में होती है, लेकिन श्रुत सामायिक सब द्रव्य और चारित्र सामायिक सब पर्यायों में नहीं होती, देशविरति में दोनों का ही निषेध किया गया है†।

(१७) किसको सामायिक हो सकती है? मानुष भव क्षेत्र, जाति, कुल, रूप, आरोग्य, आयु और बुद्धि, ये सामायिक के कारण हैं *।

(१८) कितने काल तक सामायिक रह सकती है? ६६ सागर पर्यन्त। लेकिन चारित्र सामायिक देश ऊन पूर्व क्रोड़ वर्ष तक होती है।

(१९) सामायिकधारी वर्तमान काल में एक साथ कितने होते हैं? सम्यक्त्व देशविरति सामायिक वाले पल्य के असंख्यातवें भाग होते हैं।

(२०) सामायिक का अन्तर काल कितना होता है? एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से अर्द्ध पुद्गल परावर्त्त देशोन अन्तर काल होता है।

(२१) बिना अन्तर कितने काल तक सामायिक ग्रहण करने वाले होते हैं? सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक वाले आवलिका के असंख्यातवें भाग में होती है। आठ समय तक चारित्र सामायिक वाले होते हैं, और जघन्य से दो समय तक ही होते हैं।

(२२) कितने भाव पर्यन्त सामायिक रह सकती है? पल्य के असंख्यात भाग मात्र में सम्यक्त्व देशविरति होती है। आठ भाव पर्यन्त चारित्र सामायिक होती है, और अनन्त काल तक श्रुत सामायिक होती है।

---

†"सव्वगयं सम्मत्तं, सुय चरित्ते न पज्जवा सव्वे। देसविरइं पडुच्चा दुण्हवि पडिसेहणं कुज्जा ॥१॥"—सर्वगतं सम्यक्त्वं श्रुते चारित्रे न पर्यवः सर्वे। देशविरतिं प्रतीत्य द्वयोरपि प्रतिषेधनं कुर्यात् ॥१॥

*"माणुस्स खेत्त जाई, कुल रूवारग आउयं बुद्धि।"—मानुष्यं क्षेत्रं जातिः, कुलं रूपमारोग्यमायुर्बुद्धिः।

(२३) सामायिक के आकर्ष एक भव में वा अनेक भवों में कितने होते हैं ? अर्थात् एक भव में वा अनेक भवों में सामायिक कितनी बार धारण की जाती हैं ? तीनों सामायिक का सहस्रपृथक्त्व और देशविरति वालों का शत पृथक्त्व एक भव के आकर्ष होते हैं । जघन्य दो वार, उत्कृष्ट पृथक्त्व सहस्रवार आकर्ष अनेक भवों की अपेक्षा से होते हैं ।

(२४) सामायिक वाला कितने क्षेत्र तक स्पर्श करता है ? सम्यक्त्व और चारित्र के साथ जीव उत्कृष्ट से सर्व लोक का स्पर्श करता है, जघन्य से लोक के सप्त, दश या पांच श्रुत और देशविरति सामायिक का असंख्येयक भाग को स्पर्श करता है ।

(२५) सामायिक की निरुक्ति क्या है ? जो निश्चित उक्ति—कथन होती है, वही निरुक्ति होती है । इस लिये सम्यग् दृष्टि, मोह से रहित, शुद्ध स्वभाव वाले, दर्शनबोधी, पाप से रहित इत्यादि सामायिक की निरुक्ति है, अर्थात् सामायिक का जो पूर्ण वर्णन है, वही सामायिक की निरुक्ति होती है ।

इस प्रकार संक्षेप से उपोद्घात निरुक्ति का वर्णन किया गया है। विस्तार पूर्वक आवश्यक निरुक्ति टीका से जानना चाहिये । इस प्रकार दो गाथाओं का संक्षेप अर्थ है। विस्तृत अर्थ अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये । उपोद्घात निर्युक्ति का सारांश इतना ही है कि—अध्ययन का सर्व सारांश प्रथम ही अवगत करना चाहिये । वह सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति पूर्वक होता है, इस लिये अब सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का स्वरूप जानना चाहिये । उस में यद्यपि पूर्व सूत्रानुगम प्रतिपादन कर पश्चात् सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति वर्णन की गई है, तथापि यहां पर निर्युक्ति के संघात होने से ही दिखलाई जाती है, इस लिये कोई दोषापत्ति नहीं है ।

सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति ।

से किं तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे ? सुत्तं उच्चारेअव्वं अक्खलिअं अमिलिअं अवच्चामेलिअं पडिपुण्णं पडिपुण्णघोसं कंठोट्ठविप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं, तओ तत्थ णज्जिहिति ससमयपयं वा परसमयपयं वा बंधपयं वा मोक्खपयं वा सामाइयपयं वा णोसामाइयपयं वा, तओ

हिगारा अहिगया भवंति, केइ अत्थाहिगारा अणहिगया भवंति, ततो तेसिं अणाहिगयाणं अहिगमणट्ठयाए पदं पदेणं वन्नइस्सामि ।

संहिया य पदं चेव, पयत्थो पयविग्गहो ।

चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥१॥

से तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे, से तं निज्जुत्तिअणुगमे, से तं अणुगमे [सू० १५५]

पदार्थ—(से किं तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे ?) सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम किसे कहते हैं ? (सुत्तप्फासिअनिज्जुत्तिअणुगमे) जो निर्युक्ति व्याख्यान रूप सूत्र को स्पर्श करती हो उसे सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम कहते हैं, जैसे कि—(सुत्तं उच्चारेयव्वं) सूत्र का उच्चारण करना चाहिये (अक्खलियं) अस्खलित (अमिलियं) परस्पर मिले हुए वर्ण न हों (अवच्चामेलिअं) समाप्त सम्बन्धी सूत्रों के पाठ सहित हों (पडिपुण्णं) प्रतिपूर्ण हो (पडिपुण्णघोसं) प्रतिपूर्ण घोष हो (कंठोट्ठविप्पमुक्कं) कंठ और ओष्ठ से अलग हो (गुरुवायणोवगयं) गुरु की वाचना से उपगत—प्राप्त हुआ हो (तओ तत्थ) तत्पश्चात् (णज्जिहिति) जाना जायगा कि यह (ससमयपयं वा) जीवादि पदार्थों का प्रतिपादक रूप स्वसमय का पद है, अथवा (परसमयपयं वा) ईश्वरादि का प्रतिपादन किया हुआ परसमय पद है, या (बंधपयं वा) पर समय का पद मिथ्यात्व रूप होने से बंध पद है,‡ या (मोक्खपयं वा) मोक्षपद अर्थात् सद्बोध का कारण कर्म क्षय के करने वाला मोक्ष पद है, या (सामाइयपयं वा) सामायिक का प्रतिपादन करने वाला सामायिक पद है अथवा (णोसामाइयपयं वा) सामायिक से व्यतिरिक्त नारक तिर्यगादि का बोधक नोसामायिक पद है अथवा (तओ तम्मि) तत्पश्चात् सूत्र के (उच्चारिए समाणे) उसके समान उच्चारण होने से (केसिं च णं भगवंताणं) कितनेक भगवन्तों के—साधुओं के (केइ अत्थाहिगारा) कितनेक अधिकार (अहिगया) पूरे जाने हुए (भवंति) होते हैं और (केइ) केचिद् (अत्थाहिगारा) अर्थाधिकार (अणहिगया) नहीं जाने हुए (भवंति) होते हैं, (तओ तेसिं अणहिगयाणं) तत्पश्चात

‡अन्ये तु व्यचक्षते—प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशलक्षणभेदभिन्नस्य बन्धस्य प्रतिपादकं पदं बन्धपदम् ।

उन नहीं जाने हुए को (अहिगमणट्ठाए) जानने के लिये (पदं पदेणं) पद पद से (वन्नइस्सामि) वर्णन—व्याख्या करूँगा अर्थात् पद २ की व्याख्या करूंगा।

(* संहिया य) जैसे संहिता—अस्खलितपदों का उच्चारण करना यथा "करोमि भयान्त सामायिकम्" (पदं चेव) और पद से जैसे 'करोमि' द्वितीय पद है। सामायिकम् तृतीय पद है, तृतीय भेद में (पयत्थो) पदार्थ पदों का भिन्न २ अर्थ करना, (पयविग्गहो) पद विग्रह अर्थात् पदों का समास करना—जो समासान्त पद हों उन्हें समासान्त ही कहना चाहिये (चालणा य) और चालना-सूत्र के अर्थ जानने की इच्छा से युक्ति का प्रकाश करना उसे चालना कहते हैं, (पसिद्धी य) और प्रसिद्धि—प्रथम सूत्र अर्थ में शंका दिखलाकर फिर पंचावयव उस शंका का समाधान करना उसे प्रसिद्धि प्रत्यवस्थान कहते हैं, इस लिये (छव्विहं लक्खणं विद्धि) षट् प्रकार के लक्षण जानना, इस प्रकार सूत्र की व्याख्या करने से सूत्रानुगम की पूर्त्ति हो जाती है, (से तं सुत्तप्फासिय-निज्जुत्तिअणुगमे ।) यही पूर्वोक्त सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम है, और (से तं निज्जुत्तिअणुगमे) यही निर्युक्त्यनुगम, है, (से तं अणुगमे।) तथा यही अनुगम की व्याख्या है।

भावार्थ—सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति अनुगम उसे कहते हैं जो सूत्र अस्खलित अमिलित अन्य सूत्रों के पाठों से अनलंकृत, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कंठ और ओष्ठों से विप्रमुक्त और गुरु के मुख से ग्रहण किया हुआ—उच्चारण किया गया हो। क्यों कि—

अप्पग्गंथमहत्थं, बत्तीसादोसविरहियं जं च।
लक्खणजुत्तं सुत्तं, अट्ठहि य गुणेहि उववेयं ॥१॥

अर्थात् जो अल्प ग्रन्थ और महार्थ युक्त (समाहार द्वन्द्व करने से इस शब्द की सिद्धि होती है, जैसे कि–उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् इत्यादि सूत्र में) हो, ३२ दोषों से रहित हो, आठ गुण सहित और लक्षण युक्त हो, वह सूत्र है, जैसे कि—

अलियमुवघायजणयं, निरत्थयमवत्थयं छलं दुहिलं।
निस्सारमहियमूणं, पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं ॥१॥

---

* हितते वा। शा०। अ० २। पा० २। सू० ७१। समः हित्तततयोरुपरपदयोर्लुम्वा [illegible] नित्यं लक व्यवस्थितविभाषा-

कमभिन्नवयणभिन्नं, विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च ।
अणभिहियमपयमेव य, सहावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥
कालजतिच्छविदोसो, समयविरुद्धं च वयणमित्तं च ।
अत्थावत्ती दोसो, नेओ असमासदोसो य ॥ ३ ॥
उवमारूवगदोसो, निद्देसपयत्थसंधिदोसो य ।
एए अ सुत्तदोसा, बत्तीसा हुंति नायव्वा ॥ ४ ॥

१ अनृतदोष—असत्य दो प्रकार से होता है, प्रथम अविद्यमान पदार्थों का प्रादुर्भाव, जैसे—जगत् का कर्त्ता ईश्वर है, द्वितीय विद्यमान पदार्थों का अभाव सिद्ध करना, जैसे—आत्मा पदार्थ नहीं है ।

२ उपघातजनक—जीवों का नाश करना, जैसे—वेद में वर्णन की हुई हिंसा धर्म रूप है, अर्थात् वेदवाक्यवत् ।

३ निरर्थकवचन—जिन अक्षरों का अनुक्रम पूर्वक उच्चारण तो मालूम होता है, लेकिन अर्थ सिद्ध कुछ भी नहीं होता, जैसे अआ इई उऊ ऋॠ लृॡ इत्यादि । अथवा डित्थ.वित्थादि असंबद्ध—सम्बन्धरहित निरर्थक वचन दोष होता है, जैसे कि—दश दाडिम, छह अपूप, कुण्ड में बकरा ।

४ अनवस्थादोष जिन कथन में अनवस्था दोष की प्राप्ति हो तथा किसी प्रकार की भी जिसमें युक्ति काम न करे, जैसे कि—भाइयव्वो पएसो ।

५ छलदोष—जिस में अनिच्छा अर्थ की सिद्धि हो जाय, तथा किये हुए अर्थ को आघात पहुँचे, विवक्षितार्थ का उपघात हो जाय, उस स्थल को छल दोष कहते हैं, जैसे कि—प्राणियों का कल्याण न होने की इच्छा से पापव्यापार-पोषक रूप उपदेश करना जैसे नवकम्बलो देवदत्तः ।

६ द्रुहिलक—जिस स्थान पर अतीव वर्णों का संग्रह हो, और वे पापों के पोषक हों, जैसे कि—

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥
पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।
न हि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥ २ ॥

अर्थात् जितना आंखों से दिखाई देता है उतना ही लोक है, इसलिये [illegible] अल्पज्ञानी कहते हैं ।

२६ अर्थापत्ति

की प्राप्ति हो जाय य

अर्थात् घर का मुर्गा

क्योंकि—शेषघाताऽद

होता है। अन्य स्थान

२७ असमास

स्थान पर उस सम

होता है।

२८ उपमा

उपमा—सर्षपो मेरु

मेरुः समुद्रोपमः। य

२६ रूपक

करना, जैसे कि —

का निरूपण करन

३० निर्दे

एक वाक्य न कर

पचति शब्दं ना

लेकिन वहां पर

३१ पद

दोष होता है।

सा च वैशेषिकै

वस्तूनामनन्त प

भाव सिद्ध हो

है। अतः उन

३२ स

करना, अथव

गच्छति-भर

लोचन वाली खाओ पीओ क्योंकि यह श्रेष्ठ शरीर नहीं है। हे डरपोक ! गया हुआ शरीर फिर न आयगा यह रूप है।

वचन-युक्ति रहित होने से निस्सारवचन दोष होता है।

तथा मिथ्या वचन।

वचन--जिसमें पदादिकों की मात्राऐं अधिक हों। जैसे कि-कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवत्। इस स्थान पर दो हेतु और दृष्टान्त दिये गये हैं। इस लिये अधिक दोष ना में एक ही हेतु और एक ही दृष्टान्त होना चाहिये। से अधिक हैं।

—जिसमें पदों के अक्षरों की मात्राऐं न्यून हों उसे हीनवचन तु में हेतु या दृष्टान्त की न्यूनता हो उसे भी हीनवचन —अनित्यः शब्दः घटवत् तथा अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्।

दोष--पुनरुक्त दोष के दो भेद हैं। एक शब्द से, और द्वितीय वह है कि जो शब्द एकबार उच्चारण किया गया हो फिर उसीको से कि-घटो घटः। अर्थ से वह है. जैसे कि-घटः कुटः कुंभः। पुनरुक्त दोष में गर्भित है। जैसे कि—पीनो देवदत्तो दिवा न रात्रौ भुंक्त इति। इस स्थान पर आपन्नार्थ के लिये साक्षात् करना भी पुनरुक्त दोष है। पीन देवदत्त दिन में नहीं में खायगा।

त दोष—जिस स्थान पर पूर्व वचन से उत्तर वचन व्याख्यान अव्याहत दोष कहते हैं, जैसे कि--कर्म चास्ति फलं चास्ति स्वामित्यादि। कर्म और फल दोनों है, लेकिन कर्मों का कर्ता

ोष—जो वचन युक्ति से रहित हो, अथवा युक्ति को सहन से अयुक्तदोष कहते हैं, जैसे कि--तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनी।

दोष—जो अनुक्रमता पूर्वक न हो वह क्रमभिन्न दोष होता शेन रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामर्थाः स्पर्शरसगन्ध रूप शब्दा

१४ वचनभिन्न—जहां पर वचन विपरीत हैं वहाँ वचनभिन्न दोष होता है, जैसे वृक्षा ऋतौ पुष्पितः।

१५ विभक्तिभिन्न—विभक्ति का ठीक न होना, जैसे कि—'वृक्ष पश्य' या वृक्षः पश्य, ऐसा कहना विभक्तिभिन्न दोष होता है।

१६ लिंगभिन्न-लिंग के विपरीत होना, जैसे कि—'अयं स्त्री'

१७ अनभिहित दोष—स्वसिद्धान्त ने जो पदार्थ नहीं ग्रहण किये उन का उपदेश करना, जैसे कि—सप्तमः पदार्थो वैशेषकस्य, प्रकृतिपुरुषाभ्यधिकं सांख्यस्य, दुःखसमुदायमार्गनिरोधलक्षणचतुरार्यसत्यातिरिक्तं बुद्धस्य।

१८ अपददोष—अन्य छंद स्थान पर अन्य छंद उच्चारण करना वह अप-ददोष होता है, जैसे कि—आर्य्यापदे अभिधातव्ये वैतालीयं पदमभिदध्यात् है अर्थात् आर्या छन्द की एवज में वैतालीय पद कहना।

१९ स्वभावहीनदोष—जिस पदार्थ का जो स्वभाव है उससे विरुद्ध प्रति पादन करना, जैसे कि—शीतो वह्निः, मूर्त्तिमदाकाशम् अर्थात् अग्नि शीत है, आकाश मूर्त्तिमान् है, ये दोनों ही स्वभाव से हीन हैं।

२० व्यवहितदोष—जिसका आरम्भ किया हुआ है उसे छोड़ कर जिस का आरम्भ नहीं किया उसकी व्याख्या करके फिर प्रथम प्रारम्भ किए हुए की व्याख्या करना व्यवहितदोष हो जाता है।

२१ कालदोष भूतकाल के वचन को वर्त्तमान काल से उच्चारण करना। जैसे कि रामो वनं प्रविवेशेति वक्तव्ये, रामो वनं प्रविशति इत्यादि, अर्थात् रामचन्द्रजी ने वन में प्रवेश किया, ऐसा कहने के बदले रामचन्द्रजी वन में प्रवेश करते हैं।

२२ यतिदोष—बिना स्थान विरति करना।

२३ छविदोष—अलंकारों से शून्य ऐसे पदों का उच्चारण करना अर्थात् जो पद उच्चारण किये जायँ वे अलंकार पूर्वक होने चाहिये।

२४ समयविरुद्ध दोष—स्व सिद्धान्त से विरुद्ध प्रतिपादन करना, जैसे कि—सांख्यस्यासत्कारणे कार्यं वैशेषिकस्य वा सदिति।

२५ वचनमात्र दोष—निर्हेतुक वचन उच्चारण करना, जैसे कि - कश्चद्यथेच्छया कश्चित्प्रदेशं लोकमध्यतया जनेभ्यः प्ररूपयति, अर्थात् कोई पुरुष अपनी इच्छा पूर्वक किसी स्थान पर भूमि का मध्य भाग सिद्ध करे।

२६ अर्थापत्ति दोष—जिस स्थान पर अर्थापत्ति करने से अनिष्ट फल की प्राप्ति हो जाए वह अर्थापत्ति दोष होता है। जैसे कि गृहकुक्कटो न हन्तव्यः अर्थात् घर का मुर्गा न मारना चाहिये, इस कथन से अर्थापत्ति होती है। क्योंकि—शेषघातोऽदुष्ट इत्यापतति शेष को मारना चाहिये, ऐसा सिद्ध होता है। अन्य स्थान पर कुक्कुट का वध निर्दोष सिद्ध होता है।

२७ असमास दोष—जिस स्थान पर जिस समास की प्राप्ति हो उस स्थान पर उस समास को छोड़कर अन्य समास कर देवे तो असमासदोष होता है।

२८ उपमा दोष—हीन उपमा। जैसे कि मेरुः सर्षपोपमाः। अथवा अधिक उपमा—सर्षपो मेरुसन्निभः। अथवा अन्य विपरीत उपमा करना, जैसे कि—मेरुः समुद्रोपमः। यह उपमा दोष होता है।

२९ रूपक दोष—स्वरूप को छोड़कर उसके अवयवों का प्रतिपादन करना, जैसे कि—पर्वत के निरूपण को छोड़ कर शिखर आदि उसके अवयवों का निरूपण करना, या अन्य कोई समुद्र के अवयवों का निरूपण करना।

३० निर्देश दोष—जिस वचन का उच्चारण कर दिया है फिर उसका एक वाक्य न करना। जैसे कि—देवदत्तः स्थाल्यामोदनं पचति, इत्यभिधातव्ये पचति शब्दं नाभिधत्ते। देवदत्त स्थाली में चांवल पकाता है, ऐसा कहना लेकिन वहां पर पचति नहीं कहना।

३१ पदार्थ दोष—जिस वस्तु के पर्याय को एक पदार्थान्तर मानना पदार्थ-दोष होता है। जैसे कि "सतो भावः" सत्तेति कृत्वा वस्तुपर्याय एव सत्ता, सा च वैशेषिकैः षट्सु पदार्थेषु मध्ये पदार्थान्तरत्वेन कल्प्यन्ते, तच्चायुक्तम्। वस्तूनामनन्तपर्यायत्वेन पदार्थानन्त्यप्रसङ्गादिति। इस कथन से वस्तु का सत्ता भाव सिद्ध होता है, और वैशेषिक दर्शन ने षट् पदार्थ के अंतर्गत सत्ता मानी है। अतः उनका यह एकान्त कहना अयुक्त है।

३२ सन्धिदोष—जहां पर सन्धि होना चाहिये, वहां पर सन्धि नहीं करना, अथवा करना तो ग़लत करना, यह सन्धिदोष है। भरतो वन्दितु गच्छति-भरत बन्दन करने जाता है। ऐसा कहते हुए भरतः वन्दितुं कहना। इन बत्तीस दोषों से जो रहित है उसे ही लक्षण युक्त सूत्र कहते हैं, तथा आठ गुणों से जो युक्त है वही लक्षण युक्त सूत्र होता है, जैसे कि

"निद्दोसं १ सारवंतं च २, हेतुजुत्तम ३ लंकियं ४।
उवणीयं ५ सोवयारं च ६, मियं ७ महुरमेवय ॥ १ ॥"

अर्थात् सब दोषों से रहित १, सारवान् अर्थात् गोशब्द समान बहुत अर्थ युक्त २, अन्वय और व्यतिरेक हेतुओं से युक्त ३, उपमादि अलंकारों से विभूषित ४, उपनय से युक्त अर्थात् दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिकतया सिद्ध करना, उसे ही उपनीत कहते हैं ५, संस्कृतादि भाषाओं से युक्त और ग्रामीण भाषाओं से वर्जित, इसको सोपचार कहते हैं ६, अक्षरादि के प्रमाण से नियत ७ और जो सुनने में मनोहर हो, उसे मधुर वर्ण युक्त जानना चाहिये ८, जिस में पूर्वोक्त गुण होते हैं, उसे ही सूत्र कहते हैं।

तथा किसी २ आचार्य के मत से षट् गुण होते हैं, जैसे कि—

"अप्पक्खर १ मसंदिद्धं २, सारवं ३ विस्सओमुहं ४।
अत्थोभ ५ मणवज्जं च ६, सुत्तं सव्वएणुभासियं ॥ २ ॥"

अल्पाक्षर अर्थात् मिताक्षर हो, जैसे सामायिकसूत्र १, संदेहरहित हो क्यों कि सैन्धव शब्दवत् संदेहयुक्त न हो, सैन्धव शब्द लवण, वस्त्र, अश्वादि अनेक अर्थों में व्यवहृत है २, सारवत्—गौ शब्द के समान बहुत अर्थ वाला हो ३, प्रत्येक सूत्र चरणानुयोगादि चार अनुयोग द्वारा सिद्ध है तथा एक शब्द के अनन्त अर्थ होने से उसे विश्वमुख कहते हैं, यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि, श्लोके चत्वारोऽप्यनुयोगा व्याख्यायन्ते" जैसे–धम्मो० इस श्लोक से चारों ही अनुयोगों की व्याख्या होती है ४, चकार वकारादि निपातों से रहित ५ और अनवद्य वाक्य अर्थात् पापोपदेश से रहित हो ६, यह षट् गुण पूर्वोक्त आठ गुणों में समवतार हो जाते हैं। संग्रह नयसे आठ गुण षट् गुणों में समवतार हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध सूत्र का शुद्ध उच्चारण करने से मालूम होता है कि यह पद स्वसिद्धान्त जीवादि पदार्थ का बोधक है, और ईश्वरादि कृत परसमय का पद परसिद्धान्त का बोधक है। स्वसमय का बोधक पद मोक्ष पद होता है और परसमय का बोधक पद बन्ध पद कहा जाता है। कर्मबन्धन का कारण अथवा कुवासनादि हेतुओं से बन्ध पद, कर्म और सद्बोध का कारण होने से किये हुए का क्षय रूप कारण सो मोक्ष पद होता है। इसी प्रकार सामायिक का प्रतिपादक सामायिक पद होता है। सामायिक से व्यतिरिक्त अर्थों का बोधक नोसामायिक पद होता है। इस प्रकार सूत्र उच्चारण करने से ज्ञान की प्राप्ति सिद्ध की गई है। फिर जब सूत्रोच्चारण किया गया तब

कतिपय मुनियों को अर्थ अधिगत हो जाता है और कतिपय मुनियों को अर्थ अधिगत नहीं भी होता। जिन मुनियों को अर्थ अवगत नहीं हुआ, उनको अवगत कराने के लिये पद २ की संहिता करनी चाहिये। इसलिये अब व्याख्यान करने की विधि कहते हैं। प्रथम व्याख्या की संहिता करनी चाहिये, जैसे कि--अस्खलित पदों का उच्चारण करना, "करेमि भंते सामाइयं" फिर सूत्र के पदच्छेद करने चाहिये, जैसे कि—'करेमि" एक पद है, "भंते!" द्वितीय पद है, "सामाइयं" तृतीय पद है। भाष्यकार ने भी कहा है—

"होइ कयत्थो वोत्तुं, सपयच्छेयं सुयं सुयाणुगमो।
सुत्तालावगनासो, नामाइन्नासविणिओगं॥ १॥
सुत्तफासियनिज्जुत्तिविणियोगो सेसओ पयत्थाइ।
पायं सोच्चिय नेगमनयाइमयगोयरो होइ॥ २॥"

"सुत्तं सुत्ताणुगमो, सुत्तालावयकओ य निक्खेवो।
सुत्तफासियनिज्जुत्ती नया य समगं तु वच्चंति॥ १॥"

"भवति कृतार्थ उक्त्वा, सपदच्छेदं सूत्रं सूत्रानुगमः।
सूत्रालापकन्यासो, नामादिन्यासविनियोगम्॥ १॥
सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिविनियोगः शेषकः पदार्थादिः।
प्रायः स एव नैगमनयादिमतगोचरो भवति॥ २॥"

"सूत्रं सूत्रानुगमः, सूत्रालापककृतश्च निक्षेपः।
सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्नयाश्च समकं तु व्रजन्ति॥ १॥"

फिर पद का अर्थ करना चाहिये, जैसे कि—"करेमि" क्रियापद ग्रहण करने अर्थ में आता है, यथा-करता हूँ। "भंते" हे भगवन्! यह पद गुरु के आमंत्रण अर्थ में है। "सामाइयं" सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र का जिस से लाभ हो उस सामायिक को। इस प्रकार सर्व सूत्रों का पदार्थ करना चाहिये। पश्चात् जो समासान्त पद हों उनको पदविग्रह से समासान्त करके दिखलाना चाहिये, जैसे कि—भवस्य अंतो भवान्तः, जिनानाम् इन्द्रः जिनेन्द्रः, देवानां राजा देवराजः, जिनानाम् ईश्वरः जिनेश्वरः। अनेक पदों का एक पद कर देना उसे समास कहते हैं, पश्चात् प्रश्नोत्तर करके सूत्र की पुष्टि करना चाहिये। तदनन्तर प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमन के द्वारा सूत्र की युक्ति करनी चाहिये। तथा प्रत्यवस्थान के द्वारा प्रथम अन्य युक्ति देकर फिर सूत्रोक्त युक्ति को ही सिद्ध करना चाहिये। इस प्रकार संहिता, पदच्छेद, पदार्थ, पदविग्रह,

चालना और प्रसिद्धि के साथ सूत्र की व्याख्या करना चाहिये। इस में सूत्रोच्चारण और पदच्छेद करने से सूत्रानुगम का विषय सिद्ध होता है। फिर सूत्रोच्चार और पदच्छेद करे फिर सर्व पदों के निक्षेप करने से सूत्रालापक निक्षेप की सिद्धि होती है। शेष पदविग्रह, चालना और प्रसिद्धि यह सर्व सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति का विषय है। और आगे जो नय का विषय कहा जावेगा, वह भी चालना और प्रसिद्धि रूप ही है लेकिन सचमुच से तो सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति के अन्तर्गत सात नयों का रूप है। इस प्रकार सूत्र की व्याख्या करने से सूत्रानुगम अल्प काल में ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का विषय पूर्ण किया गया है। तात्पर्य यह है कि षट् विधि से सूत्राध्ययन करना चाहिये तब ही अर्थ साफल्य को प्राप्त होता है और पाठक के मन में किसी प्रकार का भी संदेह नहीं रहता। इस प्रकार तृतीय अनुयोग द्वार की व्याख्या की गई है। अब इसके अनन्तर नय रूप चतुर्थ अनुयोग द्वार के विषय में कहते हैं और इसमें विस्तार पूर्वक नयों का विवेचन किया जावेगा क्योंकि स्याद्वादमत अनेक नयात्मक है।

अथ चतुर्थ अनुयोगद्वार।

से किं तं णए? सत्त मूलणया पण्णत्ता, तं जहा—णेगमे १, संगहे २, ववहारे ३, उज्जुसुए ४, सद्दे ५, समभिरूढे ६, एवंभूए ७, तत्थ—

णेगेहिं माणेहिं मिणइत्ति णेगमस्स य निरुत्ती।
सेसाणंपि नयाणं, लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं॥१
संगहियपिंडिअत्थं, संगहवयणं समासओ बिंति।
वच्चइ विणिच्छिअत्थं, ववहारो सव्वदव्वेसुं॥२॥
पच्चुप्पन्नग्गाही, उज्जुसुओ णयविही मुणेअव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं, पच्चुप्पणं णओ सद्दो॥३॥
वत्थूओ संकमणं, होइ अवत्थूनए समभिरूढे।
वंजणअत्थतदुभयं, एवंभूओ विसेसेइ॥४॥

णायंमि गिरिहअव्वं अगिरिहअव्वंमि अत्थंमि ।
जइअव्वमेव इइ जो, उवएसो सो नओ नाम ॥५॥
सव्वेसिंपि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता ।
तं सव्वनयविसुद्धं, जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ ६ ॥
से तं नए। अणुओगद्दारा सम्मत्ता (सू० १५६)
सोलससयाणि चउरुत्तराणि होंति उ इमम्मि गाहाणं ।
दुसहस्समणुट्ठुभछंदवित्तप्पमाणओ भणिओ ॥१॥
णयरमहादारा इव उवक्कमदाराणुओगवरदारा ।
अक्खरबिंदुगमत्ता लिहिया दुक्खक्खयट्ठाए ॥२॥
गाहा १६०४, अनुष्टुप् ग्रन्थाग्रं २००५, अणुओगदारं सुत्तं समत्तं ॥

पदार्थ—(से किं तं णए ?) नय किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार से वर्णन किया गया है ? (णए)जो एक अंश लेकर वस्तुके स्वरूप का वर्णन करे उसे नय कहते हैं, और वह (सत्त मूलणया पण्णत्ता,) सात प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, अर्थात् मूल नय सात होते हैं (तं जहा) जैसे कि (णेगमे १) नैगम नय १ (संगहे २) संग्रह नय २ (ववहारे ३) व्यवहार नय ३ (उज्जुसुए ४) ऋजुसूत्र नय (सद्दे) शब्द नय ५ (समभिरूढे) समभिरूढ़ नय ६ और (एवंभूए) एवंभूत नय ।

अब नैगम नय का स्वरूप वर्णन किया जाता है, (णेगेहिं माणेहिं) जो अनेक मानों से (मिणइत्ति) वस्तु के स्वरूप को जानता है वा अनेक भावों से वस्तु का निर्णय करता है इस प्रकार से (नेगमस्स य) नैगमनय की (निरुत्ति) निरुक्ति व्युत्पत्ति है*

---

* णीञ् प्रापणे धातु से नय शब्द की उत्पत्ति है इसलिये जो वस्तु के स्वरूप को प्राप्त करे उसे ही नय कहते हैं ।

नि उपसर्ग पूर्वक गम्लृ गतौ धातु से नैगम शब्द की उत्पत्ति का पूर्व में पूर्ण विवेचन किया जा चुका है। जैसे कि–लोगे वसामि, इत्यादि, इसी को नैगम नय कहते हैं अथवा नैगम नय की यह भी निरुक्ति है कि न एकः नैकः । निपातनात् सिद्धम् ॥

विस्तारपूर्वक वर्णन आवश्यकनिर्युक्तिटीका से जानना चाहिये ।

तथा (सेसाणं पि) शेष संग्रहादि (नयाणं) नयों का (लक्खणं) लक्षण (इणमो) इस प्रकार (सुणह) श्रवण कर (वोच्छं ॥१॥) मैं तुम को सुनाऊंगा* ॥१॥

---

* नयों के मूल दो भेद हैं, जैसे कि द्रव्य नय और पर्याय नय। द्रव्य नय द्रव्य को और पर्याय नय पर्याय को स्वीकार करते हैं। प्रथम के तीन नय द्रव्य नय कहलाते हैं और शेष पर्याय नय माने जाते हैं। संग्रह नय सामान्य प्रकार से स्वरूप को मानता है। लौकिक में भी घट, कुंभ, पट, इन से भिन्न २ काम लिये जाते हैं तथा कूप चलता है, ग्राम आ गया, पर्वत जलता है इत्यादि क्रियाओं के देखने से सामान्य स्वरूप का अभाव हो विशेष स्वरूप की प्रतीति होती है। इसलिये व्यवहार नय विशेष स्वरूपतया सब द्रव्यों में विद्यमान रहता है।

ऋजुसूत्र नय के मत में भूतकाल विनाश हो चुका है और भविष्यत् अविद्यमान है, इसलिये यह वर्त्तमानकालग्राही है। ऋजु नाम है अकुटिलता—सरलता का और सूत्र नाम है गून्थने का। अतएव जो ऋजुभाव से गून्थे वही ऋजुसूत्र नय है। भिन्नलिङ्गैर्भिन्नवचनैश्च शब्दैरेकमपि वस्त्वभिधीयत इति प्रतिजानीते ऋजुसूत्रनयः। और इस नय के मत में लिंगभेद भी नहीं है।

शप आक्रोशे धातु से शब्द बनता है जिसका अर्थ है बोलना। जो शब्द को मुख्य देखता है वही शब्द नय है। शब्द्यते अभिधीयते वस्त्वनेनेति शब्दः—इस नय के मत में अर्थ गौणरूप होता है।

क्योंकि 'पुरंदर' शब्द का अर्थ अन्य है, और 'इन्द्र' शब्द का अर्थ अन्य है। एक में अर्थ वाले शब्द में अन्य अर्थ वाला शब्द यदि प्रविष्ट कर दिया जाय तो वह अवस्तु हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि-- जैसे नाममात्र घट शब्द का उच्चारण करने से घट का ज्ञान हो जाता है और उसी प्रकार उस का अर्थ भी प्राप्त हो जाता है, लेकिन घट चेष्टायां धातु से जो घट शब्द की उत्पत्ति हुई है, वह जब ही सफल होगी जब घट स्त्री के शिर पर चेष्टा रूप दृष्टिगोचर होगा। इसलिये इस नय के मत में जल से परिपूर्ण घट और स्त्री के मस्तक पर रक्खा हुआ ही घट 'घट' माना जाता है।

शाशपिभ्यां ददनौ उणादि। पा० ४ सू० ६७।

तमेव गणी भूतार्थमुख्यतया यो मन्यते स नयोऽप्युपचाराच्छब्दा। शो तनूकरणे। शप् आक्रोशे ॥ आभ्यां ददनौ।

शादः कर्दमशष्पयोः नडशादाड्ड्वलच्। पा० ४।२।८८। शाड्वल:। पकारस्य वकारः। शब्दो निनादः। शब्द वैरेति। पा० ४।१।१७। क्यङ्। शब्दायते शब्दं करोतीति शाब्दिको वैयाकरणः ॥

"सुयनाणे अ निउत्तं, केवलं तयणंतरं। अप्पणोय परेसिं च, जम्हा तं परिभावगं ॥१॥"

"श्रुतज्ञाने च नियुक्तं, केवलेशे तदनन्तरम्। आत्मनश्च परेषां च, यस्मात्तद् परिभावकम् ॥१॥"

(* संगहिय) सम्यग् प्रकार से जिसने ग्रहण किया है, (पिंडिअत्थं) पिंडितार्थ अर्थात् जिस नय से सामान्य प्रकार से एक जाति रूप अर्थ ग्रहण किया है (संगहवयणं) संगृहीत—पिंडितार्थ वचन (समासओ) संक्षेप से (बिंति) श्रीतीर्थंकरदेव संग्रह का वचन कहते हैं।

(विणिच्छियत्थं) दूर हो गया है सामान्य रूप जिस का अर्थात् सामान्य का अभाव जिस में (वचइ) वर्तता है, पृथक् २ स्वरूप के विषय उपयोग जिसका अर्थात् पृथक् २ वस्तु का स्वरूप माना जाता है जिस में उसी को व्यवहार नय कहते हैं और विशेष स्वरूप से (ववहारो) व्यवहार से विशेष स्वरूप देखा जाता है (सव्वदव्वेसु ॥२॥) सर्व द्रव्यों में ॥ २ ॥

(पच्चुप्पण्णगाही) वर्तमान काल को ही ग्रहण करने वाला (उज्जुसुओ) ऋजुसूत्र नय है, (णयविही) ऋजुसूत्र की नय विधि (मुणेयव्वो) जानना चाहिये।

यह ऋजुसूत्र नय (विसेसियतरं) विशेषतर है और (पच्चुप्पण्णं) वर्तमान काल को (इच्छइ) मानता है। (णओ सद्दो ॥ ३ ॥) वह शब्द नय है ॥ ३ ॥

---

* यह आपवादिक सूत्र है, "आसज्ज उ सोयारं नए नयविसार ओ बूया।" "आसाद्य तु श्रोतारं नयान् नयविशारदो ब्रूयात्।"

आगमेऽपि प्रोक्तम्—"पढमं नाणं तओ दया प्रथमं ज्ञानं ततो दया।" आगम में भी कहा है—प्रथम ज्ञान पश्चात् दया।

"जं अन्नाणी कम्मं खवेइ", जैसे कि अज्ञानी कितने ही काल के कर्म को क्षय करता है।

"अपावाओ विणियत्ती पवत्तणा तह य कुसलपक्खम्मि। विणयस्स य पडिवत्ती, तिन्निवि नाणे समाप्पंति ॥ १ ॥" "पापाद्विनिवृत्तिः प्रवर्त्तना तथा च कुशलपक्षे।। विनयस्य च प्रतिपत्तिः, त्रीण्यपि ज्ञानात् समाप्यन्ते ॥ १ ॥"

"गीयत्थो य विहारी, बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ।
इत्तो तइयविहारो, नाणुन्नाओ जिनवरेहिं ॥ १ ॥"
"गीतार्थश्च विहारी, द्वितीयो गीतार्थमिश्रितो भणितः।
एताभ्यां तृतीयो विहारो, नानुज्ञातो जिनवरैः ॥ १ ॥"

साधु दोनों मिल कर मोक्ष का साधन होते हैं, एक२ मोक्ष के साधन नहीं होते, भाव साधु वही है, जो दोनों के स्वरूप में स्थित है।

(वत्थूत्रो संकमणं होइ) वस्तु का इन्द्रादि में संक्रमण होता है, अर्थात् जिस नय के मत में शब्दानुकूल अर्थ होते हैं और जितने शब्द हों उतने ही अर्थ होते हैं, यदि इन्द्र शब्द को पुरन्दर कहा जाय तब जिस नय के मत में (अवत्थू) अवस्तु हो जाता है, (नए समभिरूढे) उसे स मिरूढ नय कहते हैं।

(वंजण) शब्द (अत्थ) शब्द की अभिधेय वस्तु (तदुभए , व्यंजन और अर्थ दोनों ही (एवंभूत्रो) चेष्टारूप को जो प्राप्त हो गया हो उसे एवम्भूत नय कहते हैं। (विसेसेइ ॥ ४ ॥) यही इस नय का विशेष है ॥ ४ ॥

अब ज्ञान क्रिया दोनों ही युगपत् मोक्ष का कारण हैं, इस विषय में कहते हैं—

(णायंमि) सम्यक् जानकर ही (गिरिहअव्वे) ग्रहण करने वाले अर्थ में (चेव) और (अगिरिहअव्वंमि) अग्रहणीय (*एव अत्थंमि) अर्थ में भी होता है सो इस लोक सम्बन्धी अर्थके विषय वा परलोक सम्बन्धी अर्थ के विषय (जइयव्वमेव) यत्न करना चाहिये (इइ जो) इस प्रकार जो सद्व्यवहार के ज्ञान का कारण (उवएसो) उपदेश है, (सो नत्रो नाम †॥५॥) वह प्रस्ताव से ज्ञान नय कहा जाता है।

अब इसी विषय में कहते हैं—

(सव्वेसिंपि) सो सभी (नयाणं) नयों के (बहुविहा वत्तव्वयं) नाना प्रकार की वक्तव्यताओं को (निसामित्ता) सुनकर (सव्वनयविसुद्ध) सब नयों में विशुद्ध (तं) वही है, (जं) जो (साहू) साधु (चरण) चारित्र और (गुणट्ठिओ) ज्ञान के विषय स्थित है

---

* एव शब्द अवधारण अर्थ में ग्रहण किया है।

† नाम शब्द शिष्य के आमन्त्रण अर्थ में ग्रहण किया गया है। सारांश केवल इतना ही है कि ज्ञानद्वारा उपादेय, हेय, ज्ञेय पदार्थों का बोध होता है, फिर तादृश यत्न किया जाता है, ऐसा जो उपदेश है उसी को ज्ञान नय कहते हैं। और क्रियावादी इस गाथा का अर्थ केवल क्रिया में ही करता है,जैसे कि—उपादेय पदार्थों को जानकर जो यत्न करता है वह गौण रूप है। इस प्रकार जो उपदेश करे वह क्रिया नय हो जाता है। तब कोई एक ही मोक्ष का कारण नहीं होता, लेकिन दोनों एकत्रित होकर मोक्ष का कारण हो जाते हैं। अपि शब्द समुच्चय अर्थ में है।

(से तं णए) यही नय का वर्णन है। और यहां (अणुओगदारा सम्मत्ता ।) अनुयोगद्वार का वर्णन भी पूर्ण हो गया।

भावार्थ—जो एक अंश लेकर वस्तु का स्वरूप प्रतिपादन करे उसे नय कहते हैं। इस के सात भेद हैं, जैसे कि-नैगमनय १, संग्रहनय २, व्यवहारनय ३, ऋजुसूत्रनय ४, शब्दनय ५, समभिरूढ़नय ६, और एवम्भूतनय ७। अब अनुक्रम पूर्वक सातों नयों का वर्णन किया जाता है—

जिस का नहीं है एक मान अर्थात् महासत्ता, उसे नैगम नय कहते हैं। तथा निगम शब्द से वसति का अर्थ ग्रहण करने से, जो पूर्व में "लोके वसामि" इत्यादि दृष्टान्त से नैगमनय का स्वरूप प्रतिपादन किया गया है, उसे भी नैगमनय कहते हैं, अथवा निगम नाम है,अर्थ के ज्ञान का अनेक प्रकार से जो अर्थ के ज्ञान को माने वा बहुत से गमा होने से भी इसे नैगमनय कहते हैं, और इस नय के मत में से सामान्य और विशेष रूप वस्तु दोनों ही भिन्न २ हैं,क्यों कि सभी वस्तुओं में विद्यमान भाव एक है,इसलिये इसे द्रव्यनय कहते हैं। इसीलिये सात नयों में से प्रथम के चार नय द्रव्यनय कहलाते हैं, क्यों कि ये द्रव्य को ही प्रधानता से मानते हैं। और शेष तीन नय पर्यायाश्रित होने से पर्याय नय कहलाते हैं। तथा यह नय भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल के पदार्थों को ग्रहण करता है। इस नय के मत में तीनों काल की अस्ति है। जैसे कि—भूत काल, भविष्यत काल और वर्त्तमान काल ।

जिस ने भली प्रकार एक जाति रूप अर्थ को ग्रहण किया है, उसी को संग्रह नय कहते हैं। कारण कि यह नय वस्तु का सामान्य ही मानता है, विशेष नहीं। इस का वचन संग्रह किये हुए का सामान्य अर्थ में ही होता है। इस लिये संग्रह कर पश्चात् सामान्य रूप से सब वस्तुओं को जो सिद्ध करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। रूप वस्तु से भिन्न है किम्वा अभिन्न है? यदि प्रथम पक्ष ग्रहण किया जाय तो सद्रूप सामान्य रूप से भिन्न असद्रूप सिद्ध होगा।

अतः असद्रूप खपुष्पवत् होता है। यदि द्वितीय पक्ष अभेद रूप स्वीकृत किया जाय तब सामान्य स्वरूप ही सिद्ध हो गया, क्यों कि—विशेष सामान्य स्वरूप से पृथक् नहीं है। इस लिये एक ही सिद्ध हुआ। इस प्रकार संग्रह नय के मत में केवल एक सामान्य स्वरूप ही माना जाता है।

सामान्य स्वरूप का अभाव सिद्ध करने वाला व्यवहार नय है, अर्थात् सर्वदा जिस का द्रव्यों में विशेष भाव हो। जैसे कि घटादि पदार्थ जलादि से भरे हुये अपनी २ क्रिया करते दिखाई देते हैं, लेकिन उस से अतिरिक्त सामान्य नहीं होता। इस लिये सामान्य स्वरूप को लोक व्यवहार भी अंगीकार नहीं करता। सामान्य स्वरूप से लौकिक व्यवहार की प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती। इस सर्व प्रकार से सामान्य स्वरूप सिद्ध नहीं होता है अतः लौकिक व्यवहार में प्रधान नय होने से भाव ही सिद्ध रूप है और इसे व्यवहार नय कहते हैं।

विशेष से सामान्य स्वरूप पृथक् भी नहीं है अथवा विशेषतया जिस का निश्चय किया जाता है उसे विनिश्चय कहते हैं।

"सुयनाणे अ निउत्त, केवले तयणंतरं।
अप्पणो य परेसिं च, जम्हा तं परिभावगं ॥१॥"

श्रुतज्ञाने च नियुक्तं, केवले तदनन्तरम्।
आत्मनश्च परेषां च, यस्मात्तत्परिभावकम् ॥१॥

एक ही वस्तु भिन्न २ लिंग और भिन्न २ वचन से कही जाती है, मानों इस नय का मत ही निराला है। कोई लिंग वचन का भेद ही नहीं होता। इस में यह शंका भी उत्पन्न होती है कि—

सामान्य स्वरूप विशेष स्वरूप से भिन्न है या अभिन्न?

यदि भिन्न माना जाय तब विशेष स्वरूप से सामान्य स्वरूप पृथक् दृष्टि गोचर होना चाहिये, लेकिन होता नहीं। इस लिये प्रथम पक्ष ग्राह्य हो जाता है! यदि द्वितीय अभिन्न पक्ष स्वीकार किया जाय तब विशेष स्वरूप की सिद्धि हो गई, क्योंकि विशेष स्वरूप से सामान्य स्वरूप पृथक् नहीं है, इस लिये एक ही रूप हुए। अतः व्यवहार नय का यह मन्तव्य सिद्ध हो गया कि जो वस्तु व्यवहार से ग्राह्य है उसी भाव को विद्यमान माना जाता है। जो भाव विद्यमान अयोग्य तो है लेकिन व्यवहार में उस का ग्रहण नहीं होता, वह उपकारक न होने से भाव व्यवहार में अमाननीय होने से अयोग्य है। जैसे परमाणुओं के समूहों से घट की उत्पत्ति है। घट का विचार कल्पनीय है, परन्तु परमाणुओं का विचार

अकल्पनीय है। क्यों कि उस में प्रमाण नहीं है और व्यवहार मुख्य होता है, जैसे घटादि पदार्थों में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श होते हैं। तथापि जिस वर्ण की अतीव मुख्यता होगी वही वर्ण व्यवहार में उपयोगी होता है। जैसे—नील घट, इत्यादि। यदि सामान्य स्वरूप ही माना जाय जैसे कि घट व्यवहार से अकल्पनीय होगा तो प्रकृति असत् हो जायगी। इस लिये व्यवहार से जो सिद्ध हो जाता है वही लोक व्यवहार होने से सब द्रव्यों में विद्यमान है।

ऋजुसूत्र नय के मत में वर्त्तमान काल ही ग्रहणीय है। जो तत्काल उत्पन्न हुआ हो उसे प्रत्युत्पन्न अर्थात् वर्त्तमान कहते हैं। भूत और भविष्यत्, ये दोनों काल वर्तमान ही सूचन करते हैं। और जो इस को ग्रहण करता है उसे प्रत्युत्पन्नग्राही कहते हैं। भूत और भविष्यत् वर्त्तमान काल में असद्रूप हैं, क्योंकि भूत काल हो चुका है और भविष्यत् उत्पन्न ही नहीं हुआ। इस लिये ये दोनों असत् हैं। इस नय को केवल श्रुतज्ञान ही उपादेय है। अथवा ऋजु याने सरलता अर्थात् जिस का सरल श्रुत हो उसे ऋजुश्रुत कहते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि जो वक्रता से रहित होकर वर्त्तमान काल को स्वीकार करे वही ऋजुसूत्र नय है इसमें विशेष इतना जानना चाहिये कि इस नय के मत में लिंग वचनादि अनेक भेद भिन्न रूप एक ही वस्तु मानी जाती है। इस से व्यतिरिक्त वस्तु अवस्तुरूप है। अतः भूत काल उत्पन्न वस्तु वर्त्तमान में अवस्तु है, वर्त्तमान काल में उस का विनाश है तथा भविष्यत्काल की वस्तु वर्त्तमान में अनुत्पन्न है, इस लिये वह भी अवस्तु ही है और परसम्बन्धी वस्तु स्वकार्य में साधक नहीं होने से अवस्तु है। अतः इस लिये वह भी आकाशपुष्पवत् है। तथा जो वर्त्तमान काल में वस्तु है वही सद्रूप है। यद्यपि लिंग भेद तो है, परन्तु वह अपने गुण को नहीं छोड़ती। इस नय के मत में नाम स्थापनादि द्रव्य इन्द्रादि वस्तु नहीं हैं क्यों कि भूतकाल का विनाश है और भविष्यत् काल अनुत्पन्न है, केवल वर्त्तमान काल में क्षण रूप है क्यों कि जो वस्तु शक्ति रूप नहीं होती वह अर्थ क्रिया भी नहीं कर सकती अतः जो अर्थ क्रिया करने में अशक्त है वह अवस्तु रूप है। जो वर्त्तमान में क्रिया करे वही वस्तु होती है। यदि अंश रहित वस्तु मानी जाय तब युक्ति से असंगत सिद्ध होती है क्यों कि एक स्वभाव रूप वस्तु का अनेक स्वभाव वाला हो जाना बिना देश प्रदेश के माने असिद्ध है। यदि ऐसे माना जाय कि वस्तु ही अनेक स्वभाव रूप है सो वह अयुक्त है, परस्पर विरोध होने के कारण से। जैसे कि

एक स्वभाव अनेक स्वभाव को त्याग कर स्वयं स्थित है और अपने स्वभाव में सर्व पदार्थ विद्यमान हैं। जैसे कि—परमाणु नित्य होने पर भी समूह रूप होकर घटादि कार्य बन जाते हैं परन्तु घटादि के होने पर भी परमाणु स्वभाव में स्थित रहते हैं। इस लिये वर्त्तमानकालग्राही ऋजुसूत्र नय है।

शब आक्रोशे धातु से 'शब्द' शब्द की उत्पत्ति होती है जिसका अर्थ है कि जो उच्चारण किया जाय उसे शब्द कहते हैं। इस नय में शब्द प्रधान और अर्थ गौड़ रूप माना जाता है। इस लिये यह नय ऋजुसूत्र नय से विशेषतर वर्त्तमानग्राही है। जैसे कि--ऋजुसूत्र के मत में लिंगभेद होने पर भी अभेद रूप शब्द माने जाते थे किन्तु इस नय के मन्तव्य में लिंगभेद के साथ ही अर्थभेद भी माना जाता है। जैसे कि--तटः--तटी—तटम्, गुरुः--गुरू--गुरुत्वः, पुरुषः--पुरुषौ--पुरुषाः इत्यादि। फिर इस नय में नाम स्थापना द्रव्यादि को भी वस्तु नहीं माना जाता क्योंकि वे कार्य करने में असमर्थ हैं। इस लिये भावप्रधान हैं। भाव से ही कार्यसिद्धि होती है। नाम, स्थापना, द्रव्य और अप्रमाण हैं। उनसे कार्य की सिद्धि नहीं है सो प्रसंगवशात् इन दोनों नयों के मत से चार निक्षेपों का किंचित् स्वरूप यहां लिखा जाता है।

सब वस्तुएं नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से युक्त हैं। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिस के चार निक्षेप न हो सकें। नाम नय का मन्तव्य है कि--जो वस्तु है वह सर्व नाम रूप है। बिना नाम कोई भी वस्तु नहीं है और नाम बिना वस्तु ग्रहण भी नहीं हो सकती इस लिये सर्व वस्तुएं नाम रूप हैं। जैसे कि--मृत्तिका से घट की उत्पत्ति है फिर वह घट मृत्तिका के ही नाम से बोला जाता है और नाम विना संशय हो जाता है इस लिये नाम रूप वस्तु का मानना ही ठीक है। स्थापना नय का मन्तव्य है कि सर्व वस्तु स्थापना रूप है। बिना आकार कोई भी वस्तु नहीं है। स्थापना में नाम रूप वस्तु नहीं होती। जो वस्तु है आकार रूप है और आकार के विना नाम होना ही असंभव है। इस लिये सर्व वस्तु स्थापना रूप है। द्रव्य नय का मन्तव्य है कि सर्व वस्तु द्रव्य रूप है। क्यों कि जैसे आकार बिना नाम नहीं हो सकता उसी प्रकार द्रव्य बिना स्थापना नहीं हो सकती। इस लिये स्थापना रूप वस्तु नहीं है किन्तु द्रव्य रूप वस्तु है। भाव नय का मन्तव्य है कि द्रव्य रूप वस्तु नहीं है, अपि तु भाव रूप वस्तु है क्यों कि सर्व प्रकार से विचार करने से अंतिम भाव की ही सिद्धि होती है किन्तु भूत भविष्यत् के भाव अप्रगट हैं इस लिये वर्त्तमान काल के ही भाव का ग्रहण करना चाहिये जो कि प्रगट हैं।

स प्रकार ऋजुसूत्र और शब्द इन दोनों नयों का मन्तव्य है। इन नयों
भाव निक्षेप ही माननीय है, अन्य नहीं। अन्य निक्षेप द्रव्य नयों को
हैं, पर्यायार्थिक नय तो भाव पर आरूढ हैं। परन्तु शब्द नय ऋजुसूत्र
तर वर्त्तमान काल में आरूढ है। जैसे कि-शब्द लिंग वचन से
रना शब्द नय को उपादेय है तथा इन्द्रः शक्रः पुरंदरः तथा घटः कुटः
दि। सो शब्द नय के मतमें शब्द प्रधान और अर्थ गौण रूप होता है।
मभिरूढ नय के मत में वस्तु स्वगुणमें प्रवेश करती है। यदि एक शब्द
शब्द एकत्व किया जाय तब वह अवस्तु रूप हो जाता है। जैसे कि—
शक्र कहना। यद्यपि ये दोनों पर्याय नाम हैं किन्तु अर्थभेद अवश्य है।
न्दतीति इन्द्रः, शक्नोतीति शक्रः, पुरं दारयतीति पुरंदरः इत्यादि। सो
के मत में शब्द भिन्न होने से अर्थ भिन्न अवश्य होता है नहीं तो शब्द
से अति प्रसंग दोष की प्राप्ति होगी। इस नय के मत से इन्द्र से
उतना ही भिन्न है जितना कि घट से पट और अश्व से हस्ति, इस
न्न २ शब्द के भिन्न २ अर्थ इस नय को स्वीकार हैं। तात्पर्य यह हुआ
वस्तु के अनेक नाम इस को सम्मत नहीं हैं क्यों कि समभिरूढ़ नय का
ी है कि नाम के भेद होने से वस्तु का भेद होता है। इस प्रकार सम-
नय का विवरण होने पर एवंभूत नय के विषय में कहते हैं—

एवंभूत के मत में व्यञ्जन और अर्थ के युगपत् होने से वस्तु के स्वरूप
कार किया जाता है। जैसे कि-व्यञ्जन नाम है शब्द का सो शब्दसे जो
अभिधेय अर्थ है उसको प्रगट किया जाय, उसे ही एवंभूतनय कहते
ा घट चेष्टायां धातु से घट शब्द की उत्पत्ति है। सो जब घट पूर्ण जल
हुआ स्त्री के मस्तक पर होता है तभी उसको घट कहा जाता है, अन्यत्र
इस लिये वस्तु का जिस समय पूर्ण गुण उस वस्तुमें प्राप्त हो उसी समय
नय के मत से उसको वस्तु माना जाता है।

यहां यदि ऐसे कहा जाय कि— भूत और भविष्यत् काल की चेष्टा को
र करके समुच्चय रूप में उसे घट क्यों नहीं माना जाता? इसका उत्तर
कि—भूतकाल की चेष्टा विनाशरूप है और भविष्यत् काल की चेष्टा
न है। इस लिये ये दोनों चेष्टाएं शश-शृंगवत् होने से अमाननीय हैं।
—यदि इस अपेक्षा से ही घट मानना है तब मृत्पिंड को भी घट संज्ञा
हो जायगी तथा प्रसंगवशात् अन्य पदार्थ भी घट संज्ञक होंगे। इस लिये

सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण भाव ही एवंभूत नय को उपादेय हैं क्योंकि एवं नाम है चेष्टादि का और भूत नाम है प्राप्त होने का। तब दोनों के मिलने से एवंभूत शब्द की सिद्धि हो गई है। इस प्रकार एवंभूत नय का मन्तव्य दिखलाया गया। सो सात ही नय साधारण रूप में एकान्त पक्षी होने से दुर्नय कहे जाते हैं। और अनेकान्त रूप होने से सुनय होते हैं। फिर सुनयों के मिलने से स्याद्वाद (जैन) मत बन जाता है अर्थात् सुनयों के समूह का नाम स्याद्वाद (जैन) मत है सो प्रसंगवशात् दुर्नय, नय, और प्रमाण का किंचित् विवरण दिखलाते हैं—

"सदेव सत्स्यात्सदिति त्रिधार्थो, मीयेत दुर्णीतिनयप्रमाणैः।
यथार्थदर्शी तु नयप्रमाणपथेन दुर्णीतिपथं त्वमास्त्व १॥"

अर्थात्—पदार्थों का निर्णय तीन प्रकार से होता है—दुर्नय, नय और प्रमाण से। सत् यह नपुन्सक लिंगीय शब्द दुर्नय का बोधक है और सत् शब्द ही सुनय का बोधक है। स्यात् सत् यह शब्द प्रमाण का वाचक है। एकान्त वस्तु का मानना दुर्नय है और अस्ति शब्द के साथ वस्तु स्वरूप का कथन करना सुनय का लक्षण है। स्यात् सत् शब्द से वस्तु का स्वरूप कथन करना प्रमाण का लक्षण है। जैसे कि-स्यात् अस्ति घटः, इत्यादि। क्योंकि इस प्रकार से किसी भी वस्तु के साथ विरोध भाव नहीं होता। इसी प्रकार सत्व स्वरूप, असत्व स्वरूप; नित्य स्वरूप, अनित्य स्वरूप; वक्तव्य, अवक्तव्य, वक्तावक्तव्य स्वरूप; सामान्य स्वरूप, विशेष स्वरूप इत्यादि अनेक धर्म दुर्नय, नय और प्रमाण से वर्णन किये जाते हैं। स्तुतिकार कहते हैं कि हे जिनेन्द्र! दुर्नयों के निराकरण में आप ही समर्थ हैं; अन्य कोई भी वादी दुर्नयों का मार्ग निराकरण नहीं कर सकते और हे प्रभो! नय और प्रमाण से आपने ही दुर्नयों के मार्ग को सुमार्ग बना दिया है। इस लिये हे नाथ! आप यथार्थदर्शी हैं, अन्य कोई भी वादी आप के समान ज्ञानयुक्त नहीं है। और जो नय को प्रमाण तुल्य वर्णन किया है वह अनुयोगद्वार की व्याख्या की सिद्धि के लिये ही है। क्योंकि अनुयोगद्वार के चार मुख्य द्वार हैं। जैसे कि - उपक्रम १, निक्षेप २, अनुगम ३ और नय ४।

अब दुर्नयों के बोध के वास्ते प्रथम नय का विवरण किया जाता है—

जो अनन्त धर्मात्मक वस्तु को एक अंश से वर्णन करे उसे ही नय कहते हैं। इस प्रकार अनन्त नय सिद्ध होते हैं। इस में वृद्धवाक्य की प्रमाणता

है। जैसे कि—"जावइया वयणपहो तावइया चेव हुंति नयवाया" यावन्मात्र वचन के मार्ग हैं तावन्मात्र ही नय वाक्य हैं तथापि मूल सूत्र में मूल सात ही नय वर्णन किये गये हैं। जैसेकि-नैगम १, संग्रह २, व्यवहार ३, ऋजुसूत्र ४, शब्द ६, समभिरूढ ६ और एवंभूत ७। इन के मुख्य दो द्वार हैं। जैसे कि--अर्थ द्वार और शब्द द्वार। प्रथम चार अर्थ नय हैं, तीन पिछले शब्द नय हैं। और दुर्नय उसे कहते हैं जो एकान्त वाद को मानते हों और अनेकान्त वाद का निषेध करें। जैसे कि—नैगमनय से नैयायिक और वैशेषिक दर्शन उत्पन्न हुये हैं संग्रह नय से अद्वैतवाद, सांख्य और मांसक दर्शन भी उत्पन्न हुए हैं, व्यवहार नय से चार्वाकमत प्रचलित हुआ है, ऋजुसूत्र के आश्रित बौद्ध दर्शन हैं। शब्दादि तीन नयों के आश्रित वैयाकरणादि हैं।

नय और सुनय का विवरण ग्रंथों में इस प्रकार से भी किया गया है। जैसे कि--नैगम, संग्रह और व्यवहार, इनके अनेक भेद किये गये हैं। यथा धर्म धर्मी से प्रधान भाव से भाषण करना। उसे नैगम नय कहते हैं। जैसे कि आत्मा में चेतन गुण है सो आत्मा मुख्य है, चेतन उसका गुण है। जब दोनों धर्मों का प्रधान भाव सिद्ध हुआ तब उसको द्रव्य और पर्याय स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार नैगम नय का सिद्धान्त है जब दोनों को एकान्त भाव से कथन किये जायें तब नैगमाभास हो जाता है जैसे कि--आत्मा और चेतन भिन्न २ पदार्थ हैं। इसी को नैगम दुर्नय कहते हैं।

जो सामान्य मात्र से पदार्थों का वर्णन करे उसे संग्रह नय कहते हैं जिस के मुख्य दो भेद हैं जैसे कि -परसंग्रह और अपरसंग्रह। सामान्य प्रकार से सर्व वस्तु को एक रूप मानना, परसंग्रह होता है फिर उसी को एकान्त रूप मानना उसे परसंग्रहाभास कहते हैं तथा द्रव्यत्व,गुणत्व, कर्मत्व आदि को अवान्तर सामान्य प्रकार से मानना—उसका विशेष कुछ भी कथन करना उसे अपरसंग्रह कहते हैं। जब धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल द्रव्य को एकान्त से एक रूप माना जाय तब वह अपरसंग्रहाभास हो जाता है।

संग्रह नय के कथन को निर्मूल करता हुआ द्रव्य और पर्याय को ठीक २ मानने वाला व्यवहार नय होता है जो द्रव्य और पर्याय का एकान्त रूप से भेद मानता हो उसे व्यवहार नयाभास कहते हैं। इस नय के आश्रित चार्वाक दर्शन है।

इस प्रकार व्यवहार नय और व्यवहार दुर्नय का विवरण किया गया है।

द्रव्य नय के पश्चात् चार पर्याय नयों का यह मन्तव्य है कि ऋजु-सूत्र नय वर्त्तमान काल को सुख को सुख दुःख को दुःख स्वीकार करता है और अन्य द्रव्य के उत्थापन करने से ऋजुसूत्राभास हो जाता है। इस नय के मानने वाला बौद्ध दर्शन है जो कि एकान्त वर्त्तमान काल की पर्याय में आरूढ है कालादि के भेद होने से शब्द के अर्थ का भेद होता है उसे ही शब्द नय कहते हैं किन्तु उस अर्थभेद को एकान्त भिन्न रूप मानने से शब्द नयाभास हो जाता है। पर्याय के अनुकूल अर्थ का मानना समभिरूढ नय का मन्तव्य है। जैसे कि--इन्दनात् इन्द्रः, शकनात् शक्रः, पुर्दारणात् पुरंदरः इत्यादि। यदि इन्हीं शब्दों को एकान्त रूप से भिन्न २ पदार्थ माने जायें तब समभिरूढ नयाभास हो जाता है। शब्द के अनुकूल क्रिया का होना एवंभूत नयाभीष्ट है जैसे कि--इन्द्र का स्वरूप अनुभव करने से इन्द्र कहा जाता है, शक्तियुक्त होने से शक्र है, (दैत्यों के) पुर (नगर) विदारण से पुरंदर है इत्यादि। यदि क्रिया रहित वस्तु को उस शब्द से न उच्चारण करना चाहिये ऐसा एकान्त निषेध करे तब एवंभूत नयाभास होता है। जैसे कि--विशिष्ट चेष्टा शून्य घट रूप वस्तु को घट न कहना।

इन सात नयों में प्रथम चार अर्थ नय कहे जाते हैं पिछले तीन नय शब्द रूप से माने जाते हैं और सातों नयों का उत्तरोत्तर विषय अल्प है जैसे कि--नैगम नय से संग्रह नय का विषय अल्प है और संग्रह नय से व्यवहार नय का विषय स्तोक है। इसी प्रकार समभिरूढ नय से एवंभूत नय का विषय स्वल्प है इसका कारण पीछे कहा जा चुका है इसी लिये उसी अपेक्षा से जानना चाहिये और इन्हीं नय वाक्यों से सप्तभंगी की सिद्धि होती है अतः सप्तभंगी का स्वरूप अन्य जैन न्याय ग्रन्थों से जानना चाहिये।

तृतीय द्वार प्रमाण का है। सो प्रमाण के मुख्य दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष फिर सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और निश्चयिक प्रत्यक्ष, इस प्रकार प्रत्यक्ष के दो भेद कहे गये हैं फिर इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष, इस प्रकार सांव्यवहारिक के दो भेद होते हैं किन्तु इनके भी अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, इस प्रकार चार भेद बन जाते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण क्षयोपशमिक और क्षायिक भाव से होता है। अवधिज्ञान और मनः-पर्यायज्ञान क्षायोपशमिक भाव से उत्पन्न हैं। केवल ज्ञान क्षायिक भाव

से ही होता है। परोक्ष ज्ञान के पांच भेद हैं। जैसे कि-स्मृति १, प्रत्यभिज्ञान २, ऊह ३, अनुमान ४ और आगम ५, पूर्व संस्कारोत्पन्न स्मृति ज्ञान है। स्मृति और अनुभव से उत्पन्न प्रत्यभिज्ञान होता है। जैसे कि यह वही देवदत्त है जिसको मैंने पूर्व में अमुक स्थान पर देखा था। त्रिकाल के साध्य और साधन ज्ञान से ऊह ज्ञान होता है तथा इस का द्वितीय नाम तर्क ज्ञान भी है। अनुमान के दो भेद हैं स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। स्वार्थानुमान अन्यथानुपपत्ति लक्षण हेतु ग्रह संबन्ध स्मरणहेतुक साध्य ज्ञान होता है, परार्थानुमान पक्ष हेतु दृष्टान्त उपनय और निगमन रूप पांच अवयवी होता है। श्री अर्हत् देव के वचन से उत्पन्न हुए ज्ञान को आगमानुमान कहते हैं तथा उपचार से सर्वज्ञ के वचन को ही आगमानुमान कहते हैं। इस प्रकार नय प्रमाण पूर्वक प्रमाण वचन होता है, अन्यथा वह दुर्नय है। इस प्रकार एकान्तवाद मिथ्यारूप है, अनेकान्तवाद सम्यग् दर्शन है। श्रीजिनेन्द्र देव के स्याद्वादरूप दर्शन में सर्व नय मुक्ताहारवत् सुन्दरता को प्राप्त हैं और इनका परस्पर स्याद्वाद दर्शन में विरोध मिट जाता है जैसे कि मध्यस्थ के सन्मुख वादी-प्रतिवादी शान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार श्रीजिनेन्द्र देव के 'स्यात्' इस पवित्र वचन से सर्व नय विवाद रहित होकर मैत्री भाव से परस्पर निवास करते हैं!

यहां यदि यह शंका की जाय कि जब सर्व दर्शन स्याद्वाद दर्शन में विद्यमान हैं तब स्याद्वाद दर्शन अन्य दर्शनों में क्यों नहीं माना जाता? तो इसका उत्तर यह है कि समुद्र तो सर्वनदीमय है किन्तु पृथक् २ नदियों में समुद्र प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार स्याद्वाद दर्शनके विषय में भी जानना चाहिये क्यों कि एक वस्तु का स्याद्वाद मत के अनुसार मानने से जीव सम्यग् दृष्टि होता है और एकान्त एक २ नयके मानने से जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है। इन नयों के कथन करने का मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि सामायिकाध्ययन जब उपक्रम निक्षेप अनुगमादिके द्वारा वर्णन किये गये हों तो फिर उनको नयों द्वारा वर्णनकरना चाहिये—एक सूत्रमात्र को तथा सर्व अध्ययन को भी नयों द्वारा वर्णन करना चाहिये। एक सूत्र, जैसे "रागे आया" इत्यादि सूत्र की भी नयों द्वारा व्याख्या करनी चाहिये और सर्व अध्ययन की भी नयों द्वारा व्याख्या करनी चाहिये।

यद्यपि नयोंके अनेक भेद हैं। जैसे कि यावन्मात्र वचन मार्ग हैं तावन्मात्र नय हैं तथा सात नैगमादि मूल नय हैं वा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक वा ज्ञान नय, क्रिया

नय; निश्चय नय, व्यवहार नय; शब्द नय, अर्थ नय इत्यादि नयोंके अनेक भेद हैं। तथापि सर्व अध्ययन का विचार ज्ञान नय और क्रिया से करना चाहिये क्योंकि ये मोक्ष के कारण हैं। इसी लिये हम यहां अब ज्ञान और क्रिया के विषय में कुछ कहते हैं। क्योंकि इस समय इन दोनों की ही उपयोगिता है, अन्य नयों का प्रस्ताव नहीं है।

पदार्थों के स्वरूप को जो "उपादेय" हों उसे ग्रहण करना चाहिये, जो "हेय" रूप हों उन्हें त्याग करना चाहिये और जो "ज्ञेय" रूप (जानने योग्य) हों उन्हें मध्यस्थ भाव से देखना चाहिये। इस लोक सम्बन्धी सुखादि सामग्री ग्रहण योग्य है, विषादि पदार्थ त्यागने योग्य हैं और तृणादि पदार्थ उपेक्षणीय हैं। यदि परलोक सम्बन्धी विचार किया जाय तब सम्यग् दर्शनादि ग्रहण करने योग्य हैं, मिथ्यात्वादि क्रिया त्यागने योग्य हैं और स्वर्गीय सुख उपेक्षणीय हैं। इस प्रकार तीनों प्रकारके अर्थों में यत्न करना चाहिये। क्योंकि ज्ञान नय का मन्तव्य है कि—हे आर्यो! ज्ञान बिना किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती। ज्ञानी पुरुष ही मोक्ष के फल को अनुभव कर सकते हैं। अन्ध पुरुष अन्ध के पश्चात् गमन करने से वांछित अर्थ को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे बीज बिना अंकुरोत्पत्ति नहीं है इसी प्रकार ज्ञान बिना पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं है फिर ज्ञान से सर्वव्रत, देशव्रत, क्षायिक सम्यक्त्व आदि अमूल्य पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है अत एव सर्व का मूल कारण ज्ञान ही है। क्रिया नय का मन्तव्य है कि सर्व का मुख्य कारण क्रिया ही है जैसे कि-तीनों प्रकार के अर्थों का ज्ञान कर उनमें फिर यत्न करना। इसी कथन से क्रिया की सिद्धि की गई है। ज्ञान तो क्रिया का उपकरण है इस लिये क्रिया मुख्य और ज्ञान गौण रूप है। इस प्रकार क्रिया नय का उपदेश है कि क्रिया ही मुख्य है जैसे कि क्रिया से रहित ज्ञान खर के समान चन्दन के भारवत् है तथा ज्ञान से जीव सुख नहीं पाते तथा ज्ञान से पुत्रोत्पत्ति नहीं हो सकती, तीर्थंकर देव भी अन्तिम समय पर्यन्त क्रिया के ही आश्रित रहते हैं; बीज को भी बाहिर की सामग्री की अत्यन्त आवश्यकता है तबही अंकुरोत्पत्ति होती है। इसलिये सब का मुख्य कारण क्रिया ही है। इस प्रकार क्रिया नय का मन्तव्य है किन्तु एकान्त पक्ष में मोक्ष प्राप्ति का अभाव है।

इसलिये अब मान्य पक्ष के विषय में कहते हैं कि सर्व नयों के नाना प्रकार के वक्तव्य को सुनकर सम्यक्त्व सामायिक और श्रुत सामायिक को ज्ञान प्रधान नय मानते हैं, अन्य दोनों के मत में गौण रूप हैं. इस प्रकार नयों के परस्पर विरोध जनक भाव को सुनकर जो साधु ज्ञान और क्रिया में स्थित है वही मोक्ष का साधक होता है। कारण कि एकान्त पक्ष मिथ्या रूप है। इस लिये ज्ञान और क्रिया युगपत् मोक्ष के साधक हैं क्यों कि केवल ज्ञान से और केवल क्रिया से कार्यसिद्धि नहीं होती। जैसे कि अन्नादि के ज्ञान से भी बिना क्रिया किये उदरपोषणादि नहीं हो सकते। इस वास्ते श्रीतीर्थंकर केवलज्ञान और यथाख्यात चरित्रयुक्त होते हैं। फिर केवल क्रिया से भी कार्य सिद्धि नहीं होती तथा

जब क्रिया हो जाती है तब उस का ज्ञान प्रथम ही होता है इस लिये क्रिया का ज्ञानपूर्वक होना सिद्ध हुआ। इस लिये सिद्ध हुआ कि-ज्ञान और क्रिया दोनों के समकालीन होने पर ही मोक्ष के फल की प्राप्ति होती है। जैसे कि-क्रिया से रहित ज्ञान निष्फल हो जाता है, क्रिया ज्ञान से रहित होने से शून्य हो जाती है, तब वांछित सिद्धि नहीं हो सकती जैसे कि—पंगुला और अंध भागते हुए सुमार्ग को नहीं प्राप्त होते तथा वृक्ष के फल को नहीं ले सकते तथा जैसे एक चक्र से शकट नगर को प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार अकेले ज्ञान और अकेले क्रिया से सिद्धि नहीं, अपि तु दोनों से सिद्धि होती है।

यहां यदि ऐसी शंका की जाय कि जब दोनों में पृथक् २ भाव में मुक्तिसाधन की शक्ति नहीं है तो युगपत् में वह शक्ति कहां से उत्पन्न होगी ? इस का उत्तर यह है कि ज्ञान और क्रिया पृथक् २ भाव में देश उपकारी होते हैं, युगपत् मिलने से सर्व उपकारी बन जाते हैं। जैसे एक सर्षप तैल की आशा पूरी नहीं कर सकता और यदि सर्षपों का समूह हो जाय तो तैल की आशा पूर्ण हो जाती है। इसी प्रकार ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, एक २ से नहीं। इस प्रकार मानने और ग्रहण करने से भावसाधु होता है।

इस तरह नय द्वार की समाप्ति होते हुए चतुर्थ अनुयोगद्वार की भी समाप्ति होती है। चतुर्थ अनुयोगद्वार के पूर्ण होने से श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र की भी पूर्ति होती है क्यों कि अनुयोगद्वार सूत्र के चार मुख्य द्वार हैं सो चारों की पूर्ति होने से अनुयोगद्वार सूत्र की पूर्ति हो गई।

कतिपय प्रतियों में अनुयोगद्वार सूत्र की पूर्ति के पश्चात् निम्न लिखित दो गाथाएं भी लिखी हुई मिलती हैं—

"सोलसयाणि चउरुत्तराणि होंति उ इमंमि गाहाणं।
दुसहस्समणुट्ठुभछंदवित्तप्पमाणओ भणिओ ॥ १ ॥
णयरमहादारा इव उवक्कमदाराणुओगवरदारा ।
अक्खरबिंदुगमत्ता लिहिआ दुक्खक्खयट्ठाए ॥ २ ॥"

इन गाथाओं का सारांश इतना ही है कि श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र की १६०४ गाथाएं हैं और २०८५ अनुष्टुब् छन्द हैं ॥१॥ जैसे महानगर के मुख्य मुख्य चार द्वार होते हैं उसी प्रकार श्रीमदनुयोगद्वार सूत्र के उपक्रमादि चार द्वार हैं और इस सूत्र का अक्षर, बिंदु और मात्रायें जो लिखी गई हैं वे सर्व दुःखों के क्षय करने के वास्ते ही हैं।

यद्यपि ये गाथायें मूल सूत्र में नहीं हैं; वृत्तिकारों ने इन की वृत्ति भी नहीं लिखी है तथापि इन का सारांश अच्छा होने से तथा कतिपय प्रतियों में ये गाथायें लिखी हुई हैं इस लिये मैं ने भी यहां पर लिख दी हैं।

यदि प्रमाद वश अज्ञान भाव से सूत्र से किंचित् मात्र भी मेरे से विरुद्ध लिखा गया हो तो मैं "मिच्छा मि दुक्कडं" ग्रहण करता हूं।

इति श्रीमदनुयोगद्वारसूत्रस्य हिन्दीपदार्थ भावार्थौ समाप्तौ।

"श्रीजैनागमप्रकाशक मण्डल"

जौहरी बाजार आगरा।

संसार में आज कल प्रायः सभी सम्प्रदायों का साहित्य बड़ी उत्तमता, सुन्दरता और विशालता के साथ प्रकाशित होकर जनता में अपना-अपना प्रचार कर रहा है। धर्म-प्रचार के सब साधनों में से आजकल सिर्फ उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित करना ही सर्व श्रेष्ठ साधन गिना जाता है। ज्ञातव्य-ज्ञातव्य बातों से भरा हुआ, सर्वाङ्गपूर्ण, एक से एक नयनाभिराम और बहुज्ञों द्वारा सम्पादित करा कर आजकल जैसा विशाल साहित्य अन्य समाज की सुदृढ़ संस्थाएं कर रही हैं, उसे देख कर हमें चकित रह जाना पड़ता है।

जैन समाज में ऐसी संस्थाओं का सर्वथा अभाव देखकर हमें बड़ा खेद खिन्न और लज्जित होना पड़ता है और धर्मप्रचार के कामों में अन्य समाजों के सामने हमें अपनी कमी अनुभव में आती है। इसी बात को महसूस करके हम ने उक्त नाम की संस्था की नींव डाली है। तदनुसार उस को देख रेख से निम्न लिखित छोटे, पर अच्छे; पुराने ढँग के, पर नये रूप से तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

१—"उवएस-रयण-माला"

२—"जीव-विचार"

३—"समस्या पूर्ति-सुमनमाला"

उक्त तीनों ग्रन्थ सुन्दर काग़ज पर काफी संशोधन पूर्वक नये टाईपों में छापे गए हैं। पहिला संस्करण प्रायः समाप्त होने को आया। प्रत्येक जैन साहित्य को प्रकाशित कराने वाले अनुरागी बन्धुओं से निवेदन है कि आप जो भी ग्रन्थ प्रकाशित करावें वह इस मण्डल की देख रेख के नीचे प्रकाशित करावें। अब तक इस मण्डल की देख रेख में दो तीन यह साधारण ग्रन्थ ही प्रकाशित हो सके थे। परन्तु अब इस मण्डल ने जैन सूत्रों को प्रकाशित कराने का काम अपने हाथ में लेकर सब से प्रथम उपाध्यायजी श्रीआत्मारामजी महाराज का अनुवाद किया हुआ "श्रीदशवैकालिकसूत्र" को प्रकाशित कराने का काम अपने हाथ में लिया है, जो आधे से अधिक छप चुका है। यह सूत्र किस रँग ढँग से प्रकाशित हो रहा है, उस का थोड़ा सा ज्ञान तो पाठकों को नीचे के विज्ञापन से हो जायगा और पूरा परिचय जब पाठकों के हाथ में पहुँचेगा तब मिलेगा।

निवेदक:——

पद्मसिंह जैन;

व्यवस्थापक—"श्रीजैनागमप्रकाशक मण्डल"

जौहरी बाजार, आगरा।